# महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)


ज्ञान शांति मैत्री

# एम.ए. राजनीति विज्ञान

## पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.पी.एस. – 016

## प्रथम सेमेस्टर

## पाठ्यचर्या कोड : - 03

## पाठ्यचर्या का शीर्षक : तुलनात्मक राजनीति


## दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

## दूर शिक्षा निदेशालय महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

### एम.ए.राजनीति विज्ञान प्रथम सेमेस्टर-पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (भाग-1)

### मार्गदर्शन समिति

**प्रो. गिरीश्वर मिश्र**
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

**प्रो. आनंद वर्धन शर्मा**
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह**
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि.,वर्धा

### पाठ्यचर्या निर्माण समिति

**प्रो. अरविंद कुमार झा**
पूर्व निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

**प्रो. पवन कुमार शर्मा**
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
अटल बिहारी बाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल

**प्रो. जे.वी. गवई**
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर, महाराष्ट्र

**डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी**
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

### संपादक मंडल

**प्रो. आर. आर. झा**
पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
बी.एच.यू. वाराणसी

**प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी**
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
गांधी एवं शांति अध्ययन, संस्कृति विद्यापीठ,
म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

**डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी**
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

### इकाई लेखन

| खंड -1 | खंड - 2 | खंड - 3 | खंड - 4 |
|---|---|---|---|
| इकाई 1 – डॉ. सुमन कुमार झा | इकाई 1- डॉ. संजय कुमार झा | इकाई 1 – डॉ. डी.एन.पाण्डेय | इकाई 1- डॉ. विजय प्रताप मल्ल |
| इकाई 2 - डॉ. सुमन कुमार झा | इकाई 2- डॉ. संजय कुमार झा | इकाई 2 - डॉ. डी.एन.पाण्डेय | इकाई 2 - डॉ. विजय प्रताप मल्ल |
| इकाई 3 - डॉ. सुमन कुमार झा | इकाई 3- डॉ. संजय कुमार झा | इकाई 3 - डॉ. डी.एन.पाण्डेय | इकाई 3 - डॉ. विजय प्रताप मल्ल |
| इकाई 4 - डॉ. सुमन कुमार झा | इकाई 4- डॉ. संजय कुमार झा | इकाई 4- डॉ. डी.एन.पाण्डेय | इकाई 4 - डॉ. विजय प्रताप मल्ल |

### कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

**श्री विनोद वैद्य**
सहायक कुलसचिव
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

**श्री अरविन्द कुमार**
टेक्निकल असिस्टेंट
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

**सुश्री राधा ठाकरे**
टंकक/फार्मेटिंग/एडिटिंग
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

**श्री सचिन सोनी**
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

**श्री गुड्डू यादव**
कंप्यूटर ऑपरेटर
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

## तुलनात्मक राजनीति

**क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट**

**मूल्यांकन के मानदंड :**

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

**खण्ड 1 तुलनात्मक राजनीति की अवधारणा एवं उपागम**

**इकाई-1**. तुलनात्मक राजनीति अर्थ, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र और एक अनुशासन के रूप में उद्भव एवं विकास : पाश्चात्य एवं प्राच्य/भारतीय परिप्रेक्ष्य

**इकाई-2**. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम : पारम्परिक उपागम

**इकाई-3**. संरचनात्मक - प्रकार्यात्मक एवं व्यवस्थात्मक उपागम

**इकाई-4**. मार्क्सवादी उपागम एवं व्यवहारवादी उपागम

**खण्ड 2 संविधानवाद एवं शासन के रूप**

**इकाई-1**. संविधानवाद : अभ्युदय विकास, समस्याएँ एवं समाधान

**इकाई-2.** शासन के प्रकार : संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली

**इकाई-3**. शासन के प्रकार : एकात्मक तथा संघात्मक शासन प्रणाली

**इकाई-4**. राजनीतिक संस्थाओं (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) का तुलनात्मक अध्ययन

**खण्ड 3 राजनीतिक प्रक्रियाएँ**

**इकाई-1**. राजनीतिक संस्कृति एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण

**इकाई-2**. राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण,

- सतत् विकास का पाश्चात्य एवं प्राच्य/भारतीय परिप्रेक्ष्य

**इकाई-3**. राजनीतिक समाजीकरण

**इकाई-4.** राजनीतिक संचार/सम्प्रेषण

**खण्ड 4 राजनीतिक संस्थाएं एवं संरचनाएं**

**इकाई-1**. राजनीतिक दल एवं दल प्रणालियाँ

**इकाई-2**. दबाव समूह

**इकाई-3**. प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त

**इकाई-4.** राजनीतिक अभिजात्य और प्रजातंत्र का अभिजात्य सिद्धान्त

# अनुक्रम


| क्र.सं. | इकाई के नाम | पृष्ठ क्रमांक |
|---|---|---|
| 1. | **खंड-1 तुलनात्मक राजनीति की अवधारणा एवं उपागम** | |
| | **इकाई-1**. तुलनात्मक राजनीति अर्थ, प्रकृति, विषय-क्षेत्र और एक अनुशासन के रूप में उद्भव एवं विकास : पाश्चात्य एवं प्राच्य परिपेक्ष्य | 3-16 |
| | **इकाई-2**. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम : पारम्परिक उपागम | 17-26 |
| | **इकाई-3**. शासन के प्रकार : एकात्मक तथा संघात्मक शासन प्रणाली | 27-36 |
| | **इकाई-4**. मार्क्सवादी उपागम एवं व्यवहारवादी उपागम | 37-45 |
| 2. | **खण्ड 2 संविधानवाद एवं शासन के रूप** | |
| | **इकाई-1**. संविधानवाद : अभ्युदय विकास, समस्याएँ एवं समाधान | 46-58 |
| | **इकाई-2.** शासन के प्रकार : संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली | 59-73 |
| | **इकाई-3**. शासन के प्रकार : एकात्मक तथा संघात्मक शासन प्रणाली | 74-90 |
| | **इकाई-4**. राजनीतिक संस्थाओं (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) का तुलनात्मक अध्ययन | 91-111 |
| 3. | **खण्ड 3 राजनीतिक प्रक्रियाएँ** | |
| | **इकाई-1**. राजनीतिक संस्कृति एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण | |
| | **इकाई-2**. राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण,<br>• सतत् विकास का पाश्चात्य एवं प्राच्य/भारतीय परिप्रेक्ष्य | |
| | **इकाई-3**. राजनीतिक समाजीकरण | |
| | **इकाई-4.** राजनीतिक संचार/सम्प्रेषण | |
| 4. | **खण्ड 4 राजनीतिक संस्थाएं एवं संरचनाएं** | |
| | **इकाई-1**. राजनीतिक दल एवं दल प्रणालियाँ | 112-127 |
| | **इकाई-2**. दबाव समूह | 128-149 |
| | **इकाई-3**. प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त | 150-167 |
| | **इकाई-4.** राजनीतिक अभिजात्य और प्रजातंत्र का अभिजात्य सिद्धान्त | 168-182 |

## खंड-1 : तुलनात्मक राजनीति की अवधारणा एवं उपागम

## इकाई-1 : तुलनात्मक राजनीति अर्थ, प्रकृति, विषय-क्षेत्र और एक अनुशासन के रूप में उद्भव एवं विकास : पाश्चात्य एवं प्राच्य परिपेक्ष्य

**इकाई की रूपरेखा**

**1.1.01. उद्देश्य**
**1.1.02. प्रस्तावना**
**1.1.03. तुलनात्मक राजनीति का अर्थ**
**1.1.04. तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति**
**1.1.05. तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र**
**1.1.06. एक अनुशासन के रूप में उद्भव एवं विकास**
**1.1.07. तुलनात्मक राजनीतिक पद्धति की उपयोगिता**
**1.1.08. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की समस्याएँ**
**1.1.08.1. अवधारणा के प्रतिपादन की समस्या**
**1.1.08.2. तुलनात्मक योजना की समस्या**
**1.1.08.3. सिद्धांतीकरण की समस्या**
**1.1.08.4. अध्ययन प्रणाली की समस्या**
**1.1.08.5. पृष्ठभूमि परिवर्तनों की समस्या**
**1.1.09. मूल्यांकन**
**1.1.10. सारांश**
**1.1.11. कठिन शब्दावली**
**1.1.12. अभ्यास प्रश्न**
**1.1.12.1. बहुविकल्पीय प्रश्न**
**1.1.12.2. लघु उत्तरी प्रश्न**
**1.1.12.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**
**1.1.13. संदर्भ ग्रंथ सूची**

### 1.1.01. उद्देश्य

1. तुलनात्मक राजनीति की पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. तुलनात्मक राजनीति के अर्थ, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. तुलनात्मक राजनीति के उद्भव एवं विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की समस्याओं को समझ सकेंगे।
5. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की उपयोगिता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

**1.1.02. प्रस्तावना**

तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन आधुनिक राजनीतिशास्त्र की बदलती हुई प्रवृति का परिचायक है। आधुनिक राजनीतिशास्त्र का आरंभ और अंत अब राज्य में नहीं होता। यह राज्य की सीमा को न तो स्वीकार करता है और न ही यह राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन सांस्थानिक एवं वैधानिक पद्धतियों के माध्यम से करना चाहता है। यद्यपि तुलनात्मक राजनीति का सामान्य अर्थ विदेशी सरकारों का संवैधानिक अध्ययन है, किंतु आधुनिक राजनीतिशास्त्र संपूर्ण विश्व की राजनीतिक पद्धति की कल्पना करता है और उसे एक सत्य मानकर नवीन पद्धतियों के माध्यम से उसका विश्लेषण करना चाहता है। यह सत्य है कि 'संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन' या 'विदेशी सरकारों का अध्ययन'जैसे विषयों से ही आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को प्रेरणा मिली है, फिर भी तुलनात्मक राजनीति आधुनिक राजनीति के परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है।

तुलनात्मक राजनीति एक विस्तृत विषय है जिसके अंतर्गत तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन की विषय-वस्तु को सम्मिलित किया जाता है तथा साथ ही गैर-राज्यीय राजनीति, कबीले, समुदाय, वैयक्तिक संघों आदि की राजनीति का अध्ययन भी इसके अंतर्गत किया जाता है। तुलनात्मक राजनीति का संबंध राजनीतिक व्यवहार की संपूर्णतया के अध्ययन से है। जी. के. रॉट्स के अनुसार "तुलनात्मक राजनीति वृहत्तर क्षेत्र का संकेतक है।" एडवर्ड ए. फ्रीमैन भी तुलनात्मक राजनीति के विस्तृत क्षेत्र की बात करते हैं। उनकी धारणा है कि तुलनात्मक राजनीति में केवल सरकारों के विभिन्न रूपों का ही तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित नहीं होता वरन् विविध राजनीतिक प्रक्रियाओं व उससे संबद्ध राजनीतिक व गैर-राजकीय संस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित होता है। फ्रीमैन के शब्दों में, "तुलनात्मक राजनीति सरकारों के विविध प्रकारों व विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण है।" तुलनात्मक राजनीति में अनेक शासन पद्धतियों के अनुभवों, संस्थाओं, व्यवहारों और प्रक्रियाओं का ऐसे विस्तारपूर्ण ढंग से अध्ययन किया जाता है कि उसमें संविधान से बाहर उन अभिकरणों का अध्ययन भी आ जाए जिसका किसी भी रूप में शासन के औपचारिक अंगों से कोई भी संबंध हो। वस्तुतः इसका संबंध महत्वपूर्ण नियमितता में राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक संस्थाओं की कार्यशाली में समानताओं और असमानताओं से है।

तुलनात्मक राजनीति का अध्येयता न केवल कानून निर्माण, कानून प्रयोग और विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से संबंधित निर्णयों तक ही सीमित है वरन् उसे उन विषयों का अध्ययन भी एक विशिष्ट तरीके से करना होता है, जो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के अंतर्गत आते हैं। संक्षेप में, तुलनात्मक राजनीति विषय में 'राजनीति' को आदर्शात्मक-आयामों की शृंखलाओं से मुक्त कर दिया गया है और इसे अनुभवाश्रित शब्दों में नये तरीकों से व्यक्त किया गया है। इसके परिणामस्वरूप राजनीति न केवल राज्य और सरकार का बल्कि यह 'सत्ता' एवं 'शक्ति' के प्रयोग का अध्ययन हो गई है।

जहाँ तक तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम का प्रश्न है तो तुलनात्मक राजनीति की परंपरागत विधियाँ राजनीतिक व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं की वास्तविकताओं को समझने में तथा वर्तमान सिद्धांतों के प्रतिपादन में सहायक नहीं हुई, इसलिए नये उपागमों की खोज प्रारंभ हुई। राजनीतिक संस्थाओं व राजनीतिक व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन को अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के लिए विद्वानों ने परंपरागत तुलनात्मक राजनीति के विचारकों से भिन्न जो पद्धति या दृष्टिकोण अपनाया,

उसे तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के आधुनिक उपागम कहते हैं। 'ग्राहम वालेस' जिन्हें सक्रिय राजनीति का अनुभव था उनका आग्रह था कि राजनीतिक अध्ययन में नयी यथार्थवादी दृष्टि अपनाई जाय। उन्होंने राजनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में तथ्यों तथा साक्ष्यों पर बल दिया और उनका यह दावा था कि ज्ञान की इस शाखा का विकास परिमाणात्मक रीति से होना चाहिए, न कि गुणात्मक रीति से। वालेस का यह विचार महत्वपूर्ण था कि सिर्फ यह अन्दाजा लगाना ही काफी नहीं है कि लोगों को कैसा व्यवहार करना चाहिए या वे कैसा व्यवहार करेंगे अपितु महत्वपूर्ण बात यह है कि विशिष्ट राजनीतिक स्थितियों में लोग कैसा व्यवहार करते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में आधुनिक उपागमों का प्रयोग तेजी से साथ हुआ। अब यह माना जाने लगा कि नवीन राजनीतिक यथार्थ की गत्यात्मक शक्तियों को समझने में परंपरागत पद्धतियों से कोई सहायता नहीं मिल रही है, ऐसी स्थिति में तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के नये उपागम खोजे जाने लगे जिसके लिए प्रमुखतया तीन कारण उत्तरदायी है - (1) नये राज्यों का उदय, (2) पश्चिमी राष्ट्रों के प्रभुत्व का अंत, (3) साम्यवादी राष्ट्रों का समुदाय।

तुलनात्मक राजनीति का विषय वस्तुतः "राजनीति विज्ञान के विस्तृत होते हुए क्षितिज की दिशा में एक अध्ययन है"। तुलनात्मक राजनीति में सरकार नहीं बल्कि सरकारों के बारे में अध्ययन केन्द्रीय विषय बन गया है। तुलनात्मक राजनीति का निहितार्थ निर्णयों का निर्माण हो गया है। चाहे यह निर्णय संयुक्त राष्ट्र में लिया गया हो अथवा नगर परिषद् में, व्यापार संघ में लिया गया हो अथवा पोप की गुप्त सभा में, बोर्ड के कक्ष में लिया गया हो अथवा किसी कबीले में। तुलनात्मक राजनीति एक ऐतिहासिक महत्व का विषय बन गयी है। और अब इसमें "नए उपागमों, नई परिभाषाओं और नए अनुसंधान उपकरणों के माध्यम से मुद्दों का विवेचन किए जा रहे हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। और अब दुनियाँ की राजनीति का वैज्ञानिक अध्ययन तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का मुख्य विषय बन गया है।

### 1.1.03. तुलनात्मक राजनीति का अर्थ

तुलनात्मक राजनीति का अर्थ स्पष्ट करते हुए एडवर्ड ए. फ्रीमैन का मानना है कि "तुलनात्मक राजनीति संस्थाओं एवं सरकारों के विविध प्रकार का एक तुलनात्मक विवेचन एवं विश्लेषण है।" अर्थात् तुलनात्मक राजनीति में केवल सरकारों के विभिन्न रूपों का ही तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित नहीं होता, बल्कि विविध राजनीतिक प्रक्रियाओं व उनसे संबंद्ध राजनीतिक व गैर-राजकीय संस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित होता है।

जी.के. रॉबर्ट्स के अनुसार - "अब राजनीति का यह तुलनात्मक अध्ययन केवल संरचनात्मक तुलनाओं तक ही सीमित नहीं रहा है। वरन् इसके अंतर्गत कबीलों, समुदायों, संघों, समूहों और गैर राज्यीय इकाइयों का व्यवहारात्मक अध्ययन होने लगा है। यही कारण है कि आज तुलनात्मक राजनीति को या तो 'सब कुछ' या 'कुछ नहीं' कहा जाने लगा है।"

सामान्यतया तुलनात्मक राजनीति को 'तुलनात्मक शासन' या 'तुलनात्मक सरकार' का पर्याय समझ लिया जाता है। दोनों का ही संबंध 'राजनीति' से होने के कारण इनका एक दूसरे के लिए अदल-बदल कर प्रयोग करना कुछ स्वाभाविक ही है। परंतु राजनीति विज्ञान में इनका सुनिश्चित अर्थ व्यक्त किया

जाता है। जी.के. रॉबर्ट्स ने तुलनात्मक सरकार व तुलनात्मक राजनीति को अलग-अलग माना है। उन्हीं के शब्दों में, "तुलनात्मक सरकार राज्यों, उनकी संस्थाओं व सरकार के कार्यों का अध्ययन है, जिसमें शायद राज्य क्रिया से अत्यधिक निकट का संबंध रखने वाले पूरक समूहों, राजनीतिक दल व दबाव समूहों, का भी अध्ययन सम्मिलित है।"

जीन ब्लोण्डेल ने भी तुलनात्मक सरकार का अर्थ रॉबर्ट्स द्वारा किए गए अर्थ से मिलता जुलता किया है। उन्हीं के शब्दों में, "तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकार के प्रतिमानों का अध्ययन है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि तुलनात्मक सरकार के अंतर्गत राज्य से संबंधित औपचारिक संस्थाओं का ही मुख्यतः तुलनात्मक अध्ययन होता है। इसमें राजनीतिक व्यवहार से संबंधित सभी प्रक्रियाओं व अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं का अध्ययन सम्मिलित नहीं किया जाता। यद्यपि वर्त्तमान राजनीतिक दल व दबाव समूहों की हर राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण इनका अध्ययन भी तुलनात्मक सरकारों में सम्मिलित किया जाने लगा है। परंतु मुख्य जोर 'शासन' की संस्थाओं के तुलनात्मक विश्लेषण पर रहता है।

संक्षेप में, तुलनात्मक राजनीति विषय में 'राजनीति' को आदर्शात्मक आयामों की शृंखलाओं से मुक्त कर दिया गया है और इसे अनुभवासित शब्दों में नये तरीकों से व्यक्त किया गया है। इसके परिणामस्वरूप राजनीति न केवल राज्य और सरकार का, बल्कि यह 'सत्ता' एवं 'शक्ति' के प्रयोग का अध्ययन हो गई है। हालांकि, यहाँ इस बात के लिए सतर्क कर दिया जाना चाहिए कि, यद्यपि 'राजनीति' का संबंध राजनीतिक संस्थाओं और मानव व्यवहार के क्षेत्र में सार्थक नियमितताओं, समानताओं और विभिन्नताओं से है, फिर भी 'तुलना' का कार्य न तो आधे मन से किया जाना चाहिए जिससे बहुत-सी उपयोगी बातों की उपेक्षा कर दी जाए और न ही उसे अतिसरलीकरण की दूसरी सीमा तक ले जाया जाए कि सारा अध्ययन ही अशिष्ट और अस्वीकार्य हो जाए।

### 1.1.04. तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के संबंध में 'बुड' का यह कथन उल्लेखनीय है कि, "इस क्षेत्र के नामकरण में 'तुलनात्मक' शब्द के इस्तेमाल करने का एकमात्र कारण यह था कि इस बात पर बल दिया जाय कि क्षेत्र की राजनीति विज्ञान के प्रति जो जिम्मेदारी है, उसके अनुसार विश्व में विद्यमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को राजनीति विज्ञान में सिद्धांत निर्माण और परीक्षण की सामान्य खोज में तुलना के लिए इकाइयों के तौर पर स्वीकार किया जाय।"

तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के संबंध में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं:-

1. तुलनात्मक राजनीति पश्चिमी, गैर पश्चिमी और साम्यवादी देशों की संस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण है।
2. तुलनात्मक राजनीति विविध राजनीतिक संरचनाओं के साथ-साथ अराजनीतिक संरचनाओं और उनके प्रभावों का अध्ययन है।
3. तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा मानव स्वभाव, उसकी परिस्थितियाँ तथा उसके व्यवहार के अध्ययन को अधिक महत्व दिया जाता है।

4. तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक कार्यकलाप, राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक सत्ता का अध्ययन किया जाता है।
5. विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों के मूल्य की तुलना की जाती है।

संक्षेप में, तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यह एक स्वतंत्र अनुशासन है, जो राजनीति विज्ञान में एक महत्वपूर्ण शाखा बन गया है। तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की राष्ट्रीय सरकारों का ऐतिहासिक संदर्भ व राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार तुलनात्मक अध्ययन ही नहीं है, अपितु इसके साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रियाओं व राजनीतिक व्यवहार तथा सरकारी तंत्रों को प्रभावित करने वाली गैर-शासकीय व्यवस्थाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन है।

### 1.1.05. तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में 'राजनीति' शब्द के तीन लक्ष्यार्थ है:- राजनीतिक कार्य-कलाप, राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक सत्ता।

राजनीतिक कार्य-कलाप के अंतर्गत वे प्रयास आते हैं, जिनसे विरोध की स्थितियों का निर्माण और समाधान ऐसे ढ़ंग से किया जाता है, जिससे सत्ता के लिए संघर्ष में रत लोग अपने हितों की यथा संभव रक्षा कर सके। तनाव में कमी अथवा विरोध का समाधान स्वाभाविक रूप में तनाव घटाने के स्थायी उपकरण तथा समय-समय पर आंतरिक या 'सुरक्षित' उपकरणों के अंतर्वेश के माध्यम से किया जाता है, जिसका उद्देश्य आपातकालीन स्थितियों में तनावों और विरोधों की मात्रा को कम करना होता है। यदि राजनीति का अभिप्राय मूल्यों का प्रमाणीकृत विनिधान हैं, तो सत्तारूढ़ व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत 'मूल्यों' और लोगों द्वारा अपेक्षित 'मूल्यों' के बीच कुछ-न-कुछ विरोध तो अवश्य उत्पन्न होगा। इस कारण ऐसे विरोध उत्पन्न होते हैं जिनके समाधान की आवश्यकता होती है और इस संबंध में जो प्रयास किए जाते हैं, उन्हें राजनीतिक कार्य-कलाप कहा जाता है। सरकार को इन विरोधों का समाधान हर संभव तरीके से करना पड़ता है। इस बारे में आवश्यक यही है कि ऐसा करते हुए राज्य व्यवस्था को विघटित होने से बचाया जा सके। जहाँ देशद्रोह और वस्तुतः गृहयुद्ध का आरंभ है, वहाँ राजनीति का अंत हो जाता है, क्योंकि उस समय मूल्यों का कोई प्रमाणीकृत विनिधान नहीं होता, बल्कि दो पक्ष अलग-अलग तरीके से मूल्यों का विनिधान करते हैं। तथापि इस वक्तव्य से हमें यह नहीं समझना चाहिए कि गृह युद्ध अथवा क्रांतिकारी उथल-पुथल के दिनों में राजनीतिक कार्य-कलाप जैसी कोई वस्तु नहीं होती। इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि "क्योंकि ऐसी घटना समाज के जीवन में तनाव का चरम बिंदु ला देती है, अतः राजनीतिक कार्य-कलाप की भूमिका समाज में ऐसी स्थिति आने से रोकना होनी चाहिए।"

राजनीति का लक्ष्यार्थ न केवल 'राजनीतिक कार्य-कलाप' से है, बल्कि इसका निहितार्थ 'कार्य-कलाप के क्रम' से भी है, अर्थात् तनाव की स्थितियों के निर्माण और उनके समाधान की दिशा में किए गए उन सभी प्रयासों से है जिनसे "नैसर्गिक मतैक्य"की स्थिति प्राप्त हो जाए। राजनीतिक कार्य-कलाप विषमावस्था की स्थिति से निर्गमित होता है- यह मानव व्यवहार का ऐसा रूप है जिसमें एक से अधिक व्यक्तियों के हितों का अपने-अपने पक्ष में बाध्यकारी मूल्यों के विनिधान के प्रयोग के लिए संघर्ष होता है अथवा उनकी अंत: क्रिया होती है। जब किसी विषय पर किसी समूह अथवा वर्ग या लोक समुदाय में समान शासन अथवा नीति के लिए आवाज उठाई जाती है, उस समय इस अर्थ में विषमावस्था उत्पन्न होती है कि इस आवाज के विरूद्ध फैसला करने के लिए भी निर्णय-निर्माण की आवश्यकता उत्पन्न हो

गई। यह मामला यहीं खत्म नहीं हो जाता। अगली समस्या तब खड़ी हो जाती है जब किसी समूह अथवा समुदाय के सदस्य पारस्परिक रूप में अधिक नीतियों का समर्थन करते हैं। परिणामस्वरूप हितों का विरोध होता है और तर्क-वितर्क, अनुनय-विनय, समायोजन, राजनय या समझौते के शांतिपूर्ण तरीकों अथवा बल और जोर-जबरदस्ती के हिंसात्मक तरीकों के विरोधों के समाधान की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। शांतिपूर्ण तरीकों में प्रतियोगी अभिकर्तागण अपनी माँगों का कोई हिस्सा छोड़ने के लिए इस उद्देश्य से तैयार होते हैं कि आपस में सभी को स्वीकार्य समाधान प्राप्त हो सके, जबकि हिंसात्मक तरीकों में एक वर्ग की नीति पूर्ण अथवा अधिकांश रूप में दूसरे वर्ग की इच्छाओं पर थोपी जाती है। शांतिपूर्ण तरीकों के अधीन इस स्थिति को 'आरोपित सम्मति' कहा जाता है। "अतः ऐसे राजनीतिक विश्रांति की स्थिति किसी राजनीतिक कार्य-कलाप को आरंभ ही नहीं करती, यह राजनीतिक कार्य-कलाप के चक्र को बंद भी कर देती है।"

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में दूसरे लक्ष्यार्थ के रूप में राजनीतिक प्रक्रिया का स्थान आता है। राजनीतिक प्रक्रिया राजनीतिक गतिविधियों की भावना का विस्तार है। यहाँ उन सभी अभिकरणों की भूमिका का महत्व है, जिसकी निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में कुछ-न-कुछ भूमिका होती है। अतः राजनीति के अध्ययन को इस प्रकार व्यापक कर दिया जाता है, ताकि 'राज्येतर अभिकरणों' को इसके अंतर्गत ले लिया जाए। जिस तरीके से समूहों और संघों का परिचालन किया जाता है उसका अध्ययन करने से हमें पता चलेगा कि वे सत्ता के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं है। उनकी भी आंतरिक 'सरकारें' होती हैं जो उनके आंतरिक विरोधों और तनावों से निपटती है। हमारे प्रयोजन के लिए जिस चीज का महत्व है, वह यह है कि ये 'राज्येत्तर' संगठन अपने विशिष्ट हितों के प्रतिरक्षक और संवर्द्धन के लिए देश की सरकार को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, इन समूहों में आपस में अन्य देश की सरकार के बीच अंत: क्रिया की अति तीव्र-प्रक्रिया घटित होती है। फाइनर ने ठीक ही कहा है स्पष्टतः अन्य समूहों से प्रतियोगिता में एक गैर-सरकारी संगठन की सफलता की आशा बहुत अधिक बढ़ जाती है, अगर राज्य की पूरी शक्ति को, सरकार के माध्यम से लागू करके उसके पीछे लगा दिया जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि अगर एक राज्य के ढाँचे के भीतर यह प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो गई जो अन्यथा एक गैर-सरकारी समूह की दूसरे समूह से संघर्ष की स्थिति होनी चाहिए, तो वह अन्य समूहों के साथ सार्वजनिक प्रतियोगिता बन जाती है। इसका उद्देश्य या तो सरकार पर कब्जा कर अपनी नीति प्रवर्तित करना अथवा आगे बढ़कर सरकार ही बनाने के लिए प्रयास करना होता है और उन कार्य-विधियाँ के समुच्चय को, जिनसे राज्य के भीतर रहने वाले गैर-सरकारी संगठन सरकार को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं, अथवा सरकार द्वारा नीति-निर्माण या सरकार बनाने की क्रिया में भाग लेते हैं, 'राजनीतिक प्रक्रिया' कहलाते हैं।

तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में 'राजनीतिक सत्ता' का विषय तीसरे लक्ष्यार्थ के रूप में आता है। 'सत्ता' शब्द की परिभाषा अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग तरीकों से की है। उदाहरण के लिए, कार्ल जे. फाइडरिक ने इसे 'एक प्रकार का मानव संबंध' बताया है, जबकि टॉनी ने इसे 'अपेक्षित विधि क्षमता' कहा है। निर्णय-निर्माण के मामले में सत्ता की भूमिका के संदर्भ में लॉसवेल ने कहा है कि, "निर्णय-निर्माण एक अंत: व्यक्तिगत प्रक्रिया है : निर्णय उन नीतियों के बारे में किया जाता है जिसका अनुपालन अन्य लोगों द्वारा करना होता है। निर्णयों के निर्माण में भाग लेने के रूप में सत्ता एक अंत: व्यक्तिगत संबंध है। "अतः राजनीति सत्ता के उपयोग में एक विशेष स्थिति-अपनी दिशा में अन्य लोगों के आचरण में परिवर्तन लाने का प्रयास-की ओर लक्ष्य करती है।"

सत्ता के दृष्टिकोण से राजनीति के विषय के अध्ययन ने तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र इतना अधिक व्यापक कर दिया है कि इसमें राजनीतिक प्रणालियों की अवसंरचना का अध्ययन भी शामिल हो गया है। इसी कारण राजनीति का अध्ययन सत्तारूढ़ वर्ग या शासी और अन्य शासी संभ्रांत वर्गों का अभिज्ञान और उनकी अलग-अलग भूमिकाओं का मापन किए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यापक रूप में राजनीति समूहों में भी कार्य करती है, यद्यपि जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, अपने आप में ये समूह चाहे कितने ही महत्वपूर्ण हों, व्यक्ति अथवा समाज की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'प्राधिकार' का विषय सत्ता की दासी बन जाती है। लोकतांत्रिक प्रणाली में शासक अपने अधिकार को 'सर्वसम्मतिपूर्ण' की उपाधि देकर ठहराने की कोशिश करते हैं, सर्वाधिकारवादी पद्धति वाले शासक औचित्य की दिखावटी उपाधि प्राप्त करने के लिए नग्न बल प्रयोग का सहारा लेते हैं।

इन्हीं महत्वपूर्ण लक्ष्यार्थों के कारण तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में 'राजनीति' शब्द की एक विशिष्ट परिभाषा बन गई है। यहाँ राजनीति को आदर्शात्मक आयामों की शृंखलाओं से मुक्त कर दिया गया है और इसे अनुभवाश्रित शब्दों में नए तरीके से व्यक्त किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि राजनीति न केवल राज्य और सरकार बल्कि 'सत्ता के प्रयोग' का अध्ययन हो गई है। कर्टिस ने ठीक ही कहा है कि, "राजनीति सत्ता और उसके उपयोग के बारे में एक संगठित विवाद है, जिसमें प्रतियोगी मूल्यों, विचारों, व्यक्तियों, हितों और माँगों के बीच पसंद अथवा अधिमान्यता निहित होती है। राजनीति के अध्ययन का संबंध उस तरीके के विवरण और विश्लेषण से है जिससे सत्ता प्राप्त की जाती है, उसका उपयोग किया जाता है, उसका नियंत्रण किया जाता है, उद्देश्य जिससे उसका प्रयोग किया जाता है, जिस तरीके से निर्णय लिए जाते हैं, वे कारक जो निर्णयों के निर्माण को प्रभावित करते हैं और जिन प्रसंगों में उन निर्णयों को लिया जाता है।"

### 1.1.06. एक अनुशासन के रूप में उद्भव एवं विकास

यह सच है कि जब से राजनीतिक व्यवहार एवं राजनीति का अध्ययन करने का प्रयास आरंभ हुआ है, तभी से तुलनात्मक अध्ययन किए जाते रहे हैं, किंतु इस प्रकार के अध्ययन के उद्भव में मूलतः सरकार के औपचारिक एवं संरचनात्मक पक्षों पर ही अध्ययन केंद्रित रहा। तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन इस सदी के छठे दशक में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया, जब कई अग्रगण्य अमरीकी राजनीति-वैज्ञानिकों ने विदेशी व्यवस्थाओं से तुलनात्मक राजनीति व्यवस्थाओं और सरकारों के अध्ययन से राजनीतिक प्रणालियों के अध्ययन की ओर राजनीति के क्षेत्र का काया कल्प करना चाहा। व्यापक शब्दों में, जो परिवर्तन हुआ है, वह ऐसे क्षेत्र में हुआ है जिसको "विदेशी सरकारें" कहा जाता है, जबकि इसे अधिक उपयुक्त शब्दों में तुलनात्मक राजनीतिक प्रणालियाँ कहना चाहिए। तथापि इस विषय के ऐतिहासिक विकास को मोटे तौर पर तीन चरणों में रखा जा सकता है:-

(i) अपरिष्कृत, (ii) परिष्कृत, एवं (iii) प्रगामी रूप में परिष्कृत।

अरस्तु, मैक्यावली, टॉकवेल, मिल, ब्राइस, आस्ट्रोग्रोस्की और वेबर सरीखे महान् विभूतियाँ इसके पहले चरण से संबंधित है। जिन्होंने साधारण ढ़ंग से राजनीतिक संगठनों के संचालन को अच्छी तरह समझने हेतु अपने मौलिक उद्देश्य के लिए तुलनात्मक विधि का प्रयोग किया। इन लेखकों ने तथाकथित तुलनात्मक विधि का इस्तेमाल किया जिसका उद्देश्य यह था कि "वर्तमान अथवा अतीत में विद्यमान राज्य व्यवस्थाओं के माध्यम से ऐसी निश्चित सामग्री एकत्रित की जाय, जिससे कोई अन्वेषक

चयन, तुलना और निरसन की विधियों से राजनीतिक इतिहास के आदर्श प्रारूपों और प्रगतिवादी शक्तियों की खोज कर सके।''जॉन स्टुअर्ट मिल ने यह दिखाने का प्रयास किया कि तुलनात्मक विधि कई रूप धारण कर सकती है और इनमें सर्वपूर्णतम वह अंतर की प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक अंतर को छोड़कर दो समरूपी राज्य व्यवस्थाओं की इस दृष्टि से तुलना की जाती है कि इन अंतकारी कारकों के प्रभावों को खोजा जा सके। लार्ड जेम्स ब्राइस ने तुलनात्मक विधि को अपनाया और यह कहते हुए इसे वैज्ञानिक कहा, "जो इसे वैज्ञानिक बनाने के योग्य बनाता है, वह यह है कि समान कारण-कार्य संबंध स्थापित करके सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ऐसा करते हुए उन विक्षोभकारी प्रभावों को छोड़ दिया जाता है जो एक देश में उपस्थित और दूसरे में अनुपस्थित होते हुए परीक्षित मामलों में कुछ बातों को समान और कुछ को विभिन्न बना देते हैं।" इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति के विकास में इस चरण को 'अपरिष्कृत' चरण के रूप में देखा जाता है।

तुलनात्मक राजनीति के विकास में 'परिष्कृत' चरण के क्रम में सैमुअल एच. बीयर, एम.डास, बर्नार्ड उलम और राय सी. मैक्राइडिस सरीखे कुछ नए लेखकों के नामों की चर्चा होती है। जिन्होंने पर्याप्त आत्म-जागरुकता की मात्रा से तुलनात्मक विधि का उपयोग किया और साथ ही उनका उद्देश्य यह रहा कि विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का उपयोगी अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। वस्तुतः इस संवर्ग से संबंधित लेखकों ने संस्थानात्मक तुलनाओं के साधनों का जोरदार तरीकों से इस्तेमाल किया, ताकि सरकारों का अधिक यर्थाथवादी अर्थों में अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके जिन्हें वे 'राजनीतिक प्रणालियों' की संज्ञा देते थे, जबकि इसके पहले चरण के लेखकों ने इन तरीकों का उपयोग नहीं किया।

तुलनात्मक राजनीति में 'प्रगामी रूप से परिष्कृत चरण' से संबंधित लेखकों ने तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर अपने योगदानों को प्रस्तुत करने के लिए अंतः संबंधित संकल्पनाओं का उपयोग किया है। इस क्रम में मुख्य रूप से डेविड इस्टन, गैब्रील ए. एमंड, जेम्स सी कोलमैन, कार्ल डायश, जी. बी. पॉवेल, हेराल्ड लॉसवेल, राबर्ट ए. डॉल, एडवर्ड शील्स, हैरी एक्सटीन, डेविड एप्टर, लुसियन डब्ल्यू. पाई, सिडनी वर्वा, माइरोन बीनर, आर. एच. चिलकोट और कई अन्य विचारकों के नाम शामिल हैं। हालाँकि उन्होंने अपने ही तरीके से एक विशेष शब्द भंडार की व्यवस्था भी की है। जैसा कि रॉबर्ट्स ने कहा है, "अगर ईस्टन आगतों-निर्गतों, माँगों, दरवानों, समर्थनों और तनावों, पर्यावरण, पुनः निवेश, मूल्यों, क्रांतिक प्रयासों, और राजनीतिक प्राधिकारियों का जिक्र करते हैं तो आमंड आगत-निर्गत प्रकार्यों का समुच्चय पेश करते हैं। डायश संचार एवं नियंत्रण संबंधी भाषा ग्रहण कर लेते हैं और उसे विभिन्न प्रकार की पुनः निवेश की संकल्पना को राजनीतिक व्यवस्थाओं पर लागू करते हैं। जैसे-स्वायत्तता, स्मृति, भार, पाश्चात, अग्रता, लाभ, ग्राहक, संचार, सूचना का चयनित निरीक्षण आदि। आमंड का सार्वभौमिकता का उद्देश्य इस प्रकार की भाषा के चुनाव के प्रयोजन को संक्षेप में प्रस्तुत करना है। वे इतने सामान्य हैं कि उन्हें आकार, काल, विकास, क्रम और अन्य कारकों का ध्यान किए बिना ही किसी भी राजनीतिक इकाई पर लागू किया जा सकता है।

### 1.1.07. तुलनात्मक राजनीतिक पद्धति की उपयोगिता

तुलनात्मक राजनीतिक पद्धति के प्रयोग से अध्ययनकर्ता विभिन्न राज्यों, उनके संगठनों, उनकी नीतियों एवं कार्यकलापों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं और इस प्रकार की तुलनाओं के आधार पर राजनीतिक निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं। 1945 ई. तक इस पद्धति का प्रयोग राजनीतिक

व्यवस्थाओं की औपचारिक, कानूनी व संवैधानिक तुलनाओं तक ही सीमित रहा है। इसके बाद एशिया व अफ्रीका के नवोदित राज्यों के कारण राजनीतिक व्यवस्थाओं की अनेकता एवं विचित्रता ने तथा तुलना के प्रयत्नों और विश्लेषण उपकरणों के परिष्करण ने तुलनात्मक पद्धति को परिमार्जित कर दिया। अब तुलनात्मक पद्धति किसी राजनीतिक व्यवस्था की किसी अन्य राजनीतिक व्यवस्था से यांत्रिक तुलना मात्र नहीं मानी जाती है, बल्कि अब इसका प्रयोग सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में इस प्रकार से होता है, जिससे तुलनाएँ अधिक अर्थपूर्ण बनाई जा सके। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि यांत्रिकी तुलनाएँ किसी अर्थपूर्ण निष्कर्ष तक नहीं पहुँच सकती है। यदि भारत के प्रधानमंत्री की तुलना किसी गाँव के पंचायत के सरपंच से की जाय तो यह तुलना केवल यांत्रिकी ही होगी और ऐसी तुलना से न तो प्रधानमंत्री के बारे में और न ही सरपंच के बारे में कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है। अब तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग विशेष अर्थों में होने लगा है। यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में देखी जाने लगी है। इस नये अर्थ में इसका प्रयोग बहुत कठिन बन गया है, क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में तुल्य घटनाओं की अपनी इच्छा व मानस होता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में इस पद्धति का उपयोग अधिक प्रेरक, चुनौतीवाला पर साथ ही फलदायक बन गया है।

वस्तुतः तुलनात्मक पद्धति किसी राजनीतिक व्यवस्था, संस्था, प्रक्रिया व राजनीतिक व्यवहार से संबंधित दो या अधिक परिवर्त्यों में परस्पर आनुभविक संबंध स्थापित करने की ऐसी विधि है, जिसमें तुलना की सभी इकाइयों से संबंधित अन्य सभी परिवर्त्यों को स्थिर रखा जाता है। जैसे किसी निर्वाचन क्षेत्र में जाति व मतदान आचरण का संबंध मालूम करने के लिए अन्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान आचरण से इसकी तुलना की जाये। यहाँ जाति के अलावा सभी निर्वाचन क्षेत्रों में बांकी सभी बातें समान मानकर चला जाएगा अर्थात् जाति व मतदान व्यवहार के अलावा सभी परिवर्त्य स्थिर माने जाएँगे। उदाहरण के लिए, सभी निर्वाचन क्षेत्र ग्रामीण होंगे, सभी में एक-सी शिक्षा होगी, सभी में मतदाताओं में आर्थिक संपन्नता होगी।

तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की कतिपय शर्तें भी हैं। जिसमें पहला शर्त यह है कि इसके प्रयोग में तुलना की इकाइयों का प्रत्ययी ढाँचा एक-सा होना चाहिए अर्थात् भारत की संसद की तुलना ब्रिटिश संसद से करने पर, तुलना की दोनों इकाइयाँ समान प्रत्ययी ढ़ाँचे वाली कही जाएँगी। किंतु यदि बिहार की विधान सभा की तुलना अमेरिकी सीनेट से की जाय तो दोनों इकाइयों का प्रत्ययी ढाँचा अलग-अलग हो जाएगा। ऐसी तुलना से सामान्य सिद्धांत नहीं बनाए जा सकेंगे। दूसरी शर्त यह है कि अन्वेषण केंद्र के रूप में तुलनायोग्य व समान प्रत्ययी विषय ही तुलनात्मक अध्ययनों के लिए चुने जाएँ, अन्यथा अध्ययन के संबंध में परिकल्पना करना ही कठिन हो जाएगा। तीसरी शर्त यह है कि तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में केवल ऐसी ही प्रत्ययी इकाइयों का चयन करना चाहिए जिनकी परिभाषा की जा सके। प्रत्ययी इकाइयाँ ऐसी हों जिनकी मान्य परिभाषा संभव हो; जैसे, राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक विकास, राजनीतिक समाजीकरण की परिभाषा करना संभव है। समाजवाद, लोकतंत्र जैसे शब्दों की कई परिभाषाएँ की जा सकती है। चौथी शर्तें यह है कि तुलनात्मक विश्लेषणों में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग को उपयोगी बनाने के लिए अध्ययन का सुनिश्चित ध्येय या मन्तव्य होना चाहिए। इससे निरर्थक तथ्यों की तुलना से बचना संभव होता है। अगर शोध के केंद्र को सुनिश्चितता नहीं होगी तो अनावश्यक आँकड़ों के संकलन का खतरा रहेगा। साथ ही पाँचवीं शर्त यह है कि तुलना के लिए कम-से-कम दो उदाहरण अवश्य होने चाहिए। जहाँ केवल एक ही घटना या उदाहरण है वहाँ तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

मोटे तौर पर तुलनात्मक पद्धति का दो स्तरों पर तुलनाओं में प्रयोग होता है,- (क) समष्टि या वृहत् स्तरीय तथा (ख) व्यष्टि या लघु स्तरीय। यदि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था की किसी अन्य देश की राजनीतिक व्यवस्था से तुलना की जाए तो यह वृहत स्तरीय तुलना होगी। इसमें शोध का केंद्र संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था रहती है। यदि किसी देश की संसद की तुलना वैसी ही अन्य देश के संसंद से की जाय तो प्रत्ययी ढाँचा लघु स्तरीय होने के कारण तुलना लघु स्तरीय कहा जाएगा। यदि किसी घटना विशेष की व्याख्या करनी हो तो लघु स्तरीय अध्ययन व तुलनाएँ पर्याप्त रहेगी। पर शोध का उद्देश्य विश्वव्यापी सिद्धांत निर्माण होने पर वृहत स्तरीय अध्ययन अनिवार्य हो जाएगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलनात्मक पद्धति वैज्ञानिक पद्धतियों में से एक है। यह परिवर्त्यों के बीच आनुभविक संबंध सूत्रता की खोज करने की विधि है। यह राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक है। राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाने में तथा राजनीति में सिद्धांत निर्माण करने में इसकी उपयोगिता सर्वमान्य है।

### 1.1.08. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की समस्याएँ

जीन ब्लोण्डेल ने अपनी पुस्तक 'कम्पेरेटिव गवर्नमेंट' में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के मार्ग में आने वाली बाधाओं का विचारपूर्वक उल्लेख किया है। वे मोटे तौर पर तीन प्रकार की समस्याओं की चर्चा करते हैं:-

1. पर्याप्त सूचना तथा तथ्यों का अभाव
2. परिवर्तयों की अधिकता
3. नियम, प्रतिमान और व्यवहार में संबंध

आधुनिक तुलनात्मक राजनीति को प्रौढ़ता और निश्चितता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित समस्याओं का समाधान ढूँढना होगा -

#### 1.1.08.1. अवधारणा के प्रतिपादन की समस्या

अवधारणीकरण की समस्या के अंतर्गत कई तरह की समस्याएँ शामिल है, यथा अवधारणाओं के निर्माण तथा उनकी परिभाषा की समस्या, अमूर्तिकरण तथा वर्गीकरण के स्तर की समस्या, भाषा तथा तुलना के माप की समस्या तथा अनुवाद एवं अंत: सांस्कृतिक शब्दावली की समस्या। आधुनिक राजनीतिशास्त्री इन समस्याओं के समाधान में लगे हुए हैं और उन्हें एक निश्चित दायरे के अंदर सफलता भी प्राप्त हुई है।

#### 1.1.08.2. तुलनात्मक योजना की समस्या

तुलनात्मक योजना के अंतर्गत कई समस्याएँ पैदा होती है, जैसे - तुलना संबंधी आंकड़ों का संग्रह, सूक्ष्म तथा वृहत आँकड़ों को संबंधित करने का आधार, अंतर-सांस्कृतिक आँकड़ों का विश्लेषण एवं तुलना के लिए आवश्यक कुशलता और साधन की उपलब्धि। आधुनिक समाजशास्त्रियों की कृतियों को देखने से पता चलता है कि इन समस्याओं के समाधानों को खोजने में काफी चेतनशीलता दिखायी जा रही है।

#### 1.1.08.3. सिद्धांतीकरण की समस्या

आधुनिक राजनीतिशास्त्रियों ने तुलना योग्य इकाइयों के विश्लेषण के लिए जिस सैद्धांतिक संसाधनों की कल्पना की है वे इस प्रकार हैं,

1. ईस्टन का निवेश-निर्गतन व्यवस्था सिद्धांत

2. डायच का संचार पद्धति सिद्धांत
3. आमण्ड का संरचनात्मक-कार्यात्मक पद्धति सिद्धांत
4. करी और वेरड का विनिमय और समझौता सिद्धांत
5. राजनीतिक समाजशास्त्रीय तथा नृवंशीय सिद्धांत
6. राजनीति के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत
7. श्रेष्ठ जन वर्गीय सिद्धांत
8. निर्णय निर्माण सिद्धांत

समस्या यह है कि इनमें से किस सिद्धांत का तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाय? वस्तुतः तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए अभी तक किसी सामान्य सिद्धांत का निर्माण नहीं हो पाया है।

**1.1.08.4. अध्ययन प्रणाली की समस्या**

तुलनात्मक राजनीति की एक अन्य समस्या अध्ययन प्रणाली की है। यह आंकड़ों को समझाने और उनका विश्लेषण करने हेतु उनकी व्याख्या करने की एक अध्ययन प्रणाली है। इसके अंतर्गत कई प्रणालियों का प्रयोग होता है, जैसे- निरीक्षण, दस्तावेजीय शोध, सांख्यिकीय परिचालन, अनुरूपण तकनीक, प्रतिदर्श सर्वेक्षण, विषय-वस्तु विश्लेषण तथा गहन साक्षात्कार।

अब समस्या यह है कि इनमें से किस प्रणाली का तुलनात्मक राजनीति के लिए प्रयोग किया जाय?

**1.1.08.5. पृष्ठभूमि परिवर्तनों की समस्या**

तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में परिवर्त्यों की समस्या अत्यधिक जटिल है, क्योंकि राजनीतिक व्यवहार हर स्तर पर हर क्षण इनसे प्रभावित होता रहता है। ये आपस में एक दूसरे से इतने गुंथे हुए होते हैं कि इस कारण इनमें से महत्वपूर्ण की पहचान व उनका प्रभाव नाप पाना तुलनात्मक राजनीति की एक समस्या बनी हुई है।

**1.1.09. मूल्यांकन**

तुलनात्मक राजनीति व शासन का अपना पृथक क्षेत्र है। अतः इसके विद्वान को अपना कार्य करते समय कुछ विशेष बिंदुओं का मूल्यांकन करना होगा, जेसे-

01. राज्य कैसा है- विकसित या अविकसित या विकासशील, वह किस दुनियाँ में आता है- प्रथम्, द्वितीय या तृतीय?
02. वहाँ की राजनीतिक व्यवस्था कैसी है- उदारवादी, फासीवादी, साम्यवादी या किसी रूप में प्राधिकारवादी?
03. वहाँ की शासन प्रणाली कैसी है- संसदीय, अध्यक्षीय, अर्द्ध-अध्यक्षीय या सबसे भिन्न?
04. वहाँ की राजनीतिक संस्थाओं का क्या रूप है तथा उनकी संरचनाएँ व कार्य प्रणाली किस प्रकार की है?
05. वहाँ की राजनीतिक संस्कृति कैसी है- सहभागितायुक्त अर्थात् विकसित, अल्प-विकसित, पराश्रित या मिश्रित ?

06. राजनीतिक आधुनिकीकरण व विकास की दृष्टि से वहाँ क्या स्थिति है, समाज की मूल्य व्यवस्था, राजनीतिक संस्थाएँ व प्रक्रियाएँ कितनी बदल चुकी है या पुरानी शैली पर चल रही है?
07. दल व्यवस्था कैसी है- एक दलीय, दो दलीय, बहुदलीय या उनका विचित्र मिश्रण?
08. राजनीतिक प्रक्रिया में हितबद्ध गुटों की क्या भूमिका है तथा उनके बीच समन्वय व सामंजस्य बनाए रखने में राज्य की क्या भूमिका है?
09. राज्य में अनेक सामाजिक आंदोलनों की क्या स्थिति है। जातीय या नस्लीय या सांप्रदायिक शक्तियाँ अपनी क्या भूमिका निभा रही है और उसका राजनीतिक व्यवस्था के संचालन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।
10. उदारीकरण व वैश्वीकरण के युग में राज्य की प्रभुसत्ता के बाहरी व आंतरिक पक्षों को कहाँ तक आच्छादित या प्रतिबन्धित किया जा चुका है, और इसका राजनीतिक व्यवस्थाओं के परिचालन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

**1.1.10. सारांश**

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलनात्मक राजनीति आधुनिक राजनीतिशास्त्र का सर्वाधिक महात्वाकांक्षी क्षेत्र है, क्योंकि इसके अध्ययन से इसमें अपनायी जानेवाली प्रणालियों और तकनीकों तथा उसके निष्कर्षों में आधुनिक राजनीतिशास्त्र का बदलता हुआ रूप प्रतिबिंबित होता है। यह सत्य है कि तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन इसकी प्रणालियों और तकनीकों को लेकर विद्वानों में पूर्ण मतैक्य स्थापित नहीं हो पाया है फिर भी सभी विद्वान इस बात पर सहमत है कि तुलनात्मक राजनीति आधुनिक राजनीतिशास्त्र के व्यापक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है और विश्वव्यापी राजनीतिक पद्धति की कल्पना करती है।

**1.1.11. कठिन शब्दावली**

| | | |
|---|---|---|
| उद्भव | - | उत्पत्ति |
| अनुभवाश्रित | - | अनुभव के आधार पर |
| लक्ष्यार्थ | - | उद्देश्य की प्राप्ति |
| परिष्कृत | - | सरल रूप में |
| समष्टि | - | सामूहिक रूप से |

**1.1.12. अभ्यास प्रश्न**

**1.1.12.1. बहुविकल्पीय प्रश्न**

1. "तुलनात्मक राजनीति संस्थाओं एवं सरकारों के विविध प्रकार का एक तुलनात्मक विवेचन एवं विश्लेषण है" किसका कथन है:-
   (अ) रॉब्र्टस (ब) फ्रीमैन
   (स) ब्लोण्डेल (द) मैक्रिडिस
2. जीन ब्लोण्डेल की पुस्तक का क्या नाम है:-

(अ) कम्पेरेटिव गवर्नमेंट (ब) पोलिटिक्स
(स) दी स्पिरिट ऑफ द लॉज (द) इनमें से कोई नहीं।

3. तुलनात्मक राजनीति के विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन हैः-
(अ) व्यवहारवादी आंदोलन (ब) गैर पश्चिमी तथ्यों की उपलब्धि
(स) समाजशास्त्रीय प्रभाव (द) उपयुक्त सभी
4. तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में 'राजनीति' शब्द के मुख्यतः कितने लक्ष्यार्थ है ?
(अ) एक (ब) दो
(स) तीन (द) चार
5. "तुलनात्मक सरकार समकालीन विश्व में राष्ट्रीय सरकार के प्रतिमानों का अध्ययन है।" किसका कथन है?
(अ) रॉब्टस (ब) ब्लोण्डेल
(स) फ्रीमैन (द) फाइनर

उत्तरः- (1) (ब) (2) (अ) (3) (द) (4) (स) (5) (ब)

### 1.1.12.2. लघु उत्तरी प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति से आप क्या समझते हैं?
2. तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र का वर्णन कीजिए?
3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की उपयोगिता बताइए?
4. तुलनात्मक राजनीति के विकास का वर्णन कीजिए?
5. तुलनात्मक राजनीति की समस्याओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

### 1.1.12.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः-

1. तुलनात्मक राजनीति से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रकृति एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए?
2. तुलनात्मक राजनीति के उद्भव एवं विकास को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए?
3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से हमें क्या जानकारी मिलती है? इसकी उपयोगिता का उल्लेख कीजिए?
4. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की कौन-कौन सी समस्याएँ है, उल्लेख कीजिए?
5. "तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीति शब्द के तीन लक्ष्यार्थ हैं" इसकी व्याख्या कीजिए?

### 1.1.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन डॉ. पुखराज एवं फाड़िया डॉ. बी.एल., 2003, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, ISBN-81-7288-088-X, पृष्ठ क्रमांक 1 से 18 तक
2. प्रसाद, डॉ. मणिशंकर, 1986, तुलनात्मक राजनीति, पटना, भारती भवन, T-1071/86, पृष्ठ क्रमांक 1 से 8
3. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960

5. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## इकाई-2 : तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम : पारंपरिक उपागम

**इकाई की रूपरेखा**


**1.2.1. उद्देश्य**
**1.2.2. प्रस्तावना**
**1.2.3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम**
**1.2.4. पारंपरिक उपागम**
**1.2.4.1. दार्शनिक उपागम**
**1.2.4.2. ऐतिहासिक उपागम**
**1.2.4.3. औपचारिक एवं कानूनी उपागम**
**1.2.4.4. संरूपण उपागम**
**1.2.4.5. समस्यागत उपागम**
**1.2.4.6. क्षेत्रीय उपागम**
**1.2.4.7. संस्थागत-कार्यात्मक उपागम**
**1.2.5. पारंपरिक उपागम की विशेषताएँ**
**1.2.6. पारंपरिक तुलनात्मक अध्ययन की आलोचना**
**1.2.7. मूल्यांकन**
**1.2.8. सारांश**
**1.2.9. शब्दावली**
**1.2.10. अभ्यास प्रश्न**
**1.2.10.1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**
**1.2.10.2. लघु उत्तरी प्रश्न**
**1.2.10.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**
**1.2.11. संदर्भ ग्रंथ-सूची**


### 1.2.1. उद्देश्य

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से संबंधित पारंपरिक उपागम कौन-कौन से हैं? यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. तुलनात्मक राजनीति के पारंपरिक उपागम की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं, को जान सकेंगे।
3. तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान स्थिति में पारंपरिक एवं आधुनिक दृष्टिकोणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

### 1.2.2. प्रस्तावना

राजनीति के अध्ययन के लिए अनेक उपागम है। क्योंकि समस्याओं और आँकड़ों के चयन या किन्हीं प्रश्नों का समाधान करने के लिए प्रश्नों के कसौटियों का निर्धारण इस दृष्टिकोण से किया जाता है कि अध्ययनकर्ता इसके बारे में कैसा दृष्टिकोण अपनाता है। बहरहाल, जब कोई अध्ययनकर्ता अपने प्रयासों को प्रस्तुत किए जाने वाले रूप में पेश करता है तो उस उपागम से किसी विशेष विधि का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपागम और विधियाँ अंत: संबंधित हो जाती है। संक्षेप में, ''उपागमों में समस्याओं और संबंधित आँकड़ों के चयन के लिए कसौटियाँ होती है, जबकि विधियाँ आँकड़ों को लेने और उनका इस्तेमाल करने की कार्य विधियाँ है।''

### 1.2.3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के उपागम

तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अब तक केवल नाम मात्र से तुलनात्मक रहा है। अब तक यह केवल विदेशी शासनों, उनके ढाँचे तथा औपचारिक संगठन का ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा कानूनी तौर से अध्ययन रहा है, जबकि तुलनात्मक राजनीति को सिद्धांतों, ढ़ाँचों तथा वास्तविक व्यवहारों से भी अपना संबंध जोड़ना चाहिए। सरकारों के अध्ययन के प्रारंभिक प्रयासों को परंपरागत तुलनात्मक राजनीति का नाम दिया जाता है। इस दृष्टिकोण की शुरुआत अरस्तू के समय से मानी जाती है। उनके द्वारा प्रस्तुत संविधानों का वर्गीकरण तुलनात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। परंपरागत उपागमों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन करने वाले राजनीति-शास्त्रियों में वार्कर, लास्की, फ्रेडरिक, फाइनर तथा मुनरो का नाम उल्लेखनीय है।

प्लेटो से लेकर एडमंड वर्क तक बहुत से राजनीतिक विचारकों ने राजनीतिशास्त्र के सिद्धांतों का निर्धारण करने के लिए इतिहास, दर्शनशास्त्र और विधिशास्त्र के आधार वाक्यों का उपयोग किया है। इसी तथ्य के कारण स्वतंत्रता, समता, अधिकार, न्याय, विधि आदि के महत्वपूर्ण संकल्पनाएँ अस्तित्व में आई है, जिन्होंने आदर्शी राजनीतिक सिद्धांत के समृद्ध साहित्य में योगदान दिया है। इस क्रम में प्लेटो, काण्ट, हीगल जैसे विचारकों ने 'राज्य' का आदर्शीकरण किया तो अरस्तू और हॉब्स जैसे विचारकों ने 'सत्ता' के स्वरूप की व्याख्या करने और इसे समझने में यथार्थवादी उपागम से काम किया। इन दोनों वर्गों से अलग ग्रेशियस, बेंथम, ऑस्टिन और डायसी ने 'विधि' के उपागम को अपनाया। इस प्रकार राजनीतिविज्ञान के क्षेत्र में परंपरागत उपागम अस्तित्व में आया और मानव इतिहास के लंबे युग तक कार्यरत रहा, जिसने पिछले घटनाओं का परीक्षण उपलब्ध साक्ष्य के माध्यम से करना चाहा और उसके आधार पर समसामयिक राजनीतिक कार्यकलाप के कुछ पहलुओं के बारे में अंतिम निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि विवरणात्मक और संस्थात्मक उपागम अस्तित्व में आए और राजनीतिक वैज्ञानिकों ने मुख्य रूप से अपना ध्यान राज्य की मुख्य राजनीतिक संस्थाओं के परीक्षण पर केंद्रित किया; जैसे-कार्यपालिका, विधायिका, राजकीय सेवा, न्यायपालिका और स्थानीय सरकारें और जिनके परीक्षणों से उनके संगठन के बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। सुधारों के लिए प्रस्तावों पर चर्चा की जा सकती है और सामान्य निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं। अरस्तू ने शासकों की संख्या तथा राज्यों के उद्देश्यों को अपने वर्गीकरण का आधार बनाया तो मेकियावेली ने राजनीति के अध्ययन में नीति, न्याय, जैसी अमूर्त धारणाओं को त्यागकर तर्क और अनुभववाद पर अधिक बल

दिया। मॉण्टेस्क्यू ने निरीक्षण और ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया तो काण्ट, हीगल, मार्क्स आदि इतिहासवादियों ने सामाजिक गतिशीलता और विकासवादी सिद्धांत पर बल दिया।

तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान स्थिति का सही ढंग से मूल्यांकन करने के लिए हमें इसके उपागमों या दृष्टिकोणों को जानना जरूरी है। इस क्रम में मुख्यतः दो दृष्टिकोणों पारंपरिक उपागम एवं आधुनिक उपागम के बारे में हम विश्लेषण करेंगे।

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के क्रम में आधुनिक दृष्टिकोणों को पूर्णतया ग्रहण करने के बावजूद हम पारंपरिक दृष्टिकोणों की उपेक्षा नहीं कर सकते। तुलनात्मक राजनीति के विकास में पारंपरिक दृष्टिकोणों का भी काफी योगदान रहा है। मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाओं और सरकारों के प्रारंभिक चरणों में तुलनात्मक विश्लेषण के लिए अपनाई गई पद्धति को परंपरागत उपागम की संज्ञा दी जाती है। एलेन बॉल ने ठीक ही कहा है कि, ''परंपरागत की छाप न तो इस तथ्य की आलोचना है और न ही इसका खंडन कि आधुनिक राजनीतिक अध्ययन में भी पुराने उपागमों की महत्वपूर्ण भूमिका है, यद्यपि अब उपागमों के मार्गों पर उनका एकाधिकार नहीं है।'' पारंपरिक पद्धति के आधार पर तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन करने वाले विद्वानों में अरस्तू को इसका जनक कहा जाता है। बाद के वर्षों में फाइनर, अर्नेस्ट, बार्कर, मुनरो, ऑग व जिंक सरीखे विद्वानों का नाम महत्वपूर्ण एवं विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है।

### 1.2.4. पारंपरिक उपागम

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की पारंपरिक विधियों का संबंध इतिहास, नीतिशास्त्र, दर्शन एवं विधि की प्रधानता से रहा है जिसने उस पर 'पारंपरिक उपागम' की मुहर लगाई है। पूर्व में पारंपरिक उपागमों में विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के औपचारिक अध्ययन पर बल दिया गया। बाद में 'ऐतिहासिक-कानूनी पद्धति' की प्रतिक्रियास्वरूप' संरूपण पद्धतिक' को अपनाया गया। कालांतर में नये राज्यों के निर्माण के फलस्वरूप 'क्षेत्रीय अध्ययन' पर जोर दिया गया।

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से संबंधित प्रमुख पारंपरिक उपागम इस प्रकार है:-

1. दार्शनिक उपागम
2. ऐतिहासिक उपागम
3. औपचारिक एवं कानूनी उपागम
4. संरूपण उपागम
5. समस्यागत उपागम
6. क्षेत्रीय उपागम
7. संस्थागत-कार्यात्मक उपागम

#### 1.2.4.1. दार्शनिक उपागम

प्लेटो द्वारा दार्शनिक शासन और आदर्श राज्य की कल्पना, मूर के स्वर्गिक राज्य की धारणा, लॉक के प्राकृतिक नियम और प्राकृतिक अधिकार की धारणा और रूसो द्वारा सामान्य इच्छा की धारणा का प्रतिपादन दार्शनिक उपागम के आधार पर ही किया गया है। इस पद्धति का विशेष गुण यह है कि इसके द्वारा राजनीतिक जीवन के आदर्शों को निश्चित कर राजनीति को नैतिकता के नजदीक लाने का कार्य किया जाता है।

प्लेटो, रूसो, मिल तथा हीगल जैसे विद्वानों ने 'राज्य के स्वरूप' एवं 'आज्ञापालन के आधारों' की विवेचना की और आदर्शपरक प्रश्नों को उठाया। भले ही उनकी रचनाओं का संबंद्ध तुलनात्मक राजनीति से प्रत्यक्ष रूप से न हो, किंतु न्याय, स्वाधीनता तथा नागरिक दायित्वों के बारे में उन्होंने जो प्रश्न उठाए हैं, उनका आज भी महत्व है।

**1.2.4.2. ऐतिहासिक उपागम**

ऐतिहासिक उपागम हमें अतीत में देखने में सहायता प्रदान करती है और अतीत से इस प्रकार हम भविष्य के लिए मार्ग निकाल सकते हैं। यह पद्धति हमें बतलाती है कि राजनीतिक घटनाएँ असंबद्ध रूप से घटित नहीं होती, वरन एक टूटने वाली शृँखला के रूप में आती है। यह महान राजनीतिक आंदोलन और विचारों की खोज करती है। इसके आधार पर यह मालूम किया जा सकता है कि वर्तमान राजनीतिक संस्थाएँ और विचार कितने प्रमाणिक हैं।

गिलक्राइस्ट के अनुसार, ''इतिहास न केवल संस्थाओं की व्यवस्था करता है, वरन् यह भविष्य के लिए मार्ग बतलाने में भी सहायक होता है।'' ऐतिहासिक पद्धति की इसी उपयोगिता के कारण अरस्तू के समय से इस पद्धति का प्रयोग किया जाता रहा है। लास्की, मेकियावेली, मॉण्टेस्क्यू, हीगल, कार्ल मार्क्स, हर्बट स्पेन्सर आदि ने किसी-न-किसी रूप में इस पद्धति का उपयोग किया है।

कालांतर में ऐतिहासिक विधि ने राजनीतिक विकासवादी उपागम का रूप धारण कर लिया। सर हेनरी मेन तथा मैकाइवर की रचनाओं में विकासवादी सिद्धांतों की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। तुलनात्मक राजनीति के विकास में इन विकासवादी राजनीतिक सिद्धांतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

**1.2.4.3. औपचारिक एवं कानूनी उपागम**

19वीं शताब्दी में ऐतिहासिक पद्धति के विरूद्ध प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गई। इस समय कुछ ऐसे विचारक सामने आये जिन्होंने राजनीतिक संस्थाओं पर विशुद्ध कानूनी दृष्टिकोण से विचार किया। औपचारिक या कानूनी पद्धति का अनुसरण करने वालों में सबसे आगे जर्मनी के विद्वान रहे। हालांकि अमेरिका और इंग्लैंड में भी कई ऐसे विधिवेत्ता हुए जिन्होंने कानून और संविधानों को ही राजनीति का विषय क्षेत्र मान लिया था। डायसी थियोडोर, बुल्से, विल्सन, कार्टर, हर्ज, न्यूमैन सरीखे विद्वानों ने देश विदेश की कानूनी संहिताओं और संविधानों का विश्लेषण करके तुलनात्मक राजनीति को पुष्ट किया है। औपचारिक तथा कानूनी पद्धति पर लिखी गई अधिकांश पुस्तकें वर्णनात्मक हैं तथा औपचारिक संस्थाओं व कानूनों के अध्ययन पर बल देती है। इन रचनाओं की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें सामाजिक-आर्थिक मनोवैज्ञानिक कारकों की उपेक्षा की जाती है।

**1.2.4.4. संरूपण उपागम**

इस विधि का प्रयोग करने वाले विद्वानों में न्यूमैन, कार्टर, हर्ज, रोशर, इत्यादि प्रमुख रूप से आते हैं। इसमें प्रत्येक राज्य की राजनीतिक व्यवस्था को 'धूरी' मानकर उसका अलग से अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के द्वारा बहुत से आँकड़े तथा अन्य आवश्यक सामग्री एकत्रित करके तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इस उपागम की कमजोरी यह है कि यह वर्णनात्मक तथा संकुचित है और इसमें सामाजिक-आर्थिक कारकों की उपेक्षा की जाती है। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इस उपागम ने तुलनात्मक राजनीतिक को ठोस आधार तथा पर्याप्त सामग्री प्रदान की है।

### 1.2.4.5. समस्यागत उपागम

इस उपागम के द्वारा विद्वानों ने शासन प्रणालियों की प्रचलित समस्याएँ जैसे, 'लोकतंत्र तथा आर्थिक नियोजन में संबंध', 'द्विसदनात्मक व्यवस्था का ह्रास', 'प्रदत्त व्यवस्थापन' आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया। कुछ विद्वानों ने समस्या के अध्ययन के पश्चात् सुझाव भी दिए; जैसे, ''सामंत सदन का पुर्नगठन', 'व्यावसायिक समूहों को नीति-निर्माण में भाग लेने का अवसर प्रदान करना', 'कार्यात्मक प्रतिनिधि-समाजों का विकास' आदि। इस उपागम ने तुलनात्मक अध्ययनों को औपचारिक-कानूनी अध्ययन मार्ग से हंटाकर ठोस आधार पर खड़ा कर दिया। इस उपागम को अधिक उपयोगी बनाने के लिए मनुष्यों के व्यवहार तथा राजनीतिक संस्थाओं एवं अन्य सामाजिक-आर्थिक कारकों में संबंध की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

### 1.2.4.6. क्षेत्रीय उपागम

क्षेत्रीय उपागम के आधार पर अनेक विद्वानों ने विकासशील देशों की राजनीति को अपने अध्ययन का विषय बनाया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में क्षेत्रीय उपागम का विशेष रूप से प्रयोग किया जा रहा था। मैक्रिडीस के शब्दों में, ''कतिपय देशों के ऐसे समूहों को एक क्षेत्र माना जा सकता है जिनमें पर्याप्त सांस्कृतिक एकरूपता हो ताकि उनकी राजनीतिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके।'' आमण्ड एवं कोलमैन, रॉबर्ट स्केलापिनो, बेरिंगटन मूर आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों द्वारा क्षेत्रीय उपागम के आधार को समझाने का प्रयास किया है। इन ग्रंथों में भौगोलिक समीपता के आधार पर विभिन्न देशों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता था।

क्षेत्रीय उपागम भौगोलिक समीपता को 'क्षेत्र' के निर्धारण का आधार मानता है, किंतु भौगोलिक समीपता किसी भी प्रकार ऐतिहासिक, सांस्कृतिक अथवा जातीय एकरूपता की परिचायक नहीं हो सकती है। अतः तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर सामान्य सिद्धांत के निर्माण में यह उपागम अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सका।

### 1.2.4.7. संस्थागत-कार्यात्मक उपागम

इस उपागम में राज्य अथवा शासन को एक इकाई के रूप में नहीं देखा जाता था, अपितु समस्त राजनीतिक व्यवस्था को ही एक इकाई माना जाता है। इसमें राजनीतिक संस्थाओं के संगठनात्मक एवं कार्यात्मक अंगों पर एक जैसा बल दिया जाता है। इसमें मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाओं द्वारा संपादित कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। हरमन फाइनर, कार्ल जे. फ्रेडरिक तथा के.सी. ह्वीयर के अध्ययनों में इसी उपागम को अपनाया गया है।

## 1.2.5. पारंपरिक उपागम की विशेषताएँ

आर.सी. मैक्रिडिस ने पारंपरिक उपागम की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है। जो निम्नलिखित हैं -

(1) प्रधानत: अ- तुलनात्मक
(2) प्रधानतः वर्णनात्मक
(3) मूलतः संकीर्ण
(4) मूलतः स्थिर तथा
(5) मूलतः प्रबंधकीय।

इसके अतिरिक्त प्रधानतः आदर्शपरक एवं प्रधानतः औपचारिक संस्थागत भी इसकी अन्य दो विशेषताएँ हैं।

**1.2.5.1. प्रधानतः अ-तुलनात्मक** - चूँकि ये सभी अध्ययन एक-दो देशों के अध्ययन तक ही सीमित थे। इनमें अध्ययन की इकाई किसी एक देश का संविधान होता था। फिर ऐसे अध्ययनों से उभरने वाली समानताओं- असमानताओं की तुलना को ही तुलनात्मक अध्ययन कह दिया जाता था। वस्तुतः पारंपरिक लेखकों का मुख्य उद्देश्य विभिन्न देशों के संविधानों, विधायिकाओं, मंत्रिमण्डलों अथवा राष्ट्रध्यक्षों की औपचारिक एवं संस्थागत विवेचना करना मात्र था।

**1.2.5.2. प्रधानतः वर्णनात्मक** - पारंपरिक तुलनात्मक अध्ययन समस्या समाधानात्मक या विश्लेषणनात्मक न होकर वर्णनात्मक रहा है। परंपरागत लेखकों ने शासन के संगठन तथा कार्यों के वर्णन को अत्यधिक महत्व दिया। उनकी मान्यता थी कि संस्थाओं का वर्णन ही उनकी व्याख्या के लिए पर्याप्त है।

**1.2.5.3. मूलतः संकीर्ण** - पारंपरिक तुलनात्मक अध्ययन प्रधानतः पाश्चात्य राज्यों की शासन व्यवस्थाओं की संकीर्ण परिधि में बंधे रहे। इसके अतिरिक्त अधिकांश परंपरागत लेखकों का ध्यान केवल लोकतंत्रीय शासन प्रणालियों तक ही सीमित था। कम विकसित और पिछड़े हुए देशों की उपेक्षा के कारण परंपरावादी विद्वानों का अध्ययन-क्षेत्र सिमटकर बहुत संकीर्ण रह गया।

**1.2.5.4 मूलतः स्थिर** - पारंपरिक विद्वानों ने कानूनी संदर्भ में राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया और उन तत्वों की अवहेलना की जो राजनीतिक परिवर्तनों एवं विकास की समस्याओं एवं दिशाओं से संबंधित होते हैं। उन्होंने उन परिस्थितियों एवं तत्वों का अध्ययन करना आवश्यक नहीं समझा जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में संसदीय प्रणाली को सफल अथवा असफल बनाती है।

**1.2.5.5. मूलतः प्रबंधकीय** - तुलनात्मक शासन से संबंधित अधिकांश परंपरागत रचनाएँ लंबे निबंधों जैसी हैं इस कालावधि में विदेशी शासन प्रणालियों पर जो महत्वपूर्ण अध्ययन लिखे गए हैं उनमें से अनेक में किसी एक शासन व्यवस्था की संस्था अथवा उस व्यवस्था में किसी खास संस्था का विवेचन किया गया है। इन विद्वानों के अध्ययन के प्रिय विषय रहे हैं,- अमेरिकी राष्ट्रपति, ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था, ब्रिटिश कैबिनेट, अमेरिकी कांग्रेस, फ्रेंच प्रशासनिक कानून आदि। कहने का अभिप्राय यह है कि ये सभी अध्ययन एक-एक संस्था या एक ही व्यवस्था पर विस्तृत निबंध के समान थे।

**1.2.5.6. प्रधानतः आदर्शपरक** - पारंपरिक विद्वान आदर्शपरक धारणाओं को राजनीतिक संस्थाओं के लिए कसौटी मानकर चलते हैं। जैसे, 'लोकतंत्र सर्वश्रेष्ठ प्रणाली है', 'लोकतंत्र वही सफल रहेगा जहाँ द्विदलीय राजनीतिक दल होंगे' आदि और इन्हीं कसौटी के आधार पर शासन व्यवस्थाओं की सफलता और असफलता का मूल्यांकन करते हैं।

**1.2.5.7. प्रधानतः औपचारिक संस्थागत** - डायसी, मुनरो एवं ऑग सरीखे विद्वानों ने अपने अध्ययन को औपचारिक संस्थागत व्यवस्थाओं के विवेचन तक ही सीमित रखा। उन्होंने इस बात को जानने का प्रयत्न नहीं किया कि संविधान द्वारा स्थापित संस्थाएँ व्यवहार में किस प्रकार काम करती है।

### 1.2.6. पारंपरिक तुलनात्मक अध्ययन की आलोचना

पारंपरिक अध्ययनों में वास्तविक अर्थों में तुलनाओं की उपेक्षा ही की गई है। राजनीतिक व्यवहार के अराजनीतिक तत्वों की इसमें उपेक्षा हुई तथा राजनीतिक आचरण की व्याख्या करने का प्रयत्न ही नहीं किया गया। पारंपरिक तुलनात्मक अध्ययन की प्रमुख त्रुटियाँ इस प्रकार हैं -

**1.2.6.1. अर्थपूर्ण तुलनाओं का अभाव -** पारंपरिक अध्ययनों में अर्थपूर्ण तुलनाओं का प्रयास नहीं किया गया है। इसमें केवल शासन प्रणालियों अथवा संस्थाओं के उपरी ढाँचे की समानताओं और असमानताओं की बात कही गई है, जिसे अर्थपूर्ण तुलना नहीं कहा जा सकता। आमण्ड एवं पॉवेल के शब्दों में ''परंपरागत तुलनात्मक राजनीति, अलग-अलग राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताओं पर प्रकाश डालने तक ही सीमित रही और व्यवस्थित तुलनात्मक विश्लेषण नाम मात्र का ही था।''

**1.2.6.2. अराजनीति के तत्वों की उपेक्षा -** परंपरागत तुलनात्मक अध्ययनों में उन गैर-राजनीतिक कारकों की उपेक्षा की गई, जो शासन प्रणालियों के स्वरूप को निर्धारित करने में अत्यंत प्रभावी होते हैं। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों का वस्तुतः राजनीतिक व्यवस्था पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि उनको समझे बिना राजनीतिक व्यवस्था के अंतरंग की तुलना संभव नहीं है। इन गत्यात्मक तत्वों की उपेक्षा करके तुलनात्मक अध्ययन अत्यधिक औपचारिक बन गया। आमण्ड व पॉवेल के शब्दों में, ''इनका मुख्य जोर संस्थाओं, कानूनों, विधियों व राजनीतिक विचारों तथा विचारधाराओं पर ही था और उनके कार्य, अंत:क्रिया, व्यवहार व उपलब्धियों की उपेक्षा की गई।''

**1.2.6.3. विश्लेषण का अभाव -** परंपरागत उपागम वर्णनात्मक अधिक था और विश्लेषणात्मक कम। इन अध्ययनों में केवल राजनीतिक ढाँचे का मोटा वर्णन किया गया है और उनकी परस्पर तुलना की उपेक्षा कर दी गई है। परंपरागत अध्ययन में जो कुछ तुलना की गई है उसमें संघीय व एकात्मक व्यवस्था, संघात्मक व अध्यक्षात्मक व्यवस्था अथवा प्रजातंत्र व अधिनायकवाद, आदि के गुण-दोषों और उनके बीच समानताओं-असमानताओं को दर्शाया गया है।

**1.2.6.4 संकुचित अध्ययन -** परंपरागत तुलनात्मक अध्ययन संकुचित कहे जाते हैं। परंपरागत लेखकों ने न तो अलोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था का ही अध्ययन किया और न ही विकासशील देशों की शासन प्रणालियों को अपने अध्ययनों में शामिल किया। तुलनात्मक राजनीति पर लिखी गई अधिकांश पुस्तकों में लोकतांत्रिक व विशेष तौर से पश्चिमी यूरोपीय संस्थाओं का ही वर्णन है।

**1.2.6.5. आनुभविक-वैज्ञानिक पद्धति की उपेक्षा -** परंपरागत तुलनात्मक अध्ययनों में ऐतिहासिक और वैधानिक पद्धति पर जोर दिया गया है। इन अध्ययनों में आनुभविक तथ्यों पर जोर नहीं दिया गया है और परिमाणन का भी अभाव ही रहा।

**1.2.6.6. सिद्धांत निर्माण के लक्ष्य का अभाव -** परंपरागत विद्वान केवल राजनीतिक संस्थाओं के वर्णन तक ही सीमित रहे। उनके पास विस्तृत सामान्यीकरण अथवा सिद्धांत निर्माण का व्यापक लक्ष्य नहीं था, जबकि तुलनात्मक राजनीति का अंतिम उद्देश्य सिद्धांत उत्पन्न करना है व प्रामाणिक सामान्यीकरण तक पहुँचने में सहायता करना है।

### 1.2.7. मूल्यांकन

तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान स्थिति का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें इसके पारंपरिक एवं आधुनिक दृष्टिकोणों को विश्लेषित करना होगा। तुलनात्मक राजनीति के विकास में पारंपरिक पद्धति का काफी योगदान रहा है। मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाओं और सरकारों के प्रारंभिक चरणों में तुलनात्मक विश्लेषण के लिए अपनाई गई पद्धति को परंपरागत पद्धति की संज्ञा दी जाती है। एलेन बॉल ने ठीक ही कहा है कि, ''परंपरागत की छाप न तो इस तथ्य की आलोचना है और न ही इसका खंडन है कि आधुनिक राजनीतिक अध्ययन में भी पुराने उपागमों की महत्वपूर्ण भूमिका है, यद्यपि अब उपागमों के मार्गों पर उनका एकाधिकार नहीं है।'' पारंपरिक पद्धति के आधार पर तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन करने वाले विद्वानों में अरस्तू को इसका जनक कहा जा सकता है। पारंपरिक पद्धति को सीमित अथवा अविकसित पद्धति भी कहा जा सकता है। क्योंकि पारंपरिक पद्धति शासन व्यवस्था के संस्थागत एवं औपचारिक पक्षों तक ही सीमित थी।

आर.सी. मैक्रीडिस के अनुसार, ''तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अब तक केवल नाममात्र का ही तुलनात्मक रहा है। यह केवल विदेशी सरकारों, उनके ढाँचे तथा औपचारिक संगठन का ऐतिहासिक, विवरणात्मक एवं वैधानिक अध्ययन ही रहा है, जबकि तुलनात्मक राजनीति को सिद्धांतों, ढाँचों और वास्तविक व्यवहार से अपना संबंध जोड़ना चाहिए।''

### 1.2.8. सारांश

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पारंपरिक पद्धति मूलतः वर्णनात्मक, प्रबंधात्मक एवं अति संकीर्ण व स्थिर पद्धति है। विद्वानों ने दार्शनिक विधि, ऐतिहासिक विधि, औपचारिक एवं कानूनी विधि, संरूपण विधि, समस्यागत विधि, क्षेत्रीय उपागम तथा संस्थागत-कार्यात्मक उपागम को पारंपरिक उपागम के रूप में माना है। पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखी गई अधिकांश पुस्तकों में अमरीकी और यूरोपीय संस्थाओं का ही वर्णन है। कतिपय रचनाओं को छोड़कर इन ग्रंथों में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का तो कोई विश्लेषण है ही नहीं। पारंपरिक लेखक व्यापक राजनीतिक सिद्धांत का भी प्रतिपादन नहीं करते और उनकी दृष्टि राजनीतिक संस्थाओं के औपचारिक वर्णन तक ही सीमित रही है।

इन कमियों के बावजूद पारंपरिक पद्धति को अर्धशून्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि पारंपरिक अध्ययनों ने इतने राजनीतिक तथ्य संकलित किए कि उनसे बाद में उपयोगी विश्लेषण संभव हुआ। इन्हीं अध्ययनों के कारण राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलताओं का आभास हुआ और राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन के लिए नूतन अभिमुखों की आवश्यकता को महसूस किया गया।

अंत में एलेन बाल के कथनानुसार, ''परंपरागत राजनीतिक विद्वानों द्वारा खड़े किए गए 'बिचारों के महल' में चाहे कितनी ही कमजोर बुनियाद क्यों न हो, उनकी कृतियों द्वारा ही सर्वप्रथम तुलनात्मक सरकार के बारे में हमें जानकारी प्राप्त होती है।''

**1.2.9. शब्दावली**

| | | |
|---|---|---|
| (1) संकीर्ण | - | सीमित दायरा |
| (2) प्रबंधकीय | - | व्यवस्थित रूप से |
| (3) अधिनायकवाद | - | एक से अधिक शासन करनेवाला |
| (4) असंबद्ध | - | अव्यस्थित रूप से |
| (5) गत्यात्मक | - | गतिशील रूप से |

**1.2.10. अभ्यास प्रश्न**

**1.2.10.1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

1. मैक्रिडिस के अनुसार पारंपरिक उपागम की कितनी विशेषताएँ हैं-
   (अ) तीन (ब) पाँच
   (स) सात (द) आठ
2. प्राकृतिक नियम और प्राकृतिक अधिकार की धारणा किनके द्वारा प्रतिपादित किया गया -
   (अ) प्लेटो (ब) मूर
   (स) लॉक (द) रूसो
3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन से संबंधित प्रमुख पारंपरिक उपागम कितने प्रकार के हैं -
   (अ) तीन (ब) पाँच
   (स) सात (द) नौ
4. तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन अबतक केवल नाममात्र का ही तुलनात्मक रहा है'' किनका कथन है -
   (अ) ऐलेन बॉल (ब) मैक्रिडिस
   (स) फाइनर (द) न्यूमैन
5. इतिहास न केवल संस्थाओं की व्यवस्था करता है। वरन् यह भविष्य के लिए मार्ग बतलाने में भी सहायक होता है।'' यह किनका कथन है?
   (अ) गिलक्राइस्ट (ब) मेकिमावेली
   (स) हीगस (द) लॉस्की

उत्तरः- 1 (ब) 2 (स) 3 (स) 4 (ब) 5 (अ)

**1.2.10.2. लघु उत्तरी प्रश्न**

1. क्षेत्रीय उपागम से आप क्या समझते हैं?
2. औपचारिक एवं कानूनी उपागम क्या है?
3. तुलनात्मक राजनीति की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करें?
4. संस्थागत-कार्यात्मक उपागम एवं समस्यागत उपागम में क्या अंतर है ?
5. ऐतिहासिक उपागम एवं दार्शनिक उपागम का वर्णन करें?

### 1.2.10.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति के पारंपरिक उपागम से आप क्या समझते हैं। विश्लेषण कीजिए।
2. पारंपरिक उपागम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. तुलनात्मक राजनीति के पारंपरिक उपागम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

### 1.2.11. संदर्भ ग्रंथ-सूची


1. जैन डॉ. पुखराज एवं फाड़िया डॉ. बी.एल., 2003, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, ISBN-81-7288-088-X, पृष्ठ क्रमांक 34 से 40 तक
2. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
3. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
4. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956
5. प्रसाद, डॉ. मणिशंकर, 1986, तुलनात्मक राजनीति, पटना, भारती भवन, T-1071/86, पृष्ठ क्रमांक 1 से 8

## इकाई-3 : संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक एवं व्यवस्थात्मक उपागम

**इकाई की रूपरेखा**

**1.3.1. उद्देश्य**
**1.3.2. प्रस्तावना**
**1.3.3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम**
**1.3.4. व्यवस्थात्मक उपागम**
**1.3.5. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएँ**
**1.3.6. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की आलोचनाएँ**
**1.3.7. व्यस्थात्मक उपागम की विशेषताएँ**
**1.3.8. मूल्यांकन**
**1.3.9. सारांश**
**1.3.10. कठिन शब्दावली**
**1.3.11. अभ्यास प्रश्न**
**1.3.11.1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**
**1.3.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न**
**1.3.11.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**
**1.3.12. संदर्भ ग्रंथ-सूची**

### 1.3.1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने का उद्देश्य तुलनात्मक राजनीति में आधुनिक दृष्टिकोण को झलकाना है।

1. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम क्या है एवं इसकी क्या विशेषताएँ हैं। इसके बारे में जान सकेंगे।
2. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के अभ्युदय के कारणों के बारे में जान सकेंगे।
3. व्यवस्थात्मक उपागम क्या है। इसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. व्यवस्थात्मक उपागम के कौन-कौन से आधारभूत लक्षण है, यह जान सकेंगे।

### 1.3.2. प्रस्तावना

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम एवं व्यवस्थात्मक उपागम राजनीतिशास्त्र को समाजशास्त्र की देन है। तुलनात्मक राजनीति में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की लोकप्रियता व्यवस्थात्मक उपागम के बाद ही पनपी और बढ़ी है। कई समीक्षकों ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को व्यवस्थात्मक उपागम का ही एक रूप माना है। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था-विश्लेषण के रूप को निवेश-निर्गत मॉडल का नाम दिया गया है तथा आमंड एवं पॉवेल के द्वारा प्रतिपादित स्वरूप को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्यवस्था की संज्ञा दी गई है।

### 1.3.3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम

कतिपय विद्वानों का मानना है कि तुलनात्मक राजनीति में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का जन्म डेविड ईस्टन के निवेश-निर्गत- विश्लेषण से उत्पन्न असंतोष के कारण हुआ। कुछ विचारक बेझिझक यह मानने के लिए तैयार हैं कि 'ईस्टन' के निवेश निर्गत मॉडल के व्यावहारिक प्रयोग की कठिनाई कुछ हद तक संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के अभ्युदय के लिए उत्तरदायी रही है। ईस्टन ने संपूर्ण व्यवस्था पर तो ध्यान केंद्रित किया, परंतु व्यवस्था की संरचनाओं और उससे संबंधित प्रक्रियाओं में संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं किया।

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्थाओं में कुछ संरचनाएँ होती है और प्रत्येक संरचना के अलग-अलग कार्य हैं। समाजशास्त्रियों ने समाज को एक संपूर्ण एवं अंतर्संबंधी व्यवस्था माना है, जिसका प्रत्येक अंग या उपांग एक विशेष कार्य संपादित करता है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण दो प्रत्ययों के प्रयोग पर आधारित है। वे हैं- 'संरचना' एवं 'प्रकार्य'।

'संरचना' संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का एक महत्वपूर्ण प्रत्यय है। किसी राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रकार्यों का निष्पादन करने वाला व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना कहा जाता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में संरचना के विशेष कार्य निहित हैं। टालकॉट पार्सन्स ने सामाजिक व्यवस्था के चार कार्यों का संकेत किया है:- (1) लक्ष्य प्राप्ति, (2) अनुकुलन, (3) एकीकरण, (4) संरक्षण या संकट-निवारण।

'प्रकार्य' एक व्यापक शब्द है जिसके कई अर्थ हैं। ऑरेन यंग ने कहा है कि, ''प्रकार्य अंततोगत्वा वस्तुनिष्ठ परिणामों से संबंधित है।'' मर्टन के कथनानुसार, ''प्रकार्य पर्यवेक्षित परिणाम है जो किसी व्यवस्था के अनुकुलन या पुनः समायोजन बनाए रखते है।'' राबर्ट बोन की परिभाषा अधिक स्पष्ट और तर्कसंगत है, ''प्रकार्य व्यवस्था को बनाए रखने और उसे विकसित करने के लिए किया जाने वाला ऐसा क्रिया-प्रतिमान है जो नियमित रूप से होता रहता है।''

जब किसी संरचना में निरंतर होनेवाले व्यवहारों के कारण उस संरचना के अस्तित्व को स्थिर रहने का सहारा मिलता है तो उन क्रियाओं को प्रकार्यात्मक कहा जाता है। इसके विपरीत, जब निरंतर होने वाले व्यवहारों से संरचना के अस्तित्व पर आघात पहुँचता है तो उसे 'विकार्य' कहा जाता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक संरचना के कतिपय निर्धारित प्रकार्य होते हैं, जिनमें से कुछ प्रकार्य स्पष्ट एवं निश्चित होते हैं, जैसे भारत में संसद का कार्य है - विधि निर्माण करना। कुछ प्रकार्य ऐसे हैं जो स्पष्ट एवं सुनिश्चित नहीं हैं। ऐसे कार्यों को 'अव्यक्त' कार्य कहा जाता है। इन कार्यों की जानकारी तब तक नहीं हो पाती है जब तक उनकी खोज न की जाय या उनका पता न लगाया जाय। उसी प्रकार, कुछ समान संरचनाएँ समान कार्यों का संपादन करती है, परंतु कुछ ऐसे भी संरचनाएँ हैं जो समान होते हुए भी असमान कार्यों का संपादन करती है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम कुछ मान्यताओं पर आधारित है -

1. प्रत्येक व्यवस्था में संरचनाएँ होती है।
2. प्रत्येक संरचना के निर्धारित कार्य है।
3. संरचनाओं द्वारा किए गए कार्यों का महत्व व्यवस्था के कार्यों के परिपेक्ष्य में ही है।
4. व्यवस्था के अंग के रूप में ही इन कार्यों का महत्व है।

5. व्यवस्था की प्रवृति संतुलन की ओर होती है।

**1.3.4. व्यवस्थात्मक उपागम**

**व्यवस्थात्मक उपागम या व्यवस्था -** विश्लेषण उपागम तुलनात्मक राजनीति का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। प्राचीन काल से प्रचलित शब्दावली 'राज्य', 'सरकार', आदि के स्थान पर 'राजनीतिक व्यवस्था' शब्द अधिक उपयुक्त तथा अधिक उपयोगी समझा जाने लगा है। प्राचीन काल में विद्वानों ने तुलनात्मक शासन के अंतर्गत औपचारिक एवं संस्थागत एजेंसियों के संबंध में विवेचन किया, परंतु राजनीतिक दल, दबाव-समूह, कवीले, जाति आदि अनौपचारिक किंतु महत्वपूर्ण एजेंसियों की घोर उपेक्षा की। आधुनिक युग में सुनिश्चित बनाने के दृष्टिकोण से संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का संदर्भ अधिक उपयुक्त माना जाने लगा।

**राजनीतिक व्यवस्था -** विश्लेषण के क्रम में 'व्यवस्था' शब्द का अर्थ जानना जरूरी है। 'व्यवस्था' शब्द मूलतः विज्ञान की शब्दावली है, जिसे समाजशास्त्रियों ने समाज विज्ञानों के लिए प्रयोग किया है। मानवशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में इसके प्रचलन से प्रभावित होकर ईस्टन, आमंड तथा पॉवेल ने राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में व्यवस्थात्मक सिद्धांत को अपनाया।

राजनीतिक व्यवस्थात्मक सिद्धांत की व्याख्या करने से पूर्व 'राजनीतिक व्यवस्था' के अर्थ एवं उनकी विशिष्टताओं के संबंध में जानना अत्यावश्यक है। रार्बट डॉल के अनुसार, ''राजनीतिक व्यवस्था मानव संबंधों का वह स्थायी स्वरूप है, जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हो।'' डेविड ईस्टन ने कहा है कि ''किसी समाज में पारस्परिक क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था को, जिससे उस समाज में बाध्यकारी या अधिकारपूर्ण नीति-निर्धारण होते हैं, राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है।'' कुछ वर्षों बाद डेविड ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की और भी निश्चित एवं सुस्पष्ट परिभाषा दी, जो इस प्रकार है, ''राजनीतिक व्यवस्था स्वयं में परिपूर्ण सत्ता है जो उस वातावरण या परिवेश जिससे वह घिरी हुई होती है और जिसके अंतर्गत प्रचलित होती है। स्पष्टतः पृथकनीय रहती है।'' आमंड एवं पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था की परिभाषा देते हुए कहा है कि, ''राजनीतिक व्यवस्था से इसके अंगों की अंतरनिर्भरता और इसके पर्यावरण में किसी-न-किसी प्रकार की सीमा का बोध होता है।'' उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था के अंगों की अंतर्निभरता को और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''पारस्परिक निर्भरता से हमारा तात्पर्य है कि जब किसी व्यवस्था में किसी अंग के गुणों या लक्षणों में परिवर्तन होता है तो इससे सभी अंग और संपूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती है।''

उपर्युक्त परिभाषाएँ यह स्पष्ट करती है कि राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी उपव्यवस्था है जिसके विभिन्न भागों में होने वाले परिवर्तनों से अन्य अंगों तथा संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में उसी रूप में परिवर्तन हो जाते हैं।

व्यवस्थात्मक उपागम के प्रतिपादकों का यह मत है कि प्रत्येक शास्त्र या अनुशासन में अनेक सामान्य वस्तु एवं तत्व हैं। यदि उन्हें एक साथ मिलाकर तत्वरूप में रखा जाय तो एक सामान्य सिद्धांत की रचना की जा सकती है। 'व्यवस्था' को एक संपूर्ण का रूप देकर उसके विभिन्न घटकों, भागों एवं उपभागों के साथ विश्लेषण करना ही व्यवस्थात्मक विश्लेषण है। व्यवस्था- विश्लेषण तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में एक नये दृष्टिकोण तथा नयी प्रवृत्ति का प्रतीक है। इसलिए, इसके अंतर्गत कुछ नयी शब्दालियों का प्रयोग किया गया है। यथा, 'निवेश', 'निर्गत' तथा 'पुनर्निवेशन'।

'डेनिड ईस्टन' को व्यवस्थात्मक उपागम का जनक कहा जाता है। 1953 ई. में अपनी प्रथम पुस्तक 'द पोलिटिकल सिस्टम' में उसने इस सिद्धांत की व्याख्या की थी। 'डेविड ईस्टन' के मतानुसार, समाज में मूल्यों का आधिकारिक निर्धारण करने वाली अंत:क्रियाओं के समूह को राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था के दो विशेष अनुलक्षण होते हैं। एक ओर, राजनीतिक व्यवस्था आदान-प्रदान और कार्य-संपादन की प्रक्रिया है तो दूसरी ओर राजनीतिक व्यवस्था उत्पादों एवं दबाबों की प्रक्रिया के वशीभूत है। दूसरे शब्दों में, ईस्टन राजनीतिक व्यवस्था को आदान-प्रदान तथा कार्य-निष्पादन की ऐसी व्यवस्था मानता है जो पर्यावरण के द्वारा उत्पन्न उत्पातों और व्यवस्था के अंदर अतिवादी गतिविधियों से उत्पन्न दबावों के वशीभूत रहती है। ईस्टन के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में तीन महत्वपूर्ण संघटक निहित है- (क) निवेश, (ख) माँगों का रूपांतरण, एवं (ग) निर्गत एवं प्रतिसंभरण।

**ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्थात्मक उपागम**

ईस्टन के अनुसार किसी भी व्यवस्था को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें निरंतर 'निवेश' होता रहे। निवेश के बिना कोई भी व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती। निवेश से तात्पर्य 'माँगे' तथा 'समर्थन' से है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के सामने पर्यावरण से कुछ 'माँगे' रखी जाती हैं। इन माँगों के पीछे माँग रखने वालों का 'समर्थन' होता है जो राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने वालों का ध्यान उन माँगों की ओर आकर्षित करता है। इसके साथ ही साथ 'समर्थन' राजनीतिक व्यवस्था को विभिन्न प्रकार की माँगों से निपटने की शक्ति भी प्रदान करता है, क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था का अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि उसे जनता का कितना समर्थन प्राप्त है। यह समर्थन उसकी माँगों की पूर्ति की क्षमता पर निर्भर करता है। माँगे हमें यह समझने में सहायता करती है कि किस तरह पर्यावरण संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर अपना प्रभाव डालता है, क्योंकि माँगों का जन्म सामाजिक पर्यावरण में होता है। माँगों की वैधता, व्यवस्था की क्षमता तथा स्थायित्व को समझने में समर्थन सहायता करती है।

**माँग** - 'माँग' का अभिप्राय मन की अभिव्यक्ति से है, जिसके द्वारा किसी वस्तु विशेष के प्राधिकारिक आवंटन के लिए उन लोगों से जो कि इसको करने के लिए उत्तरदायी है। कहा जाता है कि ऐसा होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। माँगे इस प्रकार की हो सकती है- संकीर्ण, विशिष्ट तथा सामान्य। उनको व्यक्त करने वाले लोगों तथा उनके उद्देश्यों पर यह निर्भर रहता है। माँगों की अपनी एक निर्दिष्ट दिशा होती है। उनका बहाव सदैव सत्ता की ओर होता है। माँगों के दो रूप होते हैं- सुझाव तथा निर्देश। माँगे दो प्रकार की होती है- स्पष्ट तथा अस्पष्ट। माँगे वैयक्तिक स्वार्थ तथा जनहित दोनों से संबंधित हो सकती है।

**समर्थन** - राजनीतिक व्यवस्था जो कुछ कार्य करती है उस कार्य को करने के लिए समर्थन का होना बहुत ही आवश्यक है। समर्थन एक महत्वपूर्ण निवेश है, जिसके होने या न होने से महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं। बिना समर्थन के माँगों का कोई औचित्य ही नहीं रह जाता है। यह एक ऐसा बल है जो अधिकारियों का ध्यान माँगों की ओर आकर्षित करता है। समर्थन एक ऐसी कड़ी है, जो राजनीतिक व्यवस्था को पर्यावरण से जोड़ती है। यदि अधिकारियों को व्यवस्था में समर्थन प्राप्त नहीं है तो 'माँगों' का निवेश के रूप में विधायन करना संभव नहीं हो पाएगा। बिना समर्थन के शासन में स्थिरता नहीं आ पाती। सामाजिक एकता बनाए रखने के लिए समर्थन आवश्यक है।

**निर्गत प्रकार्य -** निर्गत वे उत्पादित वस्तुएँ है, जो निवेश के रूपांतरण के बाद प्राप्त होती है। निवेश को समर्थन द्वारा सूत्रबद्ध करके व्यवस्था के सामने निर्णय लेने के लिए रखा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था

विभिन्न प्रकार के निवेशों पर निर्णय लेती है। निर्गत व्यक्तियों द्वारा रखी गई माँगों पर राजनीतिक व्यवस्था का निर्णय है।

**पुनर्निवेशन -** निर्गत का उद्देश्य सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। व्यवस्था के निर्गत से सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी हुई या नहीं, जनता की इस संबंध में क्या प्रतिक्रिया है, इस संबंध में जो सूचनाएँ अधिकारीगणों के पास आती है, उसे 'पुनर्निवेशन' कहते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर संपादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा संपादित कार्य की प्रक्रिया से राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता है।

पर्यावरण - राजनीतिक व्यवस्था संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में अन्य उप-व्यवस्थाओं की तरह एक उप-व्यवस्था की भूमिका अदा करती है। इसके पर्यावरण से आंशिक रूप से इसकी सहयोगिनी उप-व्यवस्थाओं का बोध होता है, जिन्हें आंतरिक सामाजिक पर्यावरण की संज्ञा दी गई है। आंतरिक सामाजिक पर्यावरण को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण, जैविक तत्व तथा समाज की पद्धतियों द्वारा प्रभावित होती है।

**समीक्षा** - डेविड ईस्टन का सामान्य व्यवस्था सिद्धांत या निवेश-निर्गत विश्लेषण में संरचनात्मक कार्यात्मक विश्लेषण की भाँति व्यपकता होने के बावजूद इस पर अगतिशीलता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। इस सिद्धांत ने पुनर्निवेशन जैसी धारणाओं को शामिल करके अपने आपको गतिशील सिद्धांत के रूप में पेश किया है। इसने किसी खास राजनीतिक व्यवस्था के साथ अपने को आबद्ध करने से बचाकर तुलनात्मक विश्लेषण की नई अंतर्दृष्टि प्रदान की है।

### 1.3.5. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएँ

एलेन-वॉल के अनुसार, ''सामान्य व्यवस्थात्मक सिद्धांत के फलस्वरूप संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन उपागम अस्तित्व में आया।'' तुलनात्मक राजनीति में इस उपागम का विशेष रूप से प्रयोग आमंड एवं पॉवेल ने किया है और इन्होंने ईस्टन की तरह राजनीतिक व्यवस्था के चार लक्षण माने हैं:-

1. राजनीतिक व्यवस्था के भागों में आत्मनिर्भरता
2. राजनीतिक व्यवस्था की सीमा
3. राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण
4. राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग

किंतु ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था को 'निवेश-निर्गत' के रूप में समझने का प्रयास किया, जबकि आमंड इसे संरचनाओं और प्रकार्यों के आधार पर समझते हैं। इस कारण संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएँ राजनीतिक व्यवस्था उपागम से कुछ भिन्न प्रकार की हो जाती है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की कुछ सामान्य विशेषताएँ भी हैं। जो इस प्रकार है -

**1.3.5.1. - संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर बल -** ईस्टन एवं आमंड दोनों ने ही संरचनाओं और प्रकार्यों को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था को ही आधार रखते हैं। इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केंद्रित किया है, जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती है।

**1.3.5.2. - विशिष्ट कार्यों की शर्त का प्रतिपादन -** व्यवस्था में संरचनात्मक विभिन्नीकरण या विविधता हो सकती है। अर्थात् किसी राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों का संपादन 'क' प्रकार के

संरचनाओं के द्वारा हो सकता है तो किसी अन्य व्यवस्था में इन्हीं कार्यों का निष्पादन 'ख' प्रकार की संरचनाएँ कर सकती हैं। यहाँ संरचनाओं की समानता मौलिक नहीं है, किंतु व्यवस्था के बने रहने के लिए प्रकार्यों का एक-सा निष्पादन अनिवार्य है।

**1.3.5.3. - विविध संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अंतर्निर्भरता -** यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान संरचनाओं में आत्मनिर्भरता की प्रकार्यात्मक आधार पर व्याख्या करता है। अर्थात् यह संरचनाओं को प्रकार्यों के आधार पर परिभाषित करने का प्रयत्न करता है।

**1.3.5.4 - संरचनात्मक प्रतिस्थापना की मान्यता -** संरचनात्मक एकरूपता या समानता के स्थान पर इस उपागम में यह स्वीकार किया गया है संस्कृति विशेष के अनुसार संरचनाओं में हेर-फेर या इनका रूप परिवर्तन या उनके स्थान पर नयी प्रकार की संरचनाओं का निर्माण या प्रतिस्थापना हो सकती है।

**1.3.5.5. - प्रकार्यात्मक या विकार्यात्मक संरचनाओं को मान्यता -** संरचनाएँ हर समय केवल प्रकार्य ही करती हों ऐसा इस उपागम में नहीं माना गया है। एक ही संरचना एक समय में प्रकार्य और दूसरे समय में विकार्य करने की स्थिति में धकेली जा सकती है, अतः यह उपागम प्रकार्यों और विकार्यों को स्वीकार करने वाला उपागम है।

### 1.3.6. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की आलोचनाएँ

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम कई आधारों पर आलोचित हुई है। आमंड एवं पॉवेल के विश्लेषण के विरूद्ध इसकी निम्नलिखित आलोचनाएँ हुई हैं।

1. **संरचनात्मक -** प्रकार्यात्मक उपागम रूढ़िवादी है। यह सामाजिक परिवर्तन के विरुद्ध पूर्वाग्रही है।
2. यह उपागम व्यवस्था के अनुरक्षण के संबंध में कोई वस्तुनिष्ठ मापदंड अथवा कसौटी प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है।
3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण से यह तो स्पष्ट होता है कि संरचना में होनेवाले परिवर्तन का संपूर्ण व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है, परंतु इसके द्वारा परिवर्तनों और उनसे पड़नेवाले प्रभावों की प्रकृति, तीव्रता और मात्रा का ज्ञान प्राप्त करने का कोई सुलभ साधन उपलब्ध नहीं हो पाया है।
4. कई आलोचकों ने कहा है कि इस विश्लेषण के द्वारा आनुभविक प्रयोग के जिन उपकरणों का संकेत किया गया है वह तृतीय विश्व के देशों में लागू नहीं हो सकते।
5. आलोचकों के मतानुसार संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण यथास्थिति का समर्थक है। कई समीक्षकों ने तो इसे अमरीका पूँजीवादी व्यवस्था को बनाए रखने का एक निश्चित प्रयास माना है।
6. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण साम्यवादी देशों के राजनीतिक विकास की व्याख्या करने में असमर्थ है। साम्यवादी देशों में अभी तक राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पूरी नहीं हुई है। इसलिए इसके द्वारा साम्यवादी देश की व्यवस्था का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।
7. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण अत्यधिक जटिल और क्लीष्ट है, जिसके कारण अध्ययन और विश्लेषण में अत्यधिक कठिनाई होने की संभावना है।

8. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण मूलतः राजनीतिक व्यवस्था को ही इकाई मानकर चलता है। इसके अंतर्गत सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखा गया है। यह समाज के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं तथा उनके प्रकार्यों का वर्णन नहीं करता है।

### 1.3.7. व्यस्थात्मक उपागम की विशेषताएँ

विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाएँ वास्तविक जीवन में प्रायः एक-सा व्यवहार करती हैं। अतः राजनीतिक व्यवस्थाओं में पायी जाने वाली समान विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

**1.3.7.1. राजनीतिक संरचनाओं की समानता -** सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक संरचनाएँ पाई जाती है। इन संरचनाओं की परस्पर तुलना की जा सकती है। इन संरचनाओं में अंतर केवल विशिष्टीकरण का होता है।

**1.3.7.2. कार्यों की सर्वव्यापकता -** सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में समान कार्य किए जाते हैं। संरचना के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की तुलना करने पर हम सही परिणाम नहीं पाते। हमें संरचना की अपेक्षा कार्यों को अधिक महत्व देना चाहिए। हित समूह के संगठन और सदस्यता की अपेक्षा यह जानना अधिक उपयुक्त होगा कि हितों को कैसे स्पष्ट किया जाता है? कौन से संगठन इस कार्य में भाग लेते हैं और किस प्रकार के हितों को स्पष्ट करते हैं।

**1.3.7.3. राजनीतिक संरचना की विविधता -** सभी राजनीतिक व्यवस्थाएँ विविध कार्य करती हैं। यदि हम विगत 50 वर्षों में राजनीतिशास्त्र में हुए विकासों का अवलोकन करें तो हम देखेंगे कि राजनीतिक संरचनाओं का प्रत्येक अंग केवल एक ही कार्य नहीं करता वरन् एक से अधिक कार्य करता है। यह कहा जाता है कि विधायिका कानून बनाती है, कार्यपालिका उनको लागू करती है तथा न्यायपालिका उनकी व्याख्या करती है। परंतु वास्तविकता यह है कि तीनों विभाग एक-दूसरे के कार्य को करते हैं। विधानमंडल विधि-निर्माण के साथ-साथ प्रशासनिक और न्यायिक कार्य भी करता है। नौकरशाही न केवल कानूनों को लागू करती है, बल्कि विधि-निर्माण का एक बहुत बड़ा स्रोत है।

**1.3.7.4. राजनीतिक संरचनाओं का मिश्रित स्वरूप -** कोई भी राजनीतिक व्यवस्था विशुद्ध नहीं होती। समस्त राजनीतिक व्यवस्थाएँ 'मिश्रित' व्यवस्थाएँ हैं। राजनीतिक व्यवस्था परंपरागत तथा आधुनिक दोनों प्रकार के विचारों और संस्थाओं का रूप होती है।

**1.3.7.5. राजनीतिक साधनों पर असमान स्वामित्व -** प्रत्येक व्यवस्था में राजनीतिक साधनों का असमान वितरण होता है। राजनीतिक साधनों से हमारा अभिप्राय उन साधनों से हैं, जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आचरणों को प्रभावित करता है। इस प्रकार राजनीतिक साधनों के अंतर्गत धन, भोजन, सूचनाएँ, बल प्रयोग की धमकी, आदि शामिल किए जा सकते हैं।

**1.3.7.6. राजनीतिक प्रभाव का प्रयत्न -** राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत कुछ लोग सरकार की नीतियों और निर्णयों को प्रभावित करने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। शासकीय नीतियों, नियमों और निर्णयों को प्रभावित करने की क्षमता का नाम राजनीतिक प्रभाव है।

**1.3.7.7. राजनीतिक प्रभाव का असमान वितरण -** राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत राजनीतिक प्रभाव का असमान वितरण होता है। इसका प्रमुख कारण साधनों का असमान वितरण है। कुछ व्यक्तियों के पास राजनीतिक साधन अधिक होते हैं, जिनके द्वारा वे सरकार को प्रभावित कर सकते हैं। जिन

व्यक्तियों का सरकार पर अधिक प्रभाव होता है। वे अपने इस प्रभाव के द्वारा और अधिक राजनीतिक साधनों पर नियंत्रण कर सकते हैं।

**1.3.7.8. वैधता का अर्जन -** राजनीतिक व्यवस्था के नेतागण यह प्रयत्न करते हैं कि जब भी संघर्ष से निपटने के लिए सरकारी साधनों का प्रयोग किया जाय तो उन निर्णयों का पालन जनता न केवल हिंसा, दंड, आदि की भावना से करे बल्कि इस भावना से भी करे कि वह नैतिक रूप से सही है और उनका पालन करना उचित है। अर्थात् प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के नेता अपने कार्यों को वैध बनाने का प्रयास करते हैं।

**1.3.7.9. विचार धारा का विकास -** सिद्धांतों के समूह को विचारधारा कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के नेता साधरणतया ऐसे स्थायी और एकीकृत सिद्धांतों के समूह को अपनाते हैं, जो कि व्यवस्था में उनके नेतृत्व को स्पष्ट और उचित सिद्ध कर सके। नेता विचारधारा का विकास इसलिए करते हैं, ताकि उनके नेतृत्व को वैधता प्राप्त हो सके अथवा वे अपने प्रभाव को प्राधिकार में परिवर्तित कर सकें। यह तथ्य हम सभी जानते हैं कि बल प्रयोग की अपेक्षा प्राधिकार के माध्यम से शासन करना अधिक मितव्ययी है। विचारधारा राजनीतिक व्यवस्था को औचित्य प्रदान करती है।

### 1.3.8. मूल्यांकन

कुछ कमियों के बावजूद विश्लेषण में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का महत्व कम नहीं हो जाता। यह सच है कि इस दृष्टिकोण में ऐसे प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है, जो परिभाषा की दृष्टि से कठिनाई अवश्य उत्पन्न करते हैं तथापि तुलनात्मक राजनीति को परंपरागत जकड़नों से मुक्त कर एक नवीन गत्यात्मक अनुशासन बनाने का सूत्रपात संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य के द्वारा ही हुआ है। ऐप्टर एवं एक्सटीन ने लिखा है कि, ''विश्वयुद्ध के बाद के वर्षों में और विशेष रूप से अभी हाल ही के वर्षों में, तुलनात्मक राजनीति के विद्यार्थियों ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रवर्गों और परिप्रेक्ष्यों का अधिकाधिक प्रयोग किया है।

जहाँ तक व्यवस्थात्मक उपागम की बात है तो डेविड ईस्टन का सामान्य व्यवस्था सिद्धांत या निवेश-निर्गत विश्लेषण में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की भाँति व्यापकता होने के बावजूद इस पर अगतिशीलता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। इस सिद्धांत ने पुनर्निवेशन जैसी धारणाओं को शामिल करके अपने आपको गतिशील सिद्धांत के रूप में पेश किया है। इससे किसी खास राजनीतिक व्यवस्था के साथ अपने को आबद्ध करने से बचाकर तुलनात्मक विश्लेषण की नई अंतर्दृष्टि प्रदान की है।

आमंड एवं पॉवेल ने राजनीतिक व्यवस्था को निवेश-निर्गत के रूप में देखने के बजाय संरचनाओं और प्रकार्यों के रूप में समझने का प्रयत्न किया है। इसलिए इसका 'राजनीतिक व्यवस्थात्मक उपागम' के अंतर्गत विस्तार से विवेचन न करके आगे 'संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण' के उपागम में विस्तार से विवेचन किया गया है।

### 1.3.9. सारांश

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के गुण के साथ-साथ दोष भी है, किंतु अनेक दोषों एवं कमजोरियों के बाजवूद इस उपागम का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने तुलनात्मक राजनीति के विश्लेषण को वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी स्वरूप देने के उद्देश्य से नये प्रत्ययात्मक उपकरणों की खोज की

है। इसने तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में ऐसे राजनीतिक तथ्यों एवं वास्तविकताओं की खोज की है, जो इसके पूर्व अंधेरे के गर्त में थी। यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण एक ऐसा सैद्धांतिक विचारबंध प्रस्तुत करता है जो विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से संगत है और आनुभविक रूप से लाभप्रद प्रयोग की क्षमताएँ रखता है।

दूसरी ओर व्यवस्थात्मक उपागम के लाभ और दोष दोनों का पलड़ा समान प्रतीत होता है। यह सत्य है कि इस उपागम की कई स्पष्ट सीमाएँ या यो कहें कि त्रुटियाँ हैं, परंतु आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके लाभ के बिंदुओं से इसके महत्व तथा उपयोगिता का स्पष्ट संकेत मिल जाता है। वस्तुतः यह विश्लेषण अभी अंतिम चरण में नहीं पहुँचा है। पॉल फ्रिज ने कहा है कि, ''हमें इस संभावना के प्रति सचेत रहना है कि एक समय आने पर व्यवस्था-विश्लेषण राजनीतिक तुलना संतोषप्रद ढंग से करने में सक्षम हो।''

**1.3.10. कठिन शब्दावली**

| | | |
|---|---|---|
| प्रकार्य | - | काम करना |
| विकार्य | - | अनुचित काम |
| पृथकनीय | - | अलग प्रकार का |
| पूर्वाग्रही | - | पहले से मन बना लेना |
| पुनर्निवेशन | - | काम की आवश्यकता को जानना |

**1.3.11. अभ्यास प्रश्न**

**1.3.11.1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

1. ''प्रकार्य अंततोगत्वा वस्तुनिष्ठ परिणामों से संबंधित है।'' किसका कथन है -
   (अ) मर्टन (ब) ऑरेन यंग
   (स) रॉबर्ट बोन (द) ईस्टन
2. 'टॉलकॉट पार्सन्स' ने सामाजिक व्यवस्था के कितने कार्यों का संकेत किया है -
   (अ) एक (ब) तीन
   (स) चार (द) पाँच
3. 'डेविड ईस्टन' के पुस्तक का क्या नाम हैः-
   (अ) कंपरेटिव गवर्नमेण्ट (ब) द पोलिटिकल सिस्टम
   (स) पोलिटिक्स (द) इनमें के कोई नहीं
4. ''प्रकार्य पर्यवेक्षित परिणाम है जो किसी व्यवस्था के अनुकुलन या पुनः समायोजन बनाए रखता है।'' निम्नलिखित में से किनका मत है
   (अ) मर्टन (ब) यंग
   (स) ईस्टन (द) रॉबर्ट बोन
5. व्यवस्थात्मक उपागम का जनक किसे कहा जाता है ?
   (अ) रॉबर्ट डॉल (ब) डेविड ईस्टन
   (स) रॉबर्ट बोन (द) मर्टन

उत्तरः- 1 (ब) 2 (स) 3 (ब) 4 (अ) 5 (ब)

### 1.3.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. व्यवस्थात्मक उपागम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. व्यवस्थात्मक उपागम की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्थात्मक उपागम का विश्लेषण कीजिए।

### 1.3.11.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
2. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएँ एवं आलोचनाएँ की चर्चा कीजिए।
3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम एवं व्यवस्थात्मक उपागम में समीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए।

### 1.3.12. संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. जैन डॉ. पुखराज एवं फाड़िया डॉ. बी. एल., 2003, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, ISBN-81-7288-088-X, पृष्ठ क्रमांक 46 से 56 तक
2. प्रसाद, डॉ. मणिशंकर, 1986, तुलनात्मक राजनीति, पटना, भारती भवन, T-1071/86, पृष्ठ क्रमांक 31 से 42 तक
3. आमंड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कंपरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमंड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
5. आमंड, गैब्रियल ए., 'कंपरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## इकाई-4 : मार्क्सवादी उपागम एवं व्यवहारवादी उपागम

**इकाई की रूपरेखा**

**1.4.1. उद्देश्य**
**1.4.2. प्रस्तावना**
**1.4.3. मार्क्सवादी उपागम**
**1.4.4. मार्क्सवादी उपागम की मान्यताएँ**
**1.4.5. मार्क्सवादी उपागम की विशेषताएँ**
**1.4.6. व्यवहारवादी उपागम**
**1.4.7. व्यवहारवादी उपागम की विशेषताएँ**
**1.4.8. व्यवहारवादी उपागम की उपयोगिताएँ**
**1.4.9. व्यवहारवादी उपागम की सीमाएँ**
**1.4.10. मूल्यांकन**
**1.4.11. सारांश**
**1.4.12. शब्दावली**
**1.4.13. अभ्यास प्रश्न**
**1.4.14. संदर्भ ग्रंथ सूची**

### 1.4.1. उद्देश्य

1. मार्क्सवादी उपागम के बारे में जान सकेंगे।
2. मार्क्सवादी उपागम की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. व्यवहारवादी उपागम के बारे में जान सकेंगे।
4. व्यवहारवादी उपागम की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
5. व्यवहारवादी उपागम की उपयोगिता एवं सीमाओं को जान सकेंगे।

### 1.4.2. प्रस्तावना

पश्चिमी देशों में राजनीति शास्त्रियों ने तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में नये-नये प्रत्ययों का प्रयोग करके राजनीतिक व्यवहार को समझने का प्रयत्न किया। इसमें मार्क्सवादी दृष्टिकोणों से राजनीतिक उथल-पुथल को समझाने का कोई क्रमबद्ध प्रयास नहीं किया गया। सबसे पहले स्टेफेन क्लार्कसन ने इस बात पर ध्यान दिया कि सोवियत संघ का 'विकास सिद्धांत' जिसे हम मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम कह सकते हैं, के परिपेक्ष्य में तुलनात्मक विश्लेषण का वैकल्पिक ढाँचा बन सकता है।

दूसरी ओर व्यवहारवादी उपागम राजनीतिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण का एक विशेष तरीका है, जिसे द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिकों द्वारा विकसित किया गया। यह उपागम मुख्यतया अपना ध्यान राजनीतिक व्यवहार पर केंद्रित करता है और इस बात का प्रतिपादन करता है कि राजनीतिक गतिविधियों का वैज्ञानिक अध्ययन व्यक्तियों के राजनीतिक व्यवहार के आधार पर ही किया जा सकता हैं व्यवहारवाद के अनुसार राज्य के बाहर भी सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की

जो संस्थाएँ और सत्ताएँ एवं इन सबको प्रेरित करने वाला जो मानसिक व्यवहार है, उसका अध्ययन अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है।

### 1.4.3. मार्क्सवादी उपागम

मुख्य रूप से राजनीतिक अध्ययन में 'मार्क्सवादी उपागम'जिसे मार्क्सवादी- लेनिनवादी उपागम भी कहा जाता है, के प्रयोग के तीन कारण है -

1. पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उपागमों की सामान्य सिद्धांत के निर्माण में असफलता।
2. पाश्चात्य विकासवादी विश्लेषण का प्रत्ययी पतन।
3. पाश्चात्य उपागमों द्वारा विकासशील राज्यों की राजनीतियों को संतोषजनक स्पष्टीकरण देने में असफलता।

मार्क्सवादी उपागम के प्रतिपादकों के अनुसार पाश्चात्य राजनीतिक विश्लेषकों की असफलता ने इस दृष्टिकोण को जन्म दिया है।

### 1.4.4. मार्क्सवादी उपागम की मान्यताएँ

मार्क्सवादी उपागम के समर्थक अपने आप को कतिपय मान्यताओं के आधार पर आधारित मानते हैं जो इस प्रकार है:-

1. मार्क्सवादी उपागम राज्य की औपचारिक संरचनाओं को बहुत कम महत्व देता है।
2. विकासशील राज्यों की समस्याएँ मार्क्सवादी उपागम के आधार पर ही समझी जा सकती है, क्योंकि राज्य-शक्ति, वर्ग तथा उद्योगों के क्षेत्र में इनकी धारणाएँ विकासशील राज्यों की धारणाओं से बहुत मेल खाती है।
3. मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत अंत:शास्त्रीय दृष्टिकोण निहित है। यह समग्र दृष्टि से संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या पर बल देता है।
4. मार्क्सवादी उपागम नयी समस्याओं के समाधानात्मक अध्ययन के लिए नये-नये प्रत्ययी ढाँचों का सृजन नहीं करता है। मार्क्सवादी उपागम वैसे प्रत्ययों का प्रयोग करता है, जो स्थिर तथा स्थायी हो।
5. मार्क्सवादी उपागम के द्वारा व्यक्ति के स्थान पर समष्टि को इकाई बनाने की अनुशंसा की गई है। यह उपागम संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को इकाई या संदर्भ मानकर उसकी प्रक्रियात्मक अभिव्यक्तियों को समझने का प्रयास करता हैं।

मार्क्सवादी यह मानते हैं कि सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पहलू की सर्वोपरिता ही महत्वपूर्ण होती है। आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता का तर्कसंगत परिणाम आर्थिक शक्तियुक्त वर्ग का प्रभुत्व की व्यवस्था में होना है। यह राजनीतिक शक्ति की गौणता का सूचक है। आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता तथा समाज में इससे संपन्न वर्ग का प्रभुत्व राजनीतिक शक्ति को भी इसके अधीन बना देता है। अतः तुलनात्मक विश्लेषण राजनीतिक शक्ति के आधार पर करने के साथ ही साथ आर्थिक शक्ति की संरचना को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। मार्क्सवादियों के अनुसार उत्पादन और वितरण के साधनों पर किसका स्वामित्व है, संपत्ति का किस प्रकार समाज में वितरण है, ये तथ्य राजनीतिक

व्यवस्था की वास्तविक प्रकृति के निर्धारक होते हैं। इसलिए, तुलनात्मक राजनीति वास्तव में यथार्थवादी तभी बन सकती है जब शक्ति के आर्थिक पहलू को ध्यान में रखा जाए।

### 1.4.5. मार्क्सवादी उपागम की विशेषताएँ

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मार्क्सवादी उपागम आर्थिक शक्ति को प्राथमिकता प्रदान करता है तथा राजनीतिक शक्ति को आर्थिक शक्ति के अधीन मानता है। इस प्रकार मार्क्सवादी उपागम की निम्नलिखित विशेषताओं का हम वर्णन करते हैं -

**(1) प्रत्ययी स्थायित्व -** प्रत्ययी स्थायित्व मार्क्सवादी उपागम की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पाश्चात्य उपागमों के विरूद्ध सबसे बड़ी आलोचना यही है कि इसके अंतर्गत प्रत्यय हमेशा बदलते रहते हैं, जबकि मार्क्सवादी उपागम में प्रत्ययों में स्थायित्व पाया जाता है। उदाहरण के लिए 'वर्ग संघर्ष', 'राज्य' या 'सरकार'जैसे प्रत्ययों का मार्क्सवादी उपागम में आज भी वही अर्थ है जो आज से अनेक वर्ष पूर्व था।

उपर्युक्त विश्लेषण इस बात का संकेतक नहीं है कि प्रत्ययी स्थायित्व के कारण मार्क्सवादी उपागम जड़ता का प्रतीक है, बल्कि यह गतिशीलता का सूचक है।

**(2) समग्रवादी पद्धति -** इस दृष्टिकोण के प्रवर्तकों की यह मान्यता है कि सामाजिक घटनाक्रम अनेक परिवत्यों एवं तत्वों से प्रभावित होते हैं। इसलिए सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि सभी तत्वों एवं परिवत्यों का सांगोपांग अध्ययन किया जाय। मार्क्सवादी उपागम में इतिहास, सामाजिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था की प्रकृति और राजनीति को समग्रतावादी विश्लेषण में समाहित कर दिया जाता है।

**(3) गत्यात्मकता -** मार्क्सवादी उपागम को ऐतिहासिक दृष्टि से गत्यात्मक उपागम कहा जाता है। मार्क्स एवं लेनिन ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को समझाने का प्रयास किया है। मार्क्स व लेनिन की भौतिकवादी व्याख्या द्वारा न केवल अतीत के, वरन् व्यवस्था के भावी विकास को भी नये परिप्रेक्ष्य में समझाने का प्रयास किया गया है। कृषि प्रधान व्यवस्था तथा औद्योगिक व्यवस्था दोनों की तुलना करके इस उपागम ने व्यवस्थाओं के भावी विकास के संबंध में कुछ नये आयाम जोड़े हैं।

**(4) सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक ढ़ांचा -** मार्क्सवादी उपागम की विशेषताओं की व्याख्या करते हुए समीक्षकों ने कहा है कि यह उपागम सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। इस उपागम की यह मान्यता है कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों का मुख्य बल समाज से संबंधित प्रासंगिक बातों पर होना चाहिए। यह उपागम आदर्शवादी सिद्धांतों के निर्माण के बजाय समाज की ठोस समस्याओं को लेकर उन्हें समझने तथा स्पष्ट करने का ध्येय रखता है।

### 1.4.6. व्यवहारवादी उपागम

रॉबर्ट ए0 डॉल के अनुसार, ''व्यवहारवादी क्रांति परंपरागत राजनीतिक विज्ञान की उपलब्धियों के प्रति असंतोष का परिणाम है, जिसका उद्देश्य राजनीति विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक बनाना है।" व्यवहारवाद का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीति विज्ञान के यथार्थवादी एवं अनुभववादी अध्ययनों के साथ जुड़ा हुआ है। अमरीका में चार्ल्स मेरियम की प्रेरणा से यथार्थवादी एवं परिमाणात्मक अध्ययन किए गए और सुप्रसिद्ध 'शिकागो संप्रदाय'व्यवहारवाद का प्रमुख गढ़ बन गया। नव स्थापित

'पॉलिटीकल साइन्स एसोसियेशन' और 'शोसल साइन्स रिसर्च कौंसिल'तथा फोर्ड, कारनेगी और रॉकफेलर जैसे निजी संस्थाओं से इसे सहायता तथा शक्ति मिली, जिससे व्यवहारवादी दृष्टिकोण सर्व व्यापक हो गया।

अमरीका में व्यवहारवाद एक बौद्धिक प्रवृति के रूप में एक प्रभावशाली आंदोलन का रूप धारण कर चुका था। इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक शोध पत्र प्रकाशित होते रहे हैं। वहाँ की 'शोसल साइन्स रिसर्च कौंसिल'में 'राजनीतिक व्यवहार'तथा 'तुलनात्मक राजनीति'पर दो समितियों का गठन किया है। इसे सभी राजनीतिक वैज्ञानिक डेविड ईस्टन, लासवेल, आमंड, कोलमैन, हींज यूलाऊ, डायस, एडवर्ड शील्स, पॉवेल आदि अपना चुके हैं।

### 1.4.7. व्यवहारवादी उपागम की विशेषताएँ

डेविड ईस्टन को व्यवहारवाद का अधिकारी विद्वान कहा जाता है। उन्होंने अपने लेख में व्यवहारवाद की कतिपय विशेषताओं का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है -

**(1) नियमन -** व्यवहारवादी मानते है कि राजनीतिक व्यवहार में सामान्य तत्व ढूँढ़े जा सकते हैं। उन्हें राजनीतिक व्यवहार के सामान्यीकरण अथवा सिद्धांत के रूप में व्यक्त किया जा सकता है और इनके आधार पर मानवीय व्यवहार की व्याख्या और भविष्य के लिए संभावनाएँ व्यक्त की जा सकती है।

**(2) सत्यापन -** मानवीय व्यवहार के संबंध में एकत्रित सामग्री को दुबारा जाँचने और उसकी पुष्टि करने की क्रिया को सत्यापन कहते हैं। व्यवहारवादी अध्ययन पद्धति की एक विशेषता यह है कि उसके अंतर्गत एकत्रित की गई सामग्री का सत्यापन किया जाता है।

**(3) तकनीकी प्रयोग -** आधार सामग्री प्राप्त करने एवं उनकी व्याख्या करने के साधनों को स्वयंसिद्ध नहीं माना जा सकता। वे समस्यात्मक होते हैं और स्वयं अध्ययनकर्ता द्वारा उन्हें सावधानी से शुद्ध एवं परीक्षित किए जाने की आवश्यकता है। मानवीय व्यवहार का पर्यवेक्षण करने और उसका विश्लेषण कर परिणामों को अंकित करने के लिए कठोर शुद्धीकरण के साधनों को अपनाया जाना चाहिए। परशुद्धीकरण की प्रक्रिया ज्ञान को विकासशीलता प्रदान करती है और इसके आधार से नये तथ्य प्राप्त किए जाने पर पुरानी सामग्री को अप्रमाणित ठहराया जा सकता है।

**(4) परिमाणीकरण -** उपलब्धियों के विवरण तथा आधार सामग्री को लेखबद्ध करने तथा उसमें सुस्पष्टता लाने के लिए मापन और परिमाणीकरण किया जाना चाहिए। मापन और परिमाणीकरण का यह कार्य उनके अपने लिए नहीं, वरन् अन्य प्रयोजनों के प्रकाश में किया जाना चाहिए।

**(5) मूल्य-निर्धारण एवं आदर्श निर्माण -** सामान्य व्यवहारवादी मूल्यों की दृष्टि से तटस्थ रहना चाहते हैं, फिर भी नैतिक मूल्यांकन के कुछ मूल्यों व आदर्शों का प्रतिपादन और प्रयोग आवश्यक हो जाता है। इस संबंध में अपनाए गए मूल्यों और आदर्शों को अध्ययनकर्ता के मूल्यों व आदर्शों से अप्रभावित रहने चाहिए।

**(6) व्यवस्थाबद्धीकरण -** किसी भी व्यवस्था को आवश्यक रूप से क्रमबद्ध होना चाहिए अर्थात् सिद्धांत एवं अनुसंधान को संबद्ध एवं क्रमबद्ध ज्ञान के दो ऐसे भाग समझा जाना चाहिए जो परस्पर गुंथे हुए हो। सिद्धांत से अशिक्षित अनुसंधान निरर्थक हो सकता है और आँकड़ों से असमर्थित सिद्धांत निरर्थक रहेगा। वस्तुतः सिद्धांत और तथ्य एक दूसरे से अपृथकनीय होते हैं।

**(7) विशुद्ध ज्ञान -** ज्ञान का प्रयोग वैज्ञानिक उद्यम का भी उतना ही अंग है जितना की सिद्धांतात्मक बोध का, किंतु तार्किक रूप में राजनीतिक व्यवहार का बोध और व्याख्या पहले ही आता है और एक ऐसा आधार प्रदान करता है, जिसके बल पर समाज की महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की जा सकती है।

**(8) समग्रता -** व्यवहारवादियों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि समस्त मानव व्यवहार एक ही पूर्ण इकाई है और उसका अध्ययन खंडों में नहीं होना चाहिए। व्यवहारवाद के अनुसार मानव व्यवहार में एक मूलभूत एकता पाई जाती है तथा इसी कारण विभिन्न समाजशास्त्री परस्पर अत्यंत समीप हैं। अतः राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन जीवन के अन्य पक्षों के संदर्भ में भी किया जाना चाहिए।

### 1.4.8. व्यवहारवादी उपागम की उपयोगिताएँ

व्यवहारवादी क्रांति के प्रारंभिक दौर में परंपरागत विचारकों एवं व्यवहारवादी विचारकों के बीच एक शीत युद्ध का वातावरण बन गया था। उस शीत युद्ध के समाप्त होने के पश्चात व्यवहारवादियों का उचित मूल्यांकन होना संभव हो पाया जिसके आधार पर व्यवहारवाद की कुछ निश्चित उपयोगिताएँ सामने उभर कर आई, जिनका उल्लेख हम इस प्रकार कर सकते हैं -

(1) व्यवहारवाद केवल एक उपागम या दृष्टिकोण मात्र नहीं है, बल्कि यह तो राजनीति विज्ञान की समस्त विषय-वस्तु को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का एक साधन है। व्यवहारवाद केवल सुधार ही नहीं, वरन् पुनर्निमाण की क्रिया है तथा इसने राजनीति विज्ञान को नये मूल्य, नयी भाषा, नयी पद्धतियाँ, उच्चतर प्रस्थिति, नवीन दिशाएँ और सबसे बढ़कर एक अनुभवात्मकता वैज्ञानिकता प्रदान की है।

(2) व्यवहारवाद ने राजनीतिक वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाया है और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया है कि एक समाज विज्ञान का अध्ययन दूसरे समाज विज्ञान के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। व्यवहारवादियों के इस विचार को 'अंतर अनुशासनात्मक दृष्टिकोण'कहा जा सकता है।

(3) राजनीतिक वैज्ञानिक अब तक सामान्यतया ऐसे दार्शनिकों के रूप में कार्य करते रहे हैं, जो केवल नैतिक मूल्यों व आदर्शों से ही संबंध रखते थे। व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान को यथार्थ के धरातल पर खड़ा करने का कार्य किया है। उसने इस बात पर जोर दिया है कि राजनीति वैज्ञानिकों का संबंध 'क्या है'से है न कि 'क्या होना चाहिए'से। व्यवहारवाद ने संस्थाओं के स्थान पर व्यक्ति को राजनीतिक विश्लेषण की इकाई बनाने पर जोर देने की बात कही है, वह इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस प्रकार उसने राजनीति विज्ञान को एकता और आधुनिकता प्रदान की है।

(4) व्यवहारवाद ने अपने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से नवीन दृष्टि, नवीन पद्धतियाँ, नये माप और नूतन क्षेत्र प्रदान किए हैं व्यवहारवाद के परिणाम स्वरूप ही राजनीति विज्ञान साक्षात्कार प्रणाली, मूल प्रश्नावली प्रणाली और सोशियोमैट्री आदि अपनाने की ओर प्रवृत हुआ है। राजनीति के अंतर्गत अब न केवल 'मतदान व्यवहार'वरन् राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं का अध्ययन भी इस पद्धति के आधार पर किया जाने लगा है।

व्यवहारवादी राजनीति विज्ञान को 'राजनीति का विज्ञान'बनाने का लक्ष्य निर्धारित किए हुए है और जिसके लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में 5000 से भी ज्यादा उच्चस्तरीय वैज्ञानिक लगे हुए हैं। वस्तुस्थिति यह है कि आज सभी समाज विज्ञान के वैज्ञानिक परिपक्वता की ओर बढ़ रहे हैं और राजनीति में व्यवहारवादी उपागम वैज्ञानिक पद्धति का प्रतीक बन गया है।

**1.4.9. व्यवहारवादी उपागम की सीमाएँ**

व्यवहारवाद की कतिपय प्रमुख सीमाएँ भी हैं, जो इस प्रकार हैं:-

(1) व्यवहारवाद अपने आप को मूल्य निरपेक्ष मानता है, लेकिन स्वयं व्यवहारवादी का व्यक्तित्व, उसका आचरण, उसके ज्ञान की सीमाएँ, साधन, राग-द्वेष, झुकाव और पक्षपात आदि ऐसे तत्व हैं, जो उसके व्यवहारात्मक अध्ययन को प्रभावित करता है। उसके द्वारा विषयों का चयन किया जाता है, वह भी उसके अपने मूल्यों और विचारधाराओं से ही प्रभावित होता है।

(2) जैसे ही व्यवहारवादी पद्धति को अपनाकर राजनीतिक अन्वेषण का श्रीगणेश कर दिया जाता है वैसे ही व्यवहारवादी अध्ययन से प्राप्ति की निश्चित सीमाएँ सामने आने लगती है, जैसे -

(क) राजनीति में मानव व्यवहार की व्याख्या नियंत्रित परिस्थितियों तथा विशिष्ट मान्यताओं के अंतर्गत ही की जा सकती है,

(ख) मनुष्य भविष्य में किस प्रकार का आचरण करेगा, यह पूर्व कथन समान परिस्थितियों के होने पर ही किया जा सकता है,

(ग) ऐसी समान अवधारणाओं को प्राप्त करना कठिन है जो कि पर्यवेक्षक और पर्यवेक्षित, दोनों के लिए अर्थपूर्ण हो,

(घ) कभी-कभी व्यवहारवादी अध्ययन के अंतर्गत ऐसी अवधारणाएँ प्रस्तुत की जाती है, जिन्हें व्यवहारवादी तरीकों से प्राप्त नहीं किया गया हो।

(3) व्यवहारवाद के आधार पर किया गया अध्ययन अध्येता को सम-सामायिक राजनीति के उपादानों से अलग कर देता है। व्यवहारवाद के अतिरिक्त अन्य उपागमों का आश्रय लेकर ही अध्येता अपने आप को इन उपादानों से संयुक्त कर सकता है।

(4) नीति-निर्माण संबंधी मामलों में राजनीति के लिए व्यवहारवाद और व्यवहारवादियों का उपयोग बहुत अधिक सीमित हो जाता है, क्योंकि नीति निर्माण में एक नहीं वरन् अनेक तत्व अपना महत्व रखते हैं।

(5) राजनीतिक जीवन में हमारे द्वारा किसे श्रेष्ठ समझा जाना चाहिए, इस विषय में व्यवहारवाद पर्याप्त प्रकाश डाल सकता है और उन परिस्थितियों में उस मूल्य की सफलता-असफलता के बारे में पहले कहा जा सकता है, किंतु परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती है और कोई भी व्यवहारवादी सभी परिस्थितियों के लिए अंतिम मूल्यों का चुनाव नहीं कर सकता।

(6) इन सबके अतिरिक्त व्यवहारवादियों ने तात्कालिक एवं गम्भीर समस्याओं से अपने आपको अलग करके आराम कुर्सी वाले बुद्धिजीवी वर्ग में शामिल कर लिया है।

**1.4.10. मूल्यांकन**

समालोचकों के मतानुसार मार्क्सवादी उपागम 'भानुमती का पिटारा'की तरह है जिसके अंतर्गत सभी तरह की वस्तुएँ संग्रहित है, किंतु अलग-अलग प्रकार की परिस्थितियों में अलग-अलग प्रकार की प्रविधियों की आवश्यकता होती है। एक ही प्रकार की प्रविधियाँ एवं प्रत्ययों से सभी प्रकार की परिस्थितियों तथा सभी प्रकार की व्यवस्थाओं की व्याख्या नहीं की जा सकती।

इस उपागम की समग्रवादिता भी इसकी कमजोरी कही जा सकती है। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में सबको समझने के बजाय कुछ को समझने का प्रयत्न

अधिक उपयुक्त है, क्योंकि राजनीतिक व्यवस्थाओं की संपूर्णता के असंख्य पक्ष होते हैं और एक साथ सभी का अध्ययन करना न तो संभव है और न ही उपयोगी।

मार्क्सवादी उपागम में सिद्धांत-निर्माण पर भी अधिक बल दिया जाता है, किंतु सिद्धांत की परिशुद्धता पर कम बल दिया जाता है। क्योंकि मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रतिपादक सिद्धांत-निर्माण के लिए सुनिश्चित प्रविधियों, मापनीय तथ्यों तथा विविध आवश्यक आँकड़ों के संकलन से कतराते हैं और इनके अभाव में सिद्धांतों की परिशुद्धता संदेहजनक बन जाती है।

मार्क्सवादी उपागम विकासशील देशों के अध्ययन के लिए तो उपयुक्त एवं सार्थक सिद्ध हुआ है, किंतु विकसित एवं स्थिर राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए इसकी उपयुक्ता संदेहात्मक प्रतीत होती है। इसी कारण से इस उपागम को एकपक्षीय तथा एकांगी कहा जाता है।

दूसरी ओर व्यवहारवाद की सबसे प्रमुख कमजोरी उसकी मूल्य निरपेक्षता है जिसके फलस्वरूप राजनीति विज्ञान नीति निर्माण, सक्रिय राजनीति, समाज की तात्कालिक और दूरगामी समस्याओं आदि से पूर्णतया पृथक हो गया है।

व्यवहारवादी एक साथ ही मर्यादित और अहंकारी दोनों रूपों में सामने आते हैं। एक ओर तो वे अपने निष्कर्षों और मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं और इस दृष्टि से वे मर्यादित हैं, किंतु दूसरी ओर वे किसी भी ऐसे तत्व के अस्तित्व को महत्व देने के लिए तैयार नहीं है, जिसे गिना, तोला या नापा जा सके। यह उनकी विचारधारा का अहंकारी पक्ष है और इस दृष्टि से उनमें व धार्मिक कट्टरपंथियों में कोई अंतर नहीं रह जाता है।

दुर्भाग्यवश व्यवहारवादी इस बात को भुला देते हैं कि प्राकृतिक-विज्ञानों और राजनीति विज्ञान के तथ्यों में बड़ा गंभीर अंतर है। राजनीति विज्ञान के तथ्य प्राकृतिक विज्ञानों के तथ्यों की तुलना में बहुत अधिक जटिल, अत्यधिक परिवर्तनशील, न्यून मात्रा में प्रत्यक्षतः परिवेक्षणीय, कम समरूप और कार्य के उद्देश्य से परिपूर्ण होते हैं। इन कारणों से राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास अत्यंत कठिन है।

व्यवहारवादी समालोचक के अनुसार एक विश्वसनीय, व्यापक और संतोषप्रद राजनीति का विज्ञान अभी तक मृग-तृष्णा ही बना हुआ है। एवरी लिसरसन के अनुसार, ''ये महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर प्रायः गैर महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में तथ्य और आँकड़े एकत्रित करने में लगे रहते हैं।''

अल्फ्रेड कॉबन के अनुसार ''व्यवहारवाद राजनीति के खतरनाक चक्कर से बचने के लिए विश्वविद्यालय के शिक्षकों द्वारा आविष्कृत एक युक्ति है।''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जहाँ मार्क्सवादी उपागम को एकपक्षीय या एकांगी कहा जाता है वहीं व्यवहारवादी उपागम में व्यवहारवादियों ने स्थायित्व को पूर्व धारणा के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य बना लिया है और वे रूढ़िवादी बन गए हैं।

### 1.4.11. सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम मार्क्सवादी दृष्टिकोण को निरर्थक एवं अनुपयोगी नहीं मान सकते। मार्क्सवादी दृष्टिकोण की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि अन्य उपागमों की अपेक्षा यह ज्यादा यथार्थवादी है तथा यह अंत:शास्त्रीय अध्ययन का प्रवर्तक है। आज अधिकाधिक राजनीतिशास्त्री मानने लगे हैं कि विकासशील राजनीतिक व्यवस्थाओं को समझने तथा उनका तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत

करने में पाश्चात्य तुलनात्मक राजनीतिक उपागमों की अपेक्षा मार्क्सवादी उपागम ज्यादा सक्षम और समर्थ है।

मार्क्सवादी उपागम अर्थव्यवस्था की प्रकृति के अध्ययन पर अधिक बल देता है। इस उपागम की मान्यता के आधार पर यह देखा जाता है कि व्यवस्था के अंतर्गत औद्योगीकरण की मात्रा कितनी है, सर्वहारा वर्ग का आधार क्या है, औद्योगिक एवं कृषि-अर्थव्यवस्था का पारस्परिक संबंध कैसा है आदि। यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक शक्तियों को अच्छी तरह समझता है और व्यवस्था के समग्र पहलुओं का अवलोकन करता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कुछ क्षेत्रों में इसका व्यापक उपयोग हुआ है तथा कुछ क्षेत्रों में इसकी सीमित उपयोगिता हुई है।

वहीं दूसरी ओर व्यवहारवादी द्वारा अनेक ऐसे तत्वों पर ध्यान नहीं दिया गया है जो राजनीतिक अध्ययन को प्रभावित करते हैं। व्यवहारवादी के लिए केवल यह जानना ही पर्याप्त नहीं है कि क्या हो सकता है, बल्कि यह जानना भी आवश्यक है कि एक निर्दिष्ट संस्कृति के संपूर्ण संदर्भ में क्या हो चुका है और क्या संभव हो सकता है। इसका जानना साधारणजन एवं राजनीतिज्ञ, साथ ही साथ एक राजनीतिक वैज्ञानिक और एक क्रियाशील दार्शनिक के लिए भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में व्यवहारवादियों की इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि राजनीति विज्ञान में अधिकाधिक मात्रा में आनुभविक अध्ययन और परिशुद्ध परिणाम देने वाली पद्धतियों को अपनाते हुए इसे सही अर्थों में विज्ञान की स्थिति प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिए।

**1.4.12. शब्दावली**

| | | |
|---|---|---|
| समग्र | - | संपूर्ण |
| समष्टि | - | सामूहिक रूप से |
| प्रत्यय | - | विचारधारा |
| सांगोपांग | - | संपूर्ण |
| नियमन | - | कोई काम नियम पूर्वक करना |

**1.4.13. अभ्यास प्रश्न**

**1.4.13.1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

1. डेविड ईस्टन के मुताबिक व्यवहारवाद की कितनी विशेषताएँ हैं -
   (अ) तीन (ब) पाँच
   (स) सात (द) आठ
2. ''व्यवहारवाद राजनीति के खतरनाक चक्कर से बचने के लिए विश्वविद्यालय के शिक्षकों द्वारा आविष्कृत एक युक्ति है।'' किसका कथन है -
   (अ) लिसरसन (ब) अल्फ्रेड कॉबन
   (स) ईस्टन (द) इनमें से कोई नहीं।
3. व्यवहारवादी क्रांति परंपरागत राजनीति विज्ञान की उपलब्धियों के प्रति असंतोष का परिणाम है, जिसका उद्देश्य राजनीति विज्ञान को अधिक वैज्ञानिक बनाना है।'' यह किसका मत है -
   (अ) रॉबर्ट ए. डॉल (ब) चालर्स मेटियम
   (स) लॉसवेल (द) कोलमैन

4. राजनीतिक वैज्ञानिकों का संबंध ''क्या है'' से है, न कि ''क्या होना चाहिए'' से यह कथन किसका है -
   (अ) मार्क्सवादियों का (ब) व्यवहारवादियों का
   (स) लेनिनवादियों का (द) इनमें से कोई नहीं।
5. व्यवहारवादी महत्वपूर्ण को छोड़कर प्रायः गैर महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में तथ्य और आँकड़े एकत्रित करने में लगे रहते हैं'' किसका विचार है?
   (अ) एवरी लिसरसन (ब) रॉबर्ट ए. डॉ.
   (स) लाबेल (द) चार्ल्स मेरियम

उत्तरः- 1 (द) 2 (ब) 3 (अ) 4 (ब) 5(अ)

**1.4.13.2. लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मार्क्सवादी उपागम की क्या विशेषताएँ हैं?
2. व्यवहारवादी उपागम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. व्यवहारवादी उपागम की क्या-क्या सीमाएँ हैं?
4. व्यवहारवादी उपागम की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

**1.4.13.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

1. मार्क्सवादी उपागम की मान्यताएँ एवं विशेषताएँ का वर्णन कीजिए।
2. व्यवहारवाद की मुख्य विशेषताएँ बताते हुए इसकी क्या उपयोगिताएँ हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. व्यवहारवाद की समस्याओं एवं सीमाओं पर प्रकाश डालिए।
4. मार्क्सवादी उपागम एवं व्यवहारवादी उपागम में क्या अंतर है? मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।

**1.4.14. संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. जैन डॉ. पुखराज एवं फाड़िया डॉ. बी. एल., 2003, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, ISBN-81-7288-088-X, पृष्ठ क्रमांक 56 से 57 तक
2. प्रसाद, डॉ. मणिशंकर, 1986, तुलनात्मक राजनीति, पटना, भारती भवन, T-1071/86, पृष्ठ क्रमांक 42 से 45 तक
3. आमंड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स, ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमंड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
5. आमंड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## खंड-2 : संविधानवाद एवं शासन के रूप
## इकाई-1 : संविधानवाद : अभ्युदय, विकास, समस्याएँ एवं समाधान

**इकाई की रूप रेखा**


**2.1.1. उद्देश्य**

**2.1.2. सामान्य परिचय**

**2.1.3. संविधान और संवैधानिक सरकार**

**2.1.4. संविधानवाद का अर्थ**

**2.1.5. संविधानवाद की विशेषताएँ**

**2.1.6. संविधानवाद का उद्भव**

**2.1.7. संविधानवाद का विकास**

- **2.1.7.1. यूनानी संविधानवाद**
- **2.1.7.2. रोमन संविधानवाद**
- **2.1.7.3. मध्यकालीन संविधानवाद**
- **2.1.7.4. पुनर्जागरण काल में संविधानवाद**
- **2.1.7.5. ब्रिटेन में संविधानवाद**
- **2.1.7.6. फ्रांस में संविधानवाद।**
- **2.1.7.7. विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद**

**2.1.8. संविधानवाद की अवधारणाएँ**

**2.1.9. संविधानवाद की समस्याएँ**

**2.1.10. समाधान**

**2.1.11. निष्कर्ष**

**2.1.12. कठिन शब्दावली**

**2.1.13. अभ्यास प्रश्न**

**2.1.14. संदर्भ ग्रंथ सूची**

**2.1.1. उद्देश्य**

- संविधानवाद के बारे में जान सकेंगे।
- संविधान और संवैधानिक सरकार के बारे में जान सकेंगे।
- संविधानवाद की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- संविधानवाद के उद्भव एवं विकास के सम्बन्ध में समझ सकेंगे।
- संविधानवाद के विभिन्न रूपों को समझ सकेंगे।
- संविधानवाद की अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- संविधानवाद की समस्याओं को समझ सकेंगे।
- संविधानवाद की समस्याओं के समाधान के संबंध में जान सकेंगे।

**2.1.2. सामान्य परिचय**

राजनीति विधान के मान्य सूत्रों में एक सूत्र यह है कि समाज राज्य के बिना नहीं रह सकता, इससे जुड़ा एक अन्य सूत्र यह है कि राज्य अपने संविधान के बिना नहीं हो सकता। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान होता है, तभी उसे 'संवैधानिक राज्य' कहा जा सकता है। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान होना चाहिए तथा शासन का गठन एवं संचालन संविधान के नियमानुसार होना चाहिए ताकि लोगों को 'व्यक्ति का शासन' नहीं बल्कि 'कानून का शासन' प्राप्त हो, यही संविधानवाद कहलाता है। संविधानवाद एक व्यापक अवधारणा है, जिसे संविधान या संवैधानिक सरकार का पर्यायवाची समझना उचित नहीं है। प्रारंभ से ही मनुष्य सामाजिक या राजनीतिक संगठन में रहता आया है। ज्यों-ज्यों मनुष्य में सामाजिकता का तत्व बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों राजनीतिक संगठन की उपयोगिता भी बढ़ती जा रही है। राजनीतिक संगठन में रहते हुए व्यक्ति इस बात के लिए सतत प्रयत्नशील रहा है कि सरकार स्वेच्छाचारी या अधिनायकवादी न बन जाए। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब तानाशाही तथा स्वेच्छाचारी सरकारों ने नागरिकों की स्वतंत्रता का अपहरण किया। इसीलिए यह प्रयास किया जाने लगा कि ऐसे राजनीतिक संगठन की स्थापना की जाय जिसके अन्तर्गत शासकों की शक्ति नियंत्रित एवं मर्यादित रहे और वे उनका सदुपयोग करें। संविधानवाद का इतिहास तथा पृष्ठभूमि यहीं से प्रारंभ होती है। इस प्रकार संविधानवाद ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहता है जिसमें शासन की शक्तियाँ सीमित हों और शासन सभ्य हो।

**2.1.3. संविधान और संवैधानिक सरकार**

संविधानवाद की कोई निश्चित तथा स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती है। इसको समझने के लिए संविधान को समझना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य में एक संविधान होता है, भले ही वह राज्य लोकतांत्रिक हो या स्वेच्छाचारी। सामान्यतः संविधान का अभिप्राय एक ऐसे आलेख से होता है जो निश्चित समय में निर्मित एवं स्वीकृत हो। कई विद्वानों ने संविधान की इस व्याख्या पर आपत्ति व्यक्त की है। उनका कहना है कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि संविधान लिखित ही हो। स्ट्रांग के अनुसार ''संविधान उन सिद्धान्तों का संग्रह है जिनके द्वारा सरकार की शक्तियाँ, शासितों के अधिकार तथा शासक एवं शासितों के पारस्परिक सम्बन्ध नियमित होते हैं।'' के0 सी0 व्हीयर के अनुसार, संविधान का प्रयोग

संपूर्ण शासन-व्यवस्था के लिए किया जाता है। संविधान में निहित नियम एवं सिद्धान्त सरकार के संचालन को नियमित करते हैं। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ''संविधान नियमों का वह संग्रह है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति कराता है जिनके लिए शासन-शक्ति प्रवर्तित की जाती है और जो शासन के उन विविध अंगों की सृष्टि करता है जिनके माध्यम से सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।''

संविधान का अर्थ समझने के क्रम में संवैधानिक सरकार का अर्थ समझ लेना भी आवश्यक हो जाता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि जहाँ संविधान हो वहाँ संवैधानिक सरकार हो, अधिनायकवादी तथा स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्थाओं में भी संविधान होता है, परन्तु उस सरकार को संवैधानिक सरकार नहीं कहा जा सकता है। हिटलर तथा मुसोलिनी की सरकारों को संविधान रहने के बाबजूद संवैधानिक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वहाँ शासन का आधार संविधान नहीं था, बल्कि उन अधिनायकों एवं तानाशाहों की इच्छाएँ और आकांक्षाएँ थीं। अतः केवल संविधान होने से राज्य में सरकार संवैधानिक नहीं बन जाती है। वही सरकार संवैधानिक सरकार कहलाएगी जो संविधान पर आधारित हो तथा संविधान द्वारा सीमित और नियंत्रित हो।

### 2.1.4. संविधानवाद का अर्थ

यद्यपि संविधानवाद की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती है। तथापि संविधानवाद उन मान्यताओं, आस्थाओं तथा मानव मूल्यों का नाम है जिनका संविधान में वर्णन एवं समर्थन होता है। तथा जिनकी उपलब्धि एवं सुरक्षा हेतु राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों की व्यवस्था होती है। पिनॉक एवं स्मिथ के शब्दों में, ''संविधानवाद केवल प्रक्रियाओं और तथ्यों का ही मामला नहीं है, वरन् राजनीतिक शक्तियों के संगठन का प्रभावशाली नियंत्रण एवं प्रतिनिधित्व तथा प्राचीन परम्पराओं और भावी आशाओं का प्रतीक भी है।'' संविधानवाद का मूल अर्थ यही है कि शासन संविधान में लिखित नियमों तथा विधियों के अनुसार संचालित हो तथा उसपर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रहे, ताकि वे मूल्य एवं राजनीतिक आदर्श सुरिक्षत रहें जिनके लिए समाज राज्य के बन्धनों को स्वीकार करता है। कार्ल फ्रेडरिक के अनुसार, ''व्यवस्थित परिवर्तन की जटिल प्रक्रियात्मक व्यवस्था ही संविधानवाद है।'' इस परिवर्तन को सरकार तथा नागरिक ही संभव बनाते हैं।

अतः संविधानवाद उस निष्ठा का नाम है जो मनुष्य संविधान में निहित शक्ति में रखते हैं तथा जिससे सरकार व्यवस्थित बनी रहती है। संविधानवाद लोकतांत्रिक व्यवस्था में ही संभव है, लेकिन इसको प्रजातंत्र के समरूप मानना भूल होगी। इस प्रकार संविधानवाद की परिभाषाओं के आधार पर इसके चार प्रमुख तत्व परिलक्षित होते हैं, जिनकी झलक संविधान में पायी जाती है। ये तत्व हैं- ;पद्ध संविधान अपरिहार्य संस्थाओं को अभिव्यक्त करता है। ;पपद्ध संविधान राजनीतिक शक्ति को प्रतिबन्धित करता है। ;पपपद्ध संविधान विकास का निदेशक है। ;पअद्ध संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठनकत्र्ता है।

### 2.1.5. संविधानवाद की विशेषताएँ

सभी देशों या राजनीतिक समाजों का संविधानवाद मूलरूप से एक होता है। हर संविधानवाद में सामान्य विशेषताएँ पायी जाती है। एक संविधानवाद से दूसरे संविधान में इन विशेषताओं में केवल मात्रा की ही भिन्नता पायी जाती है, प्रकार की नहीं। इस प्रकार संविधानवाद की व्याख्या के क्रम में उनकी कुछ विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं, जो निम्न हैंः-

(i) संविधानवाद मूल्य-सम्बद्ध अवधारणा है- संविधानवाद उन मूल्यों, विश्वासों तथा राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है जो राष्ट्र और समाज को प्रिय हैं और जिनकी रक्षा, प्राप्ति तथा आवश्यक प्रगति के लिए समाज हर प्रकार का त्याग एवं कुर्बानी कर सकता है। यद्यपि ये विचार एवं आदर्श अभिजनों द्वारा प्रदान किए जाते हैं, परन्तु अन्ततोगत्वा ये विचार एवं आदर्श व्यवहार में विचारशील वर्ग द्वारा जनता तक पहुँचाये जाते हैं।

(ii) संविधानवाद संस्कृति- सम्बद्ध अवधारणा है- किसी देश के मूल्य, आदर्श एवं विचार वहाँ की संस्कृति से सम्बद्ध होते हैं। इस दृष्टिकोण से संविधानवाद भी संस्कृति से सम्बद्ध रहता है। यदि किसी राजनीतिक समाज में संस्कृति में विविधता या भिन्नता पायी जाती है तो वहाँ संविधानवाद विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय सूचक माना जाता है।

(iii) संविधानवाद गत्यात्मक अवधारणा है- संविधानवाद गत्यात्मक अवधारणा है, इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें स्थिरता नहीं है। राजनीतिक विकास के लिए गत्यात्मकता एवं स्थायित्व दोनों आवश्यक है। संविधानवाद पुराने मूल्यों तथा आदर्शों के साथ-साथ एक नये मूल्यों एवं विचारों के निर्माण एवं प्राप्ति का भी साधन है। अतः इसको स्थायित्वयुक्त गत्यात्मक अवधारणा कहना युक्तिसंगत होगा।

(iv) संविधानवाद सहभागी अवधारणा है- यह संभव है कि एक राष्ट्र के मूल्यों, विश्वासों, राजनीतिक आदर्शों तथा संस्कृति के प्रति कई अन्य राष्ट्रों की निष्ठा या आस्था हो सकती है। कई देशों के मूल्य, संस्कृति तथा राजनीतिक आदर्श एक समान हो सकते हैं। विकासशील लोकतांत्रिक देशों में यद्यपि कई मुख्य असमानताएँ परिलक्षित होती हैं तथापि मोटा-मोटी संविधानवाद एक-सा ही कहा जा सकता है। इसीलिए हम कह सकते हैं कि संविधानवाद एक सहभागी अवधारणा है।

(v) साध्यमूलक अवधारणा- संविधानवाद एक साध्यमूलक अवधारणा है, लेकिन उसमें साधनों की उपेक्षा नहीं की गयी है। कोई भी साध्य साधन के बिना संभव  नहीं है। तथापि हम कह सकते हैं कि संविधानवाद मुख्यतः एक साध्यमूलक अवधारणा है जिसमें साधनों को गौण स्थान दिया है।

(vi) संविधान-जन्य अवधारणा- संविधानवाद संविधान-जन्य अवधारणा है। मूल्यों एवं राजनीतिक आदर्शों से युक्त संविधान संविधानवाद की आधारशिला है जिसपर उसकी नींव टिकी रहती है। हर देश के संविधान में वहाँ की आस्थाओं का उल्लेख रहता है। हलाँकि कई स्थितियों में संविधान और संविधानवाद में साम्य नहीं होता है, न ही संविधान में संविधानवाद के आदर्शों का झलक मिलता है। लेकिन ऐसी स्थिति अपवादस्वरूप होती है और वह राजनीतिक संकट का सूचक होती है।

### 2.1.6. संविधानवाद का उद्भव

संविधानवाद की उत्पत्ति और विकास का एक क्रमिक इतिहास है। इसको वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए इसके विकास के इतिहास को जानना आवश्यक है। संविधानवाद के विकास का इतिहास राजनीतिक संस्थाओं के विकास के इतिहास से जुड़ा हुआ है। संविधानवाद की उत्पत्ति के बारे में निश्चित कहना कठिन है, तथापि जहाँ से संविधानवाद एक अवधारणा के रूप में प्रचलित हुआ उसका जिक्र संभव है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीन यूनान के एथेंस नगर का नाम लिया जा सकता है। कहा जाता है कि ईसा के पूर्व 624 से लेकर 724 तक की अवधि में संविधानवाद का जन्म हुआ। इसी काल में संविधानों का प्रणयन हुआ। राज्य के स्वरूप, व्यवस्था तथा इसके कार्यचालन को नियमित करने के लिए नियमों एवं सिद्धान्तों का निर्धारण हुआ। यूनानी राजनीतिक चिन्तकों ने राज्य-व्यवस्था के स्वरूप को

निर्धारित करने के क्रम में संविधानवाद की भी बीज डाली। यूनान की धरती पर उत्पन्न और अंकुरित संविधानवाद की टहनियाँ विश्व के दूसरे देशों में ले जायी गयीं। धीरे-धीरे संविधानवाद प्रस्फुटित होता गया और अन्य देशों में इसकी जड़ें जमती गयीं।

### 2.1.7. संविधानवाद का विकास

संविधानवाद के विकास को एक काल या एक चरण में नहीं रखा जा सकता है। अनेक चरणों तथा अनेक कालों से गुजरता हुआ संविधानवाद का वर्तमान काल में पदार्पण हुआ। अतः अध्ययन की सुविधा हेतु संविधानवाद के विकास के इतिहास को निम्नलिखित कालों या चरणों में बाँटा जा सकता है।

#### 2.1.7.1. यूनानी संविधानवाद

यूनानी संविधानवाद ने राजनीतिक पृथकतावाद के सिद्धांत को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना था। उन्होंने नगर-राज्य की स्थापना की थी जिसके अन्तर्गत नागरिकता कुछ ही लोगों तक सीमित थी। दास, श्रमिक, औरतें तथा अन्य ऐसे वर्ग थे जिन्हें नागरिकता से वंचित रखा गया था। अधिकांश नगर-राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था थी। अपवादस्वरूप स्पार्टा था, जहाँ सैनिक शासन था। यूनानी नगर-राज्यों में नागरिकों की एक ही साथ विविध भूमिका थी। स्ट्रांग के शब्दों में, ''यूनानी नागरिक एक ही साथ सैनिक, न्यायाधीश और शासकीय मंडल का सदस्य था।'' यूनानी नगर-राज्य अपने आप में पूर्ण था जहाँ मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती थी। प्लेटो एवं अरस्तू ने राज्य का अध्ययन नैतिक संदर्भ में किया था जिसके कारण राजनीतिक संविधानवाद नैतिक बंधनों में बँध गया था।

यद्यपि यूनानी संविधानवाद संविधानवाद के विकास में प्रेरक श्रोत रहा है, परन्तु अत्यधिक सीमित दायरा के कारण यह आधुनिक युग के लिए उपयुक्त नहीं हो सका। प्लेटो और अरस्तू दोनों ही नगर-राज्य की सीमा तक सीमित रहे जिसके कारण यूनानी संविधानवाद का स्वरूप आगे नहीं बढ़ सका।

#### 2.1.7.2. रोमन संविधानवाद

यूनानी नगर-राज्य व्यवस्था के पतन तथा रोमन साम्राज्य की स्थापना के बीच के अवधि में राजनीतिक एवं सांविधानिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। राज्य के साथ ही व्यक्ति को भी प्रधानता मिली तथा नीति और राजनीति का पृथक्करण हो गया। उस समय के राजनीतिक दर्शन में दो तत्व उभरे- व्यक्तिवाद और सर्वराष्ट्रवाद। रोमनों ने शासन-संचालन के लिए संविधानवाद का विकास किया। रोमनों ने अपने कानूनों का संहिताकरण किया तथा उत्तरदायी सरकार की अवधारणा दी। रोमन संविधानवाद ने एक साथ दो सिद्धान्तों को मान्यता दी- ;पद्ध सम्राट की इच्छा को कानूनी शक्ति प्राप्त है, ;पपद्ध सम्राट की शक्तियों का स्रोत जनता है। इस प्रकार रोमन संविधानवाद ने संविधानवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

#### 2.1.7.3. मध्यकालीन संविधानवाद

रोमन साम्राज्यवाद के पतन के बाद सामंतवाद का उदय हुआ। मध्यकाल सामंतवाद चर्च की प्रधानता के रूप में माना जाता है। यूरोप में छोटे-छोटे अनेक सामंतवादी राज्यों की स्थापना हुई। मध्यकाल 'राज्यविहीन' व्यवस्था का प्रतीक था। मध्यकाल के प्रथमचरण में चर्च की प्रभुता रही, परन्तु उत्तरार्द्ध में सम्राटों ने चर्च की प्रधानता को चुनौती दी। इस अवधि में ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्पेन की आन्तरिक राजनीति में आधुनिक राज्य का बीजारोपण हो गया जबकि जर्मनी और इटली पर वर्षों तक पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रभाव बना रहा। फ्रांस में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के नारों ने निरंकुश राज्य पर प्रहार किया जिसके फलस्वरूप संविधानवाद के नये आयामों का जन्म हुआ।

### 2.1.7.4. पुनर्जागरण काल में संविधानवाद

पुनर्जागरण काल में मानवीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। साथ ही कला, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में नये आयाम जुड़े तथा नये मूल्यों का जन्म हुआ। इस अवधि में असीमित राजतंत्र की स्थापना हुई। जिसके कारण संविधानवाद का विकास अवरूद्ध हो गया।

### 2.1.7.5. ब्रिटेन में संविधानवाद

मध्यकालीन तथा पुनर्जागरणकालीन संविधानवाद के विश्लेषण के क्रम में ब्रिटेन, फ्रांस तथा अमेरिका में संविधानवाद के विकास का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। ब्रिटेन से संविधानवाद के विकास के क्रम में असीमित राजतंत्र की स्थापना, असैनिक क्रांतियों के कारण राजतंत्र का पतन तथा संसद का उदय एवं प्रभुत्व पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। सम्राट एवं संसद के द्वंद्व एवं संघर्ष के परिणामस्वरूप सम्राट की शक्तियों में ह्ास हुआ और संसद की शक्तियों में वृद्धि हुई। अतः यह कहा जा सकता है कि इसने संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को जन्म दिया है। विधि का शासन इंगलैंड के संविधानवाद का प्रमुख योगदान है।

### 2.1.7.6. फ्रांस में संविधानवाद

फ्रांस में संविधानवाद के विकास में अनेक उतार-चढ़ाव हुए। रूसो की प्रसिद्ध पुस्तक 'सोशल कन्टैक्ट' से प्रभावित होकर मानव-स्वतंत्रता के सिद्धांत पर राष्ट्रीय सभा का गठन किया गया। बाद में नेपोलियन द्वारा असीमित राजतंत्र ने उदारवादी विचारधाराओं को दबा दिया। 1875 में तृतीय गणतंत्र की स्थापना हुई। 1946 में चतुर्थ गणतंत्र के द्वारा एक कमजोर राष्ट्रपति तथा अस्थायी मंत्रीमंडल का जन्म हुआ जो 1958 में पंचम् गणतंत्र की स्थापना तक बना रहा। पंचम् गणतंत्र ने एक शक्तिशाली राष्ट्रपति की व्यवस्था की। इस प्रकार फ्रांस ने संसदीय लोकतंत्र तथा अध्यक्षीय लोकतंत्र को मिलाकर मिश्रित राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया। अतः संविधानवाद के विकास में फ्रांस की क्रांति द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की अवधारणाएँ मुख्य योगदान है।

### 2.1.7.7. विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की अवधि संविधानवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया की अवधि मानी जाती है, जो संविधानवाद के विकास को प्रभावित किया। इसने कुछ देशों में ऐसी राजनीतिक व्यवस्थाओं को जन्म दिया जिससे संविधानवाद के विकास पर आघात पहुँचा। जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासीवाद तथा सोवियत रूस में साम्यवाद के उदय ने निश्चय ही संविधानवाद के विकास को अवरूद्ध किया है। इन देशों में एक दल की प्रधानता स्थापित हुई तथा विरोध को खत्म करने का प्रयास किया गया। तथापि सांविधानिक मान्यताओं के आधार पर सृजित राष्ट्रसंघ नामक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से संविधानवाद की एक नयी अवधारणा अन्तरराष्ट्रवाद को सबल सहारा मिला।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रीयता के तेज झोंके के कारण अनेक देश स्वतंत्र हुए। उनमें से कई देशों ने पाश्चात्य देशों के लोकतंत्रात्मक मॉडेल को अपनाया। भारत ने स्वतंत्रता के बाद ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली का मॉडेल अपनाया। सोवियत रूस की साम्यवादी व्यवस्था न केवल बनी रहीं, वरन् एक मॉडेल के रूप में उभरने लगीं। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् 'तृतीय विश्व' के रूप में विकासशील देश संगठित हुए। लेकिन 'तृतीय विश्व' के कई देशों में संविधानवाद अभी भी प्रयोगावस्था में है। इनमें कई देशों ने पाश्चात्य लोकतंत्र को अपनाया, कई देशों ने साम्यवादी तथा कुछ देशों में सैनिक शासन का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार तृतीय विश्व के देशों में संविधानवाद का विकास अलग-अलग ढ़ंग

से हुआ और हो रहा है। अन्तरराष्ट्रवाद ने भी संविधानवाद को सशक्त बनाने का प्रयास किया है, जिसके कारण राष्ट्रसंघ की समाप्ति के बाद पुनः संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ।

इस प्रकार संविधानवाद के उद्भव एवं विकास के इतिहास को जानने के बाद कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम, संविधानवाद द्वारा सांविधानिक ढ़ंग से शासन-संचालन की प्रक्रिया की अनुशंसा की गयी। शासन संचालन का आधार विधि का शासन हो, व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की इच्छाओं और अकांक्षाओं को शासन का आधार नहीं होना चाहिए। द्वितीय, संविधानवाद में तीन तत्व, राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा स्वशासन, निहित हैं। तृतीय, शासन की सत्ता जनता में निहित होनी चाहिए। चतुर्थ, संविधानवाद के अन्तर्गत अन्तरराष्ट्रीयता विश्व के देशों के बीच मैत्री और सद्भाव पर टिकी होती है।

वस्तुतः संविधानवाद आज भी विकास की अवस्था में ही है। आज भी इस संबंध में नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। तृतीय विश्व कहलानेवाले देशों में आज भी संविधानवाद का स्वरूप निश्चित नहीं हो पाया है। इसके सम्मुख अनेक चुनौतियाँ हैं, अनेक बाधाएँ हैं। जहाँ एक ओर इसे पाश्चात्य लोकतंत्र से बल मिल रहा है तो दूसरी ओर इसे साम्यवाद से खतरा भी पैदा हो रहा है। साम्यवादी दल इन देशों में संविधानेतर स्तर पर भूमिका अदाकर संविधानवाद की आत्मा पर आघात कर रही है।

### 2.1.8. संविधानवाद की अवधारणाएँ

संविधानवाद को किसी एक विचारधारा के अन्तर्गत बाँधना उचित नहीं है। कई पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तकों ने संविधानवाद की एक ही अवधारणा को मान्यता दी है। उनके अनुसार उदार-लोकतंत्रीय अवधारणा ही संविधानवाद की अवधारणा है, जो युक्तिसंगत नहीं है। वस्तुतः संविधानवाद राजनीतिक समाज के आदर्शों, लक्ष्यों, विश्वासों एवं मूल्यों को परिलक्षित करता है। प्रत्येक राजनीतिक समाज के लक्ष्य, आदर्श एवं विश्वास अलग-अलग होते हैं, इसीलिए संविधानवाद की एक अवधारणा की मान्यता गलत है। अतः संविधानवाद के सम्बन्ध में अबतक जो अवधारणाएँ हैं, वे निम्न हैं- ;पद्ध पाश्चात्य अवधारणा, ;पपद्ध साम्यवादी देशों की अवधारणा और ;पपपद्ध विकासशील देशों की अवधारणा।

संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा इस बात का प्रतिपादक है कि संविधानवाद साध्य भी है और साधन भी है। यह मूल्य-विहीन तथा मूल्य-जन्य दोनों हैं। कोई भी संविधान आदर्श एवं लक्ष्यों से परे नहीं होता है, इसलिए इसे मूल्य-विहीन कहना अनुचित है। संविधानवाद केवल सरकार के अंगों के संगठन एवं शक्तियों का ही उल्लेख नहीं करता, वरन् स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा अधिकारों को भी यथोचित महत्व देता है। पाश्चात्य अवधारणा लिखित तथा अलिखित दोनों प्रकार के संविधानों को मान्यता देती है। यह एक ऐसे सांविधानिक राज्य की स्थापना करना चाहती है जो स्थापित एवं मान्य विधि के सिद्धान्तों और अभिसमयों की सीमा के अन्तर्गत काम करे। इसीलिए पाश्चात्य संविधानवाद को ‘उदारवाद का दर्शन’ कहा जाता है। इसके दो प्रमुख तत्व स्पष्ट होते हैंः- ;पद्ध सीमित सरकार की परम्परा और ;पपद्ध राजनीतिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त।

संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा माक्र्स तथा लेनिन की विचारधारा पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार राज्य एक शोषण-यंत्र है जिसके द्वारा पूँजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग या श्रमिकों का शोषण करते हैं। उनका मत है कि संविधान एक साधन मात्र है जिसका उद्देश्य समाजवादी विचारधारा को लागू करना है। सोवियत रूस, चीन तथा अन्य साम्यवादी देशों में संविधान का उद्देश्य सरकार की शक्तियों

को सीमित करना नहीं, वरन् उसमें विस्तार करना है। इन देशों में राजनीतिक दल का प्रभुत्व रहता है और एक दलीय पद्धति है। संविधान गौण है। संविधान का उद्देश्य दल को साम्यवादी लक्ष्यों को पूरा करने में सहायता प्रदान करना है। साम्यवादी देशों में संविधान का उद्देश्य नागरिकों के लिए स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं अधिकार उपलब्ध कराना नहीं है। इसका प्रमुख उद्देश्य समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करना तथा उसका विरोध करनेवालों को दंडित करना है। इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक शक्ति प्रधान है, राजनीतिक शक्ति गौण है।

यद्यपि साम्यवादी विचारकों का कहना है कि साम्यवादी व्यवस्था वास्तविक रूप में लोकतांत्रिक व्यवस्था है क्योंकि यहाँ समस्त सर्वहारा वर्ग शासन प्रबंध में सहभागी हैं। तथापि दूसरी ओर पाश्चात्य विचारक इसे संविधानवाद के अनुकूल नहीं मानते क्योंकि यहाँ पार्टी का अधिनायकवाद सम्पूर्ण शासन व्यवस्था पर है। लेकिन आज साम्यवादी देशों को संविधानवाद के इतिहास से निकाल फेंकना भी संभव नहीं है। क्योंकि लोकतंत्र की दुहाई देनेवाले पाश्चात्य देश भी यह दावा नहीं कर सकते कि वहाँ शासन-व्यवस्था में अधिकाधिक लोग भाग लेते हैं। आम चुनावों को छोड़कर अधिकांश अवसरों पर कुछ ही लोग निर्णयकारी प्रक्रिया में भाग लेते हैं। जबकि शासन संरचनाओं तथा शासन के आदर्शों एवं लक्ष्यों में अधिकाधिक सहमति ही संविधानवाद के लक्षण हैं। सच तो यह है कि सोवियत रूस में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हुए सौ वर्ष होने को है, परन्तु वहाँ के नागरिकों ने अभी तक इसके प्रति कोई विरोध नहीं व्यक्त किया है। इसके विपरीत भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में संसदीय शासन प्रणाली के विरूद्ध विचार व्यक्त किए गए हैं। अतः कहा जा सकता है कि सोवियत रूस अपने ढ़ंग से संविधानवाद पर अग्रसर हो रहा है।

विकासशील देशों में संविधानवाद के स्वरूप की कोई निश्चित पहचान नहीं हुई है। यहाँ संविधानवाद प्रयोगात्मक अवस्था में है। तृतीय विश्व के देशों की समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं, साथ ही उनमें परिपक्ता का भी अभाव है। जहाँ कुछ देश पाश्चात्य संविधानवाद से प्रभावित दीख पड़ते हैं, वहीं कुछ देशों पर साम्यवादी व्यवस्था की छाप दिखायी पड़ती है। कुछ देशों में उथल-पुथल के कारण सैनिक शासन स्थापित हो गया है। विकासशील देशों की कुछ सामान्य समस्याएँ हैं, जैसे ;पद्ध राजनीतिक स्थायित्व की समस्या, ;पपद्ध आर्थिक विकास की समस्या, ;पपपद्ध सुरक्षा की समस्या, ;पअद्ध राजनीतिक सत्ता की वैधता या औचित्य की समस्या, ;अद्ध आधुनिकीकरण की समस्या, ;अपद्ध राजनीतिक संरचना-विकल्पों की समस्या और ;अपपद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक साम्य की समस्या। इनके अतिरिक्त अलग-अलग देश की अलग-अलग समस्याएँ हैं। जिसके फलस्वरूप इन देशों में संविधानवाद में एकरूपता नहीं विकसित हो पाया है। भारत जैसे देश ने पाश्चात्य सांविधानिक राज्य के मॉडेल को स्वीकार किया है। जबकि कुछ देश, जैसे घाना, तनजानिया, उगांडा, बर्मा अभी तक विकल्पों के चुनाव में निश्चित स्थिति में नहीं आ पाये हैं।

तथापि समस्याओं की विविधता और जटिलता के बाबजूद विकासशील देशों में संविधानवाद स्वरूप ले रहा है और विकास की ओर अग्रसर है। कुछ राज्यों में जहाँ सैनिक शासन स्थापित हो चुके हैं वहाँ संविधानवाद खतरे में है। अतः रिगिन्स के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ‘‘राज्य नये हैं और राजनीतिक खेल के नियम प्रवाह में हैं, इसलिए संविधानवाद अभी तक सुस्थिर नहीं हो सका है।’’

**2.1.9. संविधानवाद की समस्याएँ**

वस्तुतः संविधानवाद आज विकसित और उन्नत अवस्था में है, इसके नष्ट होने का सवाल ही नहीं उठता है। इसका भविष्य भी अंधकारमय नहीं है। लेकिन यह कहना युक्तिसंगत नहीं होता है कि संविधानवाद का मार्ग निष्कंटक है। विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव के कारण ऐसा लगता है कि संविधान का भविष्य खतरे में है। जिस ढ़ंग से तृतीय विश्व के देशों में सैनिक शासनों की स्थापना हो रही है उससे संविधानवाद के सम्बन्ध में आशंकाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसके सम्मुख कई समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं। जब तक इन समस्याओं का सही समाधान नहीं हो पाता है, तब तक संविधानवाद का भविष्य आशंकाओं से मुक्त नहीं होगा। अतः संविधानवाद की समस्याओं को जानना आवश्यक है, जो निम्न हैं:-

**युद्ध-** संविधानवाद के मार्ग में युद्ध सबसे प्रमुख समस्या है। युद्ध की स्थिति में सांविधानिक राज्य की संरचनात्मक स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। युद्ध से उत्पन्न संकट का मुकाबला करने के लिए प्रत्येक सरकार असीमित अधिकार की माँग करती है। जिससे संविधानवाद पर खतरा संभावित रहती है। युद्ध के कारण ही द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान, जर्मनी तथा इटली में संविधानवाद की संरचना नष्ट हो गयी थी।

**आन्तरिक आपात-** आन्तरिक स्तर पर आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होने पर संविधानवाद के नष्ट होने या कमजोर होने का भय बना रहता है। आपातकाल का मुकाबला करने के लिए संविधान में विशेष व्यवस्थाएँ की जाती हैं जिनके अनुसार संविधान के मूल स्वरूप को नष्ट किए बिना सरकार असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। आपातकाल की समाप्ति के बाद संविधान पुनः सामान्य स्थिति में आ जाती है। लेकिन 1975 में भारत में आपातकालीन स्थिति की उद्घोषणा के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने स्वेच्छाचारी प्रवृत्तियों का संकेत दिया था। इस अवधि में अनेक जनहित विरोधी अधिनियम पारित किए गए। संविधान में भी मनमाने ढ़ंग से संशोधन लाये गये। अतः स्पष्ट होता है कि प्रावधान के बाबजूद आपातकालीन शक्तियों के कारण संविधानवाद के तत्वों के नष्ट होने की पूरी आशंका रहती है।

सामाजिक-आर्थिक संकटों का मुकाबला- किसी देश में सरकार को सामाजिक-आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए कभी-कभी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है। इसके लिए कभी-कभी सांविधानिक नियमों एवं सिद्धान्तों की उपेक्षा करनी पड़ती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत आर्थिक संकट का मुकाबला करने के लिए कार्यपालिका को विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं।

**एकदलीय पद्धति-** यदि लोकतंत्र की सफलता के लिए दल-पद्धति आवश्यक है तो संविधानवाद की रक्षा के लिए दो राजनीतिक दलों का होना अत्यावश्यक है। एकदलीय पद्धति स्वेच्छाचारिता का प्रतीक है। सोवियत रूस, चीन तथा अन्य साम्यवादी देशों में एकदलीय पद्धति के कारण सत्तारूढ़ दल मनमाना करता है। भारत में अनेक दलों के होने के कारण व्यवहार में यह एकदलीय पद्धति का रूप धारण कर लेती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अधिकांश समय कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व रहा है, जिसके कारण वह समय-समय पर स्वेच्छाचारिता का परिचय दिया है।

समाजवाद और अन्तरराष्ट्रवाद - संविधानवाद के लिए समाजवाद और अन्तरराष्ट्रवाद भी कभी-कभी समस्या के रूप में उपस्थित होते हैं। वैसे आधुनिक विचारकों का मत है कि समाजवाद और

अन्तरराष्ट्रवाद से संविधानवाद को खतरा नहीं है, परन्तु कभी-कभी इसके कारण संविधानवाद को विकास अवरूद्ध हुआ है।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त संविधानवाद के समक्ष और भी समस्याएँ हैं। विकासशील देशों का राजनीतिक उथल-पुथल तथा अन्य समस्याएँ संविधानवाद के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है। इनके कारण संविधानवाद का भविष्य कभी-कभी अंधकारमय दीख पड़ता है।

**2.1.10. समाधान**

प्रत्येक समस्या के साथ ही समाधान के रास्ते भी होते हैं। उसी तरह संविधानवाद की समस्याओं के समाधान के लिए विद्वानों ने अनेक सुझाव दिए हैं। सर्वप्रथम, संविधानवाद को राष्ट्रीय स्तर पर आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता देनी चाहिए। अन्यथा विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और राज्य के बँटवारे की आशंका हो सकती है। बंगलादेश का निर्माण इस अभाव का ही प्रतिफल कहा जा सकता है। केवल राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता दे देने से भी समस्या का निदान नहीं हो सकेगा, क्योंकि कभी-कभी छोटे राष्ट्रीय समूह पृथकतावादी आन्दोलन कर राष्ट्रीय एकता की नींव को कमजोर कर देते हैं। पंजाब में अकाली आन्दोलन, मिजोरम में मिजो फ्रंट द्वारा पृथकतावादी आन्दोलन इसके उदाहरण हैं। अतः इसके लिए राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता है।

स्वेच्छाचारी या सर्वाधिकारी सरकार संविधानवाद का शत्रु है। अतः संविधानवाद के पोषण एवं विकास के लिए राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत लोकतंत्रात्मक मॉडेल अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए संविधान में पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए। जितना लोकतांत्रिक तत्वों को प्रश्रय दिया जाएगा, उतना ही सर्वाधिकारवाद का भय कम होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि लोगों को विश्वास दिलाया जाय ताकि वे राज्य के महत्वपूर्ण निर्णय लेने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहभागी हों।

संविधान के विकास एवं सुरक्षा के लिए संघात्मक शासन-व्यवस्था ज्यादा कारगर हो सकती है। क्योंकि इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता तथा क्षेत्रीय स्वायत्तता का समन्वय होता है। इसलिए संविधानवाद को संघवाद को प्रश्रय देना चाहिए। साथ ही जहाँ एकात्मक शासन-व्यवस्थाएँ हैं वहाँ भी सत्ता को अधिक से अधिक विकेन्द्रित किया जाय जिससे राजनीतिक शक्तियाँ एक विन्दु पर संग्रहित न हो जाएँ। इसीलिए स्ट्रांग का सुझाव है कि एकात्मक राज्य में भी संघवाद की तरह अपने छोटे राजनीतिक निकायों में शक्तियों का इस प्रकार विभाजित किए जाएँ जिससे केन्द्रीय सरकार के पास वे ही शक्तियाँ रह जाएँ जो सम्पूर्ण देश के सामान्य हित के लिए आवश्यक हो।

यदि संविधानवाद में अन्तरराष्ट्रवाद के मुख्य सिद्धान्तों को अपने-आप में समाहित कर ले या उनके साथ समुचित ढंग से समायोजन करे तो यह हितकर होगा। आज कई देशों ने अपने संविधान में अन्तरराष्ट्रवाद के तत्वों को मान्यता दी है। भारतीय संविधान के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रति सम्मान, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति एवं सद्भाव तथा अन्तरराष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण ढ़ंग से निबटारा के लिए उचित व्यवस्था की गयी है। इस संबंध में स्ट्रांग का कथन उल्लेखनीय है कि ''अन्तरराष्ट्रीय संगठन राजनीतिक संविधानवाद की सुरक्षा की एक अनिवार्य शत्र है।''

इसके अलावे संविधानवाद की समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में दो बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथम, संविधानवाद के समर्थकों को इस पर पूरा ध्यान देना होगा कि सर्वाधिकारवादी तत्वों को रोकने के लिए हर संभव प्रयास किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि

आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र के प्रतिमानों को सुगठित एवं सशक्त बनाया जाय। द्वितीय, इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि संविधान में संशोधन की उचित व्यवस्था की जाय जिससे सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ संविधान में भी आसानी से संशोधन हो सके। यदि संविधानवाद कठोरता एवं जटिलता का शिकार हो जाता है तो विद्रोह की आग भड़केगी और वह अन्ततः संविधानवाद के लिए खतरा बन जाएगी। इसीलिए यही उपयुक्त होगा कि संविधानवाद की धारणा को लोगों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं एवं सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं में परिवर्तन के अनुकूल बदलते रहना चाहिए।

**2.1.11. निष्कर्ष**

यद्यपि समाजवादी विचारधारा के अन्तर्गत कुछ ऐसे तत्व हैं जिससे संविधानवाद के लिए समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। तथापि आधुनिक संदर्भ में समाजवाद को संविधानवाद का विरोधी नहीं माना जाता है। आज के युग की तीन मुख्य अवधारणाएँ हैं- राष्ट्रवाद, समाजवाद और लोकतंत्र। संविधानवाद की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किस सीमा तक इसके अन्तर्गत इन धारणाओं का समावेश किया जाता है और इनके बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। इंगलैंड के संविधान में फेबियनवाद को स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान ने भी लोकतांत्रिक समाजवाद के लिए आधार तैयार किया है। इसीलिए आधुनिक संविधानवाद को भी नयी आर्थिक व्यवस्थाओं को स्थान एवं महत्व देना होगा।

समाजवादी विचारक मानते हैं कि समाजवादी व्यवस्था ही वास्तव में लोकतांत्रिक है। वे पाश्चात्य व्यवस्था को झूठा लोकतंत्र मानते हैं। उनका कथन है कि पाश्चात्य व्यवस्था में राज्य शोषण का एक यंत्र है, वह न तो लोकतांत्रिक है और न ही जनहित पोषक है। सच तो यह है कि समाजवाद-संविधानवाद समीकरण का अतीत भले ही निराशाजनक रहा हो, दोनों में कितनी ही भिन्नता रही हो, परन्तु आज समाजवाद के सिद्धान्तों को लोकतंत्र तथा संविधानवाद के सिद्धान्तों में मिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। आज यह नहीं कहा जा सकता है कि सोवियत रूस में संविधानवाद असफल हो गया है या नष्ट हो गया है। वहाँ के लोगों में व्यवस्था के प्रति न तो असंतोष है और न ही कोई विरोध। अतः पाश्चात्य लोकतंत्र के साथ संविधानवाद को मिला देना उचित नहीं है।

लोकतंत्र के अनेक प्रतिमान हो सकते हैं। यह सत्य है कि लोकतंत्र संविधानवाद के विकास के लिए ज्यादा अनुकूल है, परन्तु इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि समाजवाद लोकतंत्र का शत्रु है। आज साम्यवादी देशों में संविधानवाद अपने ढंग से बढ़ रहा है। अतः आधुनिक संदर्भ में समाजवाद को संविधानवाद का विरोधी कहना सरासर गलत है। क्योंकि संविधानवाद के अर्थ को कोई कठोर अथवा निश्चित रूप नहीं देना चाहिए बल्कि इसे एक गतिशील वस्तु के रूप में देखना चाहिए जो नई स्थितियों, नई चुनौतियों, नई समस्याओं तथा नए मुद्दों के उदय के साथ परिवर्तित होती है। अतः परिवर्तन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिससे डरा जाए अथवा जिसे रोका जाए, बल्कि यह तो वास्तव में आधुनिक संविधानवाद का ढाँचा बनाना है।

**2.1.12. कठिन शब्दावली**

(1) स्वेच्छाचारी - अपने मन की करना।
(2) अभिजन - विशिष्ठ जन, विशेष व्यक्ति।
(3) अन्ततोगत्वा - अंत में।
(4) गत्यात्मक - गतिशील।
(5) साध्यमूलक - साध्य प्रधान।
(6) पुनर्जागरण - पुनः जागृत करना।
(7) अभिसमय - परम्परागत रीति - रिवाज।

**2.1.13.अभ्यास प्रश्न**

**वैकल्पिक प्रश्न**

(1) संविधानवाद का अभिप्राय क्या है ?
(क) संविधान (ख) संवैधानिक सरकार
(ग) कानून का शासन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

(2) संविधानवाद कैसी राजनीतिक व्यवस्था चाहता है ?
(क) जिसमें संविधान द्वारा शासन हो
(ख) जिसमें कानून का शासन हो
(ग) जिसमें व्यक्ति का शासन हो
(घ) जिसमें शासन की शक्तियाँ सीमित और शासन सभ्य हो

(3) व्यवस्थित परिवर्तन की जटिल प्रक्रियात्मक व्यवस्था ही संविधानवाद है, किसने कहा है ?
(क) स्ट्रांग (ख) पिनरॉक एवं स्मिथ
(ग) के0 सी0 व्हीयर (घ) कार्ल फ्रेडरिक

(4) संविधानवाद की सर्वप्रथम उत्पत्ति कहाँ हुई है ?
(क) ब्रिटेन (ख) फ्रांस (ग) यूनान (घ) अनिश्चित

(5)संविधानवाद की निम्न में से कौन समस्या नहीं है ?
(क) युद्ध (ख) एकदलीय पद्धति
(ग) स्वशासन (घ) समाजवाद एवं अन्तरराष्ट्रवाद

उत्तर- 1 (घ), 2 (घ), 3 (घ), 4 (ग), 5 (ग)

**लघुउत्तरीय प्रश्नः-**

(1) संविधान तथा संविधानवाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
(2) यूनानी संविधानवाद की व्याख्या करें।
(3) रोमन संविधानवाद की व्याख्या करें।
(4) संविधानवाद की विशेषताओं का उल्लेख करें।
(5) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद के विकास पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
(6) ब्रिटेन के संविधानवाद पर टिप्पणी लिखें।

**दीर्घउत्तरीय प्रश्नः-**

(1) संविधानवाद से क्या समझते हैं? उसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।

(2) संविधानवाद के उद्भव एवं विकास की व्याख्या करें।

(3) संविधानवाद की मुख्य अवधारणाओं का उल्लेख करें।

(4) संविधानवाद की मुख्य समस्याओं का उल्लेख करें तथा उनके समाधान का मार्ग बताइए।

(5) बीसवीं शदी में संविधानवाद के विकास पर एक निबन्ध लिखें।

## 2.1.14. संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. जैन डॉ० पुखराज एवं फाड़िया डॉ० बी० एल०, 2003, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, ISBN-81-7288-088-X, पृष्ठ क्रमांक 56 से 57 तक
2. प्रसाद, डॉ० मणिशंकर, 1986, तुलनात्मक राजनीति, पटना, भारती भवन, T-1071/86, पृष्ठ क्रमांक 42 से 45 तक
3. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
5. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## इकाई-2 : शासन के प्रकार: संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली

**इकाई की रूपरेखा**

**2.2.1. उद्देश्य**
**2.2.2. संसदीय शासन प्रणाली का अर्थ**
**2.2.3. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ**
**2.2.4. संसदीय शासन प्रणाली के गुण**
**2.2.5. संसदीय शासन प्रणाली के दोष**
**2.2.6. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली का अर्थ**
**2.2.7. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएँ**
**2.2.8. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के गुण**
**2.2.9. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के दोष**
**2.2.10. दोनों शासन प्रणाली में अन्तर**
**2.2.11. इंगलैंड की शासन प्रणाली**
**2.2.12. अमेरिका की शासन प्रणाली**
**2.2.13. सोवियत शासन प्रणाली**
**2.2.14. फ्रांस की शासन प्रणाली**
**2.2.15. स्विस शासन प्रणाली**
**2.2.16. निष्कर्ष**
**2.2.17. कठिन शब्दावली**
**2.2.18. अभ्यास प्रश्न**
**2.2.19. संदर्भ ग्रंथ सूची**

### 2.2.1. उद्देश्य

- शासन एवं उसके प्रकार के बारे में जान सकेंगे।
- संसदीय शासन प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।
- उसकी विशेषताएँ, गुण एवं दोष के बारे में जान सकेंगे।
- अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।
- उसकी विशेषताएँ, गुण एवं दोष के बारे में जान सकेंगे।
- दोनों शासन प्रणाली के बीच अन्तर को समझ सकेंगे।
- विभिन्न देशों के शासन प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- किस शासन प्रणाली को अच्छा मानेंगे, वह भी सकारण समझ सकेंगे।

### 2.2.2. संसदीय शासन प्रणाली का अर्थ

शासन के तीन अंग होते हैं- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका। इन तीनों अंगों के द्वारा शासन-कार्य का संचालन होता है। इसके लिए आवश्यक है कि तीनों अंग अपने-अपने कार्य को दायित्वपूर्वक निर्वाहन करे, तीनों के बीच अभिन्न संबंध हो और परस्पर उत्तरदायी हो। कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के सम्बन्धों के आधार पर शासन प्रणाली दो प्रकार की होती है- संसदीय शासन प्रणाली और अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली।

संसदीय शासन प्रणाली वह शासन प्रणाली है जिसके अन्तर्गत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच अभिन्न संबंध हो तथा कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हो। गार्नर के शब्दों में, ''संसदीय शासन प्रणाली वह शासन-प्रणाली है जिसमें वास्तविक कार्यपालिका, मंत्रिमंडल, विधायिका अथवा उसके लोकप्रिय सदन के प्रति अपने कार्यों तथा अपनी राजनीतिक नीतियों के लिए उत्तरदायी होती है।'' इसके अन्तर्गत राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्तियाँ मंत्रिमंडल में निहित होती हैं और राज्य का प्रधान मात्र सांविधानिक प्रधान होता है।

### 2.2.3. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताएँ

संसदीय शासन-प्रणाली की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं-

(1) कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका में संबंध- कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध संसदीय शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता है। मंत्रिमंडल के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और वे समस्त विधायिका के कार्यों में भाग लेते हैं। इसीलिए बेजहॉट ने कहा है कि ''मंत्रिमंडल वह कड़ी है जो जोड़ती है, एक बकलस है जो कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच गठबंधन करती है।''

(2) कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी- संसदीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिपरिषद् विधायिका के प्रथम सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। व्यवस्थापिका के सम्मुख उसे प्रशासन से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है तथा व्यवस्थापिका द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर उसे पदत्याग करना पड़ता है। सामूहिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत मंत्रिपरिषद् के सभी सदस्य एक-दूसरे के कार्यों के लिए जिम्मेदार होते हैं।

(3) सांविधानिक प्रधान की व्यवस्था- संसदीय शासन-प्रणाली में राज्य का प्रधान सांविधानिक प्रधान होता है। उनकी शक्तियाँ मात्र संविधान के प्रावधानों तक ही सीमित रहती हैं। वास्तविक प्रधान मंत्रिमंडल का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। अर्थात् वास्तविक कार्यपालिका शक्तियाँ प्रधानमंत्री तथा उसके मंत्रिमंडल के सहयोगियों में निहित होती हैं।

(4) मंत्रिमंडल की राजनीतिक एकता- संसदीय शासन-प्रणाली में मंत्रिमंडल में राजनीतिक एकता रहती है। प्रायः मंत्रिमंडल के सदस्य एक ही दल के होते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों में दो या दो से अधिक दलों को मिलाकर संयुक्त सरकार या गठबंधन सरकार बनायी जाती है। मंत्रिमंडल के निर्णय के विरूद्ध कोई सदस्य बाहर नहीं बोल सकता है और न ही उसके विरूद्ध कार्रवाई कर सकता है।

(5) गोपनीयता- मंत्रिमंडल की कार्यवाही गोपनीय होती है। उसे मंत्रिमंडल के बाहर किसी भी मंत्री के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता है। इसीलिए मंत्रिमंडल का प्रत्येक सदस्य मंत्री पद ग्रहण करने के पूर्व गोपनीयता की शपथ लेता है।

(6) प्रधानमंत्री का नेतृत्व- संसदीय शासन-प्रणाली में प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का अध्यक्ष होता है। उसके नेतृत्व में ही मंत्रिमंडल सभी कार्य करता है। यहाँ तक कि मंत्रिमंडल के सदस्य एक ओर सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं और दूसरी ओर व्यक्तिगत रूप से प्रधानमंत्री के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

**2.2.4. संसदीय शासन प्रणाली के गुण**

संसदीय शासन प्रणाली के गुण निम्न हैं-

(1) कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच सहयोग- संसदीय शासन-प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके अन्तर्गत कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच सहयोग की भावना रहती है जिससे शासन-संचालन में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है। कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के भी सदस्य होते हैं, इसलिए दोनों के बीच सहयोग के बाद ही महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं।

(2) उत्तरदायी शासन- संसदीय शासन-प्रणाली उत्तरदायी शासन-प्रणाली है। मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति अपने समस्त कार्यों के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है। इस प्रकार, सरकार परोक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। डायसी के अनुसार, ''संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमंडल को जनमत के प्रति अत्यधिक सचेत रहना पड़ता है, क्योंकि उसी पर उसका अस्तित्व निर्भर करता है।''

(3) सरकार निरंकुश नहीं हो सकती है- संसदीय शासन-प्रणाली में मंत्रिमंडल का विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के कारण सरकार के निरंकुश होने का भय नहीं रहता है। व्यवस्थापिका के सदनों में मन्त्रियों से प्रश्न पूछे जाते हैं, सरकारी नीतियों पर वाद-विवाद होता है, सरकार के विरूद्ध कटौती का प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव तथा निन्दा का प्रस्ताव पारित किया जा सकता है। व्यवस्थापिका का प्रथम सदन मंत्रिमंडल के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर सकता है। इन सब कारणों से मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका के नियंत्रण में रहता है और उसके निरंकुश होने का भय कम रहता है।

(4) विरोधी दल का महत्व- संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत विरोधी दल का भी महत्व होता है। विधायिका में विरोधी दल सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखने का काम करता है। इंगलैंड में संसद में विरोधी दल को छाया मंत्रिमंडल कहा जाता है।

(5) लचीली शासन-व्यवस्था-संसदीय शासन-प्रणाली अपेक्षाकृत लचीली होती है, इसलिए इसके अन्तर्गत कार्य करने या निर्णय लेने में आसानी होती है। लचीली शासन व्यवस्था हरेक परिवर्तित स्थितियों में आसानी से शासन को सामंजित कर ले सकती है।

(6) जन-प्रतिनिधियों का शासन-संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत जनता के प्रतिनिधि शासन में सहभागी हो पाते हैं। सर्वप्रथम, मंत्रिमंडल के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। फिर मंत्रिमंडल पर जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण तथा अंकुश रहता है।

(7) राजनीतिक चेतना तथा राजनीतिक शिक्षा- व्यवस्थापिका के सम्मुख किसी विषय या मुद्दे पर होनेवाले वाद-विवाद के द्वारा जनमत तैयार होता है। विरोधी दल जनहित विरोधी नीतियों और अधिनियमों की आलोचना करके उसे जनता के सम्मुख लाता है। इस प्रकार आम लोगों में राजनीतिक चेतना जगती है, जिसके फलस्वरूप राजनीतिक जागरण आता है।

इसके अलावे सिडनी लो ने संसदीय शासन-प्रणाली के निम्नलिखित लाभों का उल्लेख किया है- (1) लोकतंत्रीय सिद्धान्तों की रक्षा, (2) जनप्रतिनिधियों के ऊपर शासन संचालन का दायित्व, (3) मंत्रिमंडल का व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व, (4) जनता में संप्रभुता का निवास, (5) कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के बीच सहयोग एवं समन्वय।

**2.2.5. संसदीय शासन-प्रणाली के दोष**

संसदीय शासन-प्रणाली के निम्नलिखित मुख्य दोष हैं-

(1) शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत का विरोध- संसदीय शासन-प्रणाली में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को मान्यता नहीं मिलती है। जिसके फलस्वरूप शासन के तीनों अंगों के बीच कार्यों का बँटवारा सही ढंग से नहीं हो पाता है जिसके कारण शासन के कार्य-संचालन में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

(2) मंत्रिमंडल के मनमानी का भय- संसदीय शासन-प्रणाली में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण मंत्रिमंडल का प्रभाव तथा शक्तियाँ बढ़ जाती है। जबतक मंत्रिमंडल को व्यवस्थापिका के प्रथम सदन में बहुमत रहता है तबतक वह मनमानी कर सकता है। इंगलैंड के मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में कई लेखकों ने मंत्रिमंडल के अधिनायकवाद शब्द का प्रयोग किया है।

(3) दुर्बल शासन-संसदीय शासन-प्रणाली में मंत्रिमंडल को हमेशा व्यवस्थापिका के अविश्वास का भय बना रहता है, इसलिए वह साहसपूर्ण निर्णय लेने में हिचकिचाता है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने संसदीय शासन को दुर्बल शासन कहा है।

(4) उग्र राजनीतिक दलबंदी- संसदीय शासन-प्रणाली उग्र राजनीतिक दलबंदी का शिकार होती है। इसमें व्यवस्थापिका के अन्तर्गत हमेशा तनावपूर्ण स्थिति रहती है। पदों की प्राप्ति के लिए विरोधी दलों में संघर्ष चलता रहता है।

(5) कार्यपालिका की अस्थिरता- संसदीय शासन-प्रणाली का एक बड़ा दोष कार्यपालिका की अस्थिरता भी है। व्यवस्थापिका का प्रथम सदन मंत्रिमंडल को किसी भी समय अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर अपदस्थ कर सकता है। कार्यपालिका की अस्थिरता के कारण ही फ्रांस के चतुर्थ गणतंत्र का पतन हुआ तथा एक नया संविधान बनाने की आवश्यकता पड़ी।

(6) संकटकाल के लिए अनुपयुक्त- संसदीय शासन-प्रणाली संकटकाल के लिए उपयुक्त नहीं है। इसमें शासकीय शक्तियाँ एक व्यक्ति में निहित न होकर सम्पूर्ण मंत्रिमंडल में निहित रहती हैं, जिसके कारण निर्णय लेने में विलम्ब होता है। साथ ही संकटकाल की उद्घोषणा के लिए व्यवस्थापिका की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। इस संकटकाल में निर्णय लेने में विलम्ब होने से स्थिति बिगड़ सकती है।

(7) अयोग्य व्यक्तियों का शासन- संसदीय शासन-प्रणाली में अयोग्य व्यक्तियों का शासन रहता है। मंत्रिमंडल के सदस्य प्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होकर आते हैं। उनमें आवश्यक योग्यता का अभाव रहता है। भारत में राज्य स्तर पर कभी-कभी ऐसे लोग मंत्री या मुख्यमंत्री हो जाते हैं जो अक्षम और अयोग्य होते हैं।

इस प्रकार संसदीय शासन-प्रणाली के गुण-दोषों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अनेक दृष्टियों से संसदीय शासन-प्रणाली ही बेहतर है। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध

होने के कारण कार्यपालिका के कामों में अवरोध नहीं पैदा होता है। साथ ही, व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होने के कारण यह शासन निरंकुश नहीं हो सकता है। यही कारण है कि आज प्रायः सभी देशों में संसदीय शासन-प्रणाली की लोकप्रियता बढ़ रही है।

### 2.2.6. अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का अर्थ

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली वह शासन-प्रणाली है जिसके अन्तर्गत शासन के तीनों अंग- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से काम करते हैं। कार्यपालिका व्यवस्थापिका से स्वतंत्र रहती है तथा राज्याध्यक्ष वास्तविक प्रधान होता है। गार्नर के शब्दों में, ''अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था वह शासन व्यवस्था है जिसमें कार्यपालिका अपनी कार्यावधि के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका से स्वतंत्र रहती है तथा अपनी राजनीतिक नीतियों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी नहीं रहती है।''

### 2.2.7. अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएँ

अध्यक्षात्मक-शासन प्रणाली की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं-

(1) शक्तियों का पृथक्करण- अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की सर्वप्रमुख विशेषता शक्तियों का पृथक्करण है। इसके अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ एवं कार्य बँटे रहते हैं और वे एक-दूसरे के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप किए बिना स्वतंत्र रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं। कार्यपालिका के सदस्य न तो व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं और न ही उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(2) राज्याध्यक्ष वास्तविक शक्तिशाली- अध्यक्षात्मक शासनप्रणाली के अन्तर्गत राज्याध्यक्ष सांविधानिक प्रधान न होकर वास्तविक प्रधान होता है। राष्ट्र की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राज्याध्यक्ष में निहित होती हैं। वह अपने कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। उदाहरणस्वरूप अमेरिका का राष्ट्रपति समस्त कार्यपालिका शक्तियों का स्वामी है।

(3) कार्यपालिका की कार्यावधि की निश्चितता- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत कार्यावधि की निश्चितता एक मुख्य तत्व है। इसके अन्तर्गत कार्यपालिका की अवधि निश्चित रहती है। व्यवस्थापिका उसे अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर नहीं हटा सकती है। महाभियोग की प्रक्रिया अत्यन्त ही जटिल होती है।

### 2.2.8. अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के गुण

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के निम्नलिखित गुण हैं-

(1) शासन में स्थायित्व- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का प्रमुख गुण शासन में स्थायित्व है। इस व्यवस्था में व्यवस्थापिका को सामान्य ढंग से कार्यपालिका को अपदस्थ करने का अधिकार नहीं होता है, इसीलिए शासन में स्थायित्व रहता है। स्थायी शासन देश में सुदृढ़ शासन देने में समर्थ होती है।

(2) शासन में कुशलता- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में शासकीय कुशलता रहती है। शासकीय कुशलता के कई कारण हैं- (क) मंत्रियों की नियुक्ति राज्याध्यक्ष के द्वारा होती है, जिसके कारण वह कुशल एवं अनुभवी व्यक्तियों को ही मंत्री नियुक्त करता है। (ख) मंत्रियों को अपने कार्यों के लिए विधायिका के सम्मुख नहीं जाना पड़ता है, इसलिए वे स्वविवेक का प्रयोग कर सकते हैं। (ग) उन्हें विधायिका द्वारा हटाने का भय नहीं रहता है।

(3) राजनीतिक दलबंदी के दुर्गुणों का अभाव- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत राजनीतिक दलों का उस प्रकार बोलबाला नहीं रहता है जिस प्रकार संसदीय शासन-प्रणाली में रहता है। इसलिए अध्यक्षात्मक शासन में राजनीतिक दलबंदी से उत्पन्न तनाव, संघर्ष, गुटबाजी तथा इस प्रकार की विषमताओं का अभाव रहता है।

(4) संकटकाल के लिए उपयुक्त- यह शासन प्रणाली संकटकाल के लिए उपयुक्त है। क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में निर्णय लेने का संपूर्ण अधिकार एक व्यक्ति यानी राष्ट्रपति में निहित रहता है। वह संकटकाल में अविलम्ब निर्णय लेकर इसका मुकाबला आसानी से कर सकता है।

(5) बहुदलीय पद्धतिवाले देशों के लिए उपयुक्त-अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली बहुदलीय पद्धति वाले देशों के लिए उपयुक्त है। ऐसा देखा गया कि अनेक दलों के रहने के कारण संसदीय शासन-प्रणाली में अनेक त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती है। फ्रांस के चतुर्थ गणतंत्र के पतन के पीछे बहुदलीय पद्धति था। भारत में बहुदलीय पद्धति के कारण संसदीय शासन-प्रणाली विवादास्पद बन गयी है।

(6) राष्ट्रीय एकता का समर्थक- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में संपूर्ण शासन संचालन का दायित्व राष्ट्रपति पर रहता है जिसका चुनाव देश की संपूर्ण जनता के द्वारा होता है। इसलिए उनमें राष्ट्रीय एकता का भाव प्रबल हो जाता है।

### 2.2.9. अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के दोष

तथापि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के कई दोष भी हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं-

(1) अनुत्तरदायी शासन-प्रणाली- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली एक अनुत्तरदायी शासन-व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं है। फलतः कार्यपालिका के स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होने का भय रहता है। इसीलिए एस्मिन के कहा है कि ''अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली स्वेच्छाचारी, अनुत्तरदायी एवं हानिकारक है।''

(2) कार्यपालिका तथा विधायिका में सहयोग का अभाव- इस शासन प्रणाली में कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका में सहयोग का अभाव रहता है जिसके कारण शासन- संचालन में अनेक अवरोध तथा अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन के प्रयासों के बाबजूद अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बन सका था क्योंकि अमरीकी सिनेट ने अनुमोदन नहीं किया था।

(3) जटिलता- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली एक जटिल शासन- व्यवस्था मानी जाती है। इसके अन्तर्गत संविधान के संशोधन में जटिलता रहती है जिसके कारण संशोधन कठिन होता है और इससे शासन-संचालन में कठिनाई उत्पन्न होती है।

(4) एक व्यक्ति पर अत्यधिक दायित्व- इस शासन प्रणाली में एक व्यक्ति पर अधिक कार्य-भार आ जाता है जिससे कभी-कभी काफी कठिनाई हो जाती है। इसके अतिरिक्त यदि राष्ट्रपति दुर्बल या अयोग्य हो जाय तो शासन में गलत निर्णय लिए जा सकते हैं तथा शासन-संचालन में गलत कदम उठाए जा सकते हैं।

(5) राजनीतिक दलों की भूमिका नहीं- अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राजनीतिक दलों की विशिष्ट भूमिका नहीं रहती है। राष्ट्रपति तथा व्यवस्थापिका के सदस्यों के निर्वाचन के बाद राजनीतिक दल की सक्रिय भूमिका नहीं रहती है।

(6) जनता की सहभागिता का कम अवसर- इस शासन-प्रणाली में जनता की सहभागिता का अवसर काफी सीमित है। किसी भी शासन-संचालन में जनता राजनीतिक दलों के माध्यम से ही भाग लेती है। लेकिन जब राजनीतिक दल ही सक्रिय नहीं हैं तो जनता की सहभागिता का अवसर स्वतः कम हो जाता है। अतः राजनीतिक प्रशिक्षण के दृष्टिकोण से अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली उपयुक्त नहीं मानी गयी है। यह प्रणाली अमेरिका को छोड़कर अन्यत्र लोकप्रिय नहीं हुई है। यही कारण है कि अधिकांश देशों ने इसकी अपेक्षा संसदीय शासन प्रणाली को ही मान्यता दी है।

**2.2.10. दोनों शासन प्रणाली में अन्तर**

कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की प्रकृति के आधार पर शासन-व्यवस्थाओं को संसदीय एवं अध्यक्षात्मक में बाँटा गया है। कुछ ऐसे भी राज्य हैं जहाँ की शासन-प्रणाली न तो पूर्णतः संसदीय है और न ही अध्यक्षात्मक। उन्हें मिश्रित प्रणाली या व्यवस्था कही जाती है। जहाँ अमेरिका, अर्जेण्टाइना, चीन, ब्राजिल, क्यूबा आदि देशों में अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली है, वहीं इंगलैंड, भारत, कनाडा, अफगानिस्तान, बर्मा, इजरायल, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में संसदीय शासन-प्रणाली अपनायी गयी है। दोनों शासन-प्रणालियों में अनेक मौलिक अन्तर पाये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) शक्तियों के पृथक्करण के दृष्टिकोण से- अध्यक्षात्मक शासन- प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण पर आधारित व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के क्षेत्र अलग-अलग कर दिए गए हैं और दोनों अपने-अपने क्षेत्र में ही काम करती हैं। कार्यपालिका के सदस्य विधायिका के सदस्य नहीं होते हैं।

जबकि संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत शक्तियों का पृथक्करण के स्थान पर शक्तियों का समन्वय रहता है। कार्यपालिका यानि मंत्रिमंडल के सदस्य विधायिका के सदस्य होते हैं और व्यवहार में दोनों मिल-जुलकर काम करते हैं। कार्यपालिका विधि-निर्माण के कार्य में भी भाग लेती है और दूसरी ओर व्यवस्थापिका कार्यपालिका के कार्यों में भी सहभागी होती है।

(2) उत्तरदायित्व का सिद्धांत- उत्तरदायित्व को लेकर भी दोनों शासन- प्रणालियों में अन्तर है। संसदीय शासन-प्रणाली में कार्यपालिका विधायिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। जबकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में न तो राष्ट्रपति और न ही उसके मंत्रिमंडल के सदस्य विधायिका के किसी सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(3) कार्यकाल की निश्चितता- इस आधार पर भी दोनों में अन्तर है। अध्यक्षीय शासन-प्रणाली में कार्यपालिका की अवधि निश्चित होती है। अमेरिका में राष्ट्रपति को महाभियोग के माध्यम से हटाया जा सकता है, जो अत्यधिक जटिल पद्धति है। इसके विपरीत संसदीय प्रणाली में कार्यकाल की निश्चितता नहीं रहती है। मंत्रिमंडल किसी भी समय अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा हटाया जा सकता है। व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के साधारण बहुमत द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित किया जा सकता है।

(4) कार्यपालिका के प्रधान की स्थिति के दृष्टिकोण से- अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत राज्याध्यक्ष वास्तविक प्रधान होता है। समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ उसी में निहित रहती हैं। वह

कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है। लेकिन संसदीय शासन-प्रणाली में दो प्रधान होते हैं- सांविधानिक प्रधान और वास्तविक प्रधान। राज्य का प्रधान केवल सांविधानिक प्रधान होता है। वास्तविक कार्यपालिका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। इंगलैंड तथा भारत में क्रमशः सम्राट् तथा राष्ट्रपति सांविधानिक प्रधान हैं, जबकि दोनों में वास्तविक प्रधान प्रधानमंत्री होते हैं।

(5) मंत्रिमंडल की बनावट के दृष्टिकोण से - इस दृष्टिकोण से भी दोनों शासन-प्रणालियों में अन्तर है। संसदीय शासन-प्रणाली में मंत्रिमंडल की बनावट का मूल आधार राजनीतिक है। प्रधानमंत्री प्रायः अपने दल के लोगों को ही मंत्रिमंडल में रखता है। सामान्यतः विधायिका के सदस्य ही मंत्रिमंडल में लिए जाते हैं। लेकिन अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राष्ट्रपति अपने मंत्रिमंडल में गैर-राजनीतिक व्यक्तियों को भी शामिल करता है। साथ ही मंत्रिमंडल के सदस्य विधायिका के सदस्य नहीं होते हैं।

(6) नियंत्रण के दृष्टिकोण से- नियंत्रण के दृष्टिकोण से भी दोनों शासन प्रणालियों में अन्तर है। संसदीय शासन-प्रणाली में विधायिका का कार्यपालिका पर नियंत्रण रहता है। व्यवस्थापिका के सदस्य मंत्रियों से प्रश्न पूछकर, सरकारी नीतियों पर वाद-विवाद कर, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव लाकर, कटौती, काम रोको एवं निन्दा का प्रस्ताव पारित कर कार्यपालिका पर नियंत्रण रखते हैं। साथ ही व्यवस्थापिका के प्रथम सदन को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर मंत्रिमंडल को अपदस्थ कर दे।

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में भी व्यवस्थापिका का नियंत्रण रहता है, परन्तु इस प्रकार प्रत्यक्ष ढ़ंग से नहीं। विधायिका कार्यपालिका के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं कर सकती है। बल्कि परोक्ष रूप से विधायिका का कार्यपालिका पर नियंत्रण रहता है। अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियों, सन्धियों आदि को कार्यान्वित करने के लिए सीनेट का अनुसमर्थन आवश्यक है।

इस प्रकार अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली अनुत्तरदायी शासन-प्रणाली है तथा इसके अन्तर्गत निरंकुशता का तत्व रहता है। इसके विपरीत, संसदीय शासन- प्रणाली उत्तरदायी शासन-प्रणाली है। इसके अन्तर्गत कार्यपालिका के निरंकुश होने का भय नहीं रहता है। अधिकांश विद्वान् लोकतंत्र की सुरक्षा के दृष्टिकोण से संसदीय शासन-प्रणाली को ज्यादा उपयुक्त मानते हैं। साथ ही अधिकांश देशों में संसदीय शासन-प्रणाली को ही मान्यता दी जा रही है।

### 2.2.11. इंगलैंड की शासन-प्रणाली

इंगलैंड संसदीय शासन-प्रणाली का आदर्श गृह कहा जाता है। इंगलैंड में संसदीय शासन-प्रणाली की सफलता का एक प्रबल कारण है कि यह प्रणाली थोंपी हुई नहीं है। यह एक विकसित प्रणाली है। इसका विकास इंगलैंड की राजनीतिक भूमि में धीरे-धीरे हुआ है। इसलिए इसे इंगलैंड की जनता सहज रूप से स्वीकार रही है। इंगलैंड की संसदीय प्रणाली के कार्यचालन के संबंध में कहा जा सकता है कि वहाँ यह प्रणाली सफलतापूर्वक काम कर रही है। इसके अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम, एक सशक्त विरोधी दल के कारण इंगलैंड में संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त व्यवहार में बहुत बड़ी सीमा तक लागू रहती है। यह सशक्त विरोधी दल न केवल सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखती है, वरन् सदैव एक विकल्प सरकार के रूप में तैयार रहती है। इंगलैंड में संसद या मंत्रिमंडल अभिसमय या परम्पराओं को झूठलाकर न तो जनमत के विरूद्ध काम कर सकते हैं और न कोई आदेश पारित कर सकते हैं। विधि- निर्माण के क्षेत्र में संसद लोकमत तथा स्थापित परम्पराओं एवं अभिसमयों की उपेक्षा नहीं कर सकती है। संसद का संपूर्ण

कार्य उत्तरदायित्व की भावना से सम्बद्ध रहता है। जबकि ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियमों को अवैध घोषित करने का अधिकार वहाँ की न्यायपालिका को नहीं है। सिद्धान्ततः ब्रिटिश संसद किसी भी प्रकार का कानून बना सकती है, संविधान में संशोधन कर सकती है। उसी प्रकार, एक ओर मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी है तो दूसरी ओर प्रधानमंत्री को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सम्राट् से सिफारिश कर कॉमन्स सभा को भंग करवा सकता है। अतः इंगलैंड में सैद्धान्तिक रूप से संसद की सर्वोच्चता को मान्यता दी गयी है, परन्तु व्यवहार में संसद कई दृष्टियों से मर्यादित है।

संसद को शक्तियाँ समर्पण करने के बाद से इंगलैंड का सम्राट संवैधानिक प्रधान हो गया है। वह स्वविवेक से कोई निर्णय नहीं लेता, वह जो कुछ भी करता है अपने मंत्रिमंडल के परामर्श से करता है। इंगलैंड में मंत्रिमंडल सर्वाधिक शक्तिशाली है। उसका प्रभाव कार्यकारिणी तथा विधायिनी क्षेत्र में समान रूप से है। प्रशासन के सभी अंगों पर तो उसका प्रभाव है ही, विधि निर्माण में भी उसका व्यापक प्रभाव है। वस्तुतः विधिनिर्माण का कार्य तो मंत्रिमंडल ही करता है। संसद तो मंत्रिमंडल द्वारा प्रस्तावित विधेयकों का अनुसमर्थन करती है। इस प्रकार इंगलैंड में शक्तियों का पृथक्करण नहीं होकर शक्तियों के समन्वय का सिद्धान्त है। संसद् और मंत्रिमंडल के बीच समन्वय और सहयोग का सम्बन्ध है। कॉमन्स सभा न केवल विधायी शक्तियों का केन्द्रबिन्दु है, बल्कि प्रशासन पर नियंत्रण रखने का इसका अधिकार अक्षुण्ण है। विश्व में यदि कहीं संसदीय लोकतंत्र को सफलता या लोकप्रियता मिली है तो उसमें इंगलैंड का नाम सर्वप्रथम है। वहाँ लिखित संविधान तो नहीं है, परन्तु संसदीय शासन- प्रणाली देश की राजनीतिक व्यवस्था की जड़ में समायी हुई है।

### 2.2.12. अमेरिका की शासन प्रणाली

जिस प्रकार इंगलैंड को संसदीय शासन-प्रणाली का आदर्श गृह समझा जाता है, उसी प्रकार अमेरिका अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का गृह माना जाता है। वहाँ राष्ट्रपति का चुनाव जनता के द्वारा होता है और वह वास्तविक कार्यपालिका भी है। अमेरिका में भी सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। सैद्धांतिक दृष्टि से अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का आधार शक्तियों का पृथक्करण है। परन्तु व्यवहार में वहाँ अवरोध और संतुलन का सिद्धान्त ज्यादा परिलक्षित और ज्यादा प्रमुख है। सैद्धान्तिक स्तर पर काँग्रेस, राष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय अलग-अलग गठित होते हैं तथा अलग-अलग कार्य करते हैं। तीनों एक-दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। व्यवहार में स्थिति ऐसी नहीं है। राष्ट्रपति या मन्त्रिमंडल के सदस्य यद्यपि काँग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होते, परन्तु राष्ट्रपति के कृत्यों पर कांग्रेस का नियंत्रण रहता है। राष्ट्रपति के द्वारा की गयी नियुक्तियों तथा सन्धियों पर सिनेट की स्वीकृति आवश्यक है। उसी प्रकार कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति की सहमति आवश्यक है। वह अनेक तरीकों से विधिनिर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार सैद्धान्तिक स्तर पर राष्ट्रपति और कांग्रेस एक-दूसरे से पृथक् रहने के बाबजूद एक-दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

अमेरिकी शासन-व्यवस्था की सर्वप्रमुख विशेषता है न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त। अमेरिका में न्यायपालिका, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका दोनों पर नियंत्रण रखती है। कांग्रेस के अधिनियम एवं राष्ट्रपति के आदेश यदि संविधान का अतिक्रमण या उल्लंघन करते हों तो सर्वोच्च न्यायालय उसे असांविधानिक घोषित कर सकता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्तियों के

पृथक्करण के स्थान पर ‘अवरोध और संतुलन’ का सिद्धान्त ज्यादा परिलक्षित तथा प्रभावी है। राष्ट्रपति कॉंग्रेस के प्रति उत्तरादायी नहीं रहने के बाबजूद सिनेट के नियंत्रण- क्षेत्र से परे नहीं है। तथापि अनेक परिवर्तनों के बाबजूद यह कहा जा सकता है कि अमेरिका के संविधान का स्वरूप अध्यक्षात्मक है, क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली की बुनियादी विशेषताएँ इसके अन्तर्गत विद्यमान है।

### 2.2.13. सोवियत शासन प्रणाली

वैसे तो सैद्धान्तिक रूप से सोवियत रूस में संसदीय व्यवस्था है, परन्तु व्यवहार में उसके स्वरूप के संबंध में निर्णय देना कठिन है। कई समीक्षकों के मतानुसार यह व्यवस्था न तो संसदीय है और न ही अध्यक्षात्मक है। यद्यपि सिद्धान्त और आकार से सोवियत रूस में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना की गयी है, परन्तु व्यवहार में सोवियत रूस की शासन-प्रणाली को संसदीय कहना उचित नहीं है। इसके कई कारण हैं, जो निम्न हैं-

(1) सोवियत रूस के संविधान के अनुसार सर्वोच्च सोवियत, जो उसकी विधायिका है, केवल सिद्धान्त में सर्वोपरि अंग है। व्यवहार में वह कम्युनिस्ट पार्टी के अधीन एक एजेन्सी मात्र है, जिसके निर्देश की उपेक्षा करके सर्वोच्च सोवियत कोई कानून नहीं बना सकता है।

(2) सोवियत रूस के मंत्रिमंडल के सदस्य सर्वोच्च सोवियत के सदस्य होते हैं तथा उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं, परन्तु सर्वोच्च सोवियत मंत्रिमंडल को अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर अपदस्थ नहीं कर सकता। साथ ही मंत्रिमंडल को सर्वोच्च सोवियत के प्रथम सदन को भंग करने का अधिकार नहीं है।

(3) सोवियत रूस में सर्वोच्च सोवियत के दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त हैं। इंगलैंड या भारत की प्रथम सदन द्वितीय सदन से ज्यादा शक्तिशाली नहीं है।

(4) सोवियत रूस में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी गयी है। मंत्रिमंडल और सर्वोच्च सोवियत एक-दूसरे के साथ सहयोग एवं सामंजस्य के साथ काम करते हैं। यहाँ मंत्रिमंडल के सामूहिक सिद्धांत को मान्यता नहीं दी गयी है।

(5) संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत राज्याध्यक्ष सांविधानिक प्रधान होता है और मंत्रिमंडल या प्रधानमंत्री वास्तविक प्रधान होता है। लेकिन सोवियत रूस में न तो राष्ट्रपति वास्तविक प्रधान है और न प्रधानमंत्री ही वास्तविक प्रधान है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ पार्टी के पौलिट ब्यूरो में निहित हैं।

इस प्रकार सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता कम्युनिस्ट पार्टी की प्रधानता है। पार्टी की भूमिका सर्वव्यापी है। जबकि अन्य देशों में सरकार और दल में स्पष्ट अन्तर है। दल का प्रशासन पर कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त, संसदीय शासन में दो या दो से अधिक दल होते हैं, जबकि सोवियत रूस में एक ही दल है। सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी सरकार के सभी अंगों पर नियंत्रण रखती है।

तथापि सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था को अध्यक्षात्मक शासन भी नहीं कहा जा सकता है और न ही फ्रांस तथा स्विट्जरलैंड की तरह यह संयुक्त या मिश्रित शासन-व्यवस्था का स्वरूप है। सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था अपने- आप में एक अनोखी शासन-व्यवस्था है जो न तो संसदीय है और न अध्यक्षात्मक है, जो न तो एकात्मक है और न पूर्ण संघात्मक है। वस्तुतः यह साम्यवादी व्यवस्था

के उपयुक्त नहीं है। लेकिन संविधान में दिए गए सिद्धान्तों के अनुसार सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था को संसदीय कहा जा सकता है।

### 2.2.14. फ्रांस की शासन प्रणाली

फ्रांस में चतुर्थ गणतंत्र के पतन के बाद 1958 ई. में पंचम् गणतंत्र के संविधान के संबंध में विद्वानों के बीच विचारणीय प्रश्न था कि फ्रांस का संविधान अध्यक्षात्मक है या संसदीय है। डोरोथी पिकल्स के अनुसार फ्रांस का संविधान दो विरोधी सिद्धान्तों का मिश्रण है, प्रथम सिद्धान्त गणतंत्रात्मक संसदीय शासन का है और द्वितीय सिद्धान्त अध्यक्षात्मक शासन का है। राज्य और शासन के अध्यक्ष अलग-अलग हैं। पिकल्स के शब्दों में ''फ्रांस का संविधान वर्णसंकर है, दो सांविधानिक सिद्धान्तों के मिश्रण का प्रयास है जिसके सह-अस्तित्व की संभावना की जाँच होनी अभी बाकी है।'' ब्रोगन ने भी इस मत का समर्थन किया।

फ्रांस के संविधान की उन विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक है जिनके आधार पर इसे संसदीय एवं अध्यक्षात्मक का मिश्रण कहा जा सकता है। पंचम् गणतंत्र में राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि की गयी है। राष्ट्रपति को सामान्य शक्तियों के अतिरिक्त कुछ वैयक्तिक एवं कुछ आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। राष्ट्रपति को मन्त्रियों को नियुक्त करने तथा उन्हें अपदस्थ करने का अधिकार प्राप्त है। पंचम् गणतंत्र में संसद को सीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संसद को संविधान में उल्लिखित विषयों पर ही कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। अन्य विषयों के संबंध में कार्यपालिका डिक्रियों के माध्यम से नियमों का निर्माण करती है।

फ्रांस के पंचम् गणतंत्र के अन्तर्गत मंत्रिमंडल के सदस्य संसद के सदस्य नहीं होते हैं, लेकिन संसद के प्रथम सदन, राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रीय सभा अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर मंत्रिमंडल को अपदस्थ कर सकती है। इस प्रकार यह व्यवस्था अमेरिका और ब्रिटेन दोनों से भिन्न है। अमेरिका में मंत्रिमंडल के सदस्य न तो काँग्रेस के सदस्य होते हैं और न ही उसके किसी सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इसके विपरीत, ब्रिटेन में मंत्रिमंडल के सदस्य संसद के सदस्य भी हैं और कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी भी। सामान्यतः संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत राज्य का अध्यक्ष प्रधानमंत्री के परामर्श पर संसद के प्रथम सदन को विघटित करता है। जबकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में राज्य या कार्यपालिका के प्रधान को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। फ्रांस में राष्ट्रीय सभा को विघटित करने का अधिकार राष्ट्रपति में निहित है। प्रधानमंत्री को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

फ्रांस में न तो पूर्णतया शक्तियों का पृथक्करण है और न ही ब्रिटेन या भारत की तरह शक्तियों के समन्वय के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। फ्रांस में राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष ढ़ंग से किया जाता है। अमेरिका तथा ब्रिटेन के विपरीत फ्रांस में न्यायपालिका को एक अलग तथा स्वतंत्र एजेन्सी नहीं माना गया है। इसे फ्रांस की प्रशासकीय शाखाओं में से एक माना गया है। उसी तरह फ्रांस में न तो द्विदल-पद्धति है और न दल-पद्धति का सुगठित रूप है। बहुदल-पद्धति फ्रांस के चतुर्थ गणतंत्र में मंत्रिमंडल के अस्थायित्व का सबसे प्रबल कारण थी। आज भी फ्रांस में बहुदल- पद्धति ही है।

अतः फ्रांस की शासन-व्यवस्था की उपरोक्त विचित्रताओं के कारण न तो इसे अध्यक्षात्मक कहना उचित होगा और न ही संसदीय कहना उचित होगा। यद्यपि पंचम् गणतंत्र के अन्तर्गत राष्ट्रपति की शक्तियों में विस्तार किया गया, लेकिन इसके बाबजूद इसमें संसदीय शासन की कुछ विशेषताएँ विद्यमान

हैं। इसीलिए निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि फ्रांस का संविधान न तो पूर्णतया अध्यक्षात्मक है और न ही पूर्णतया संसदीय। वस्तुतः फ्रांस में मिश्रित शासन-प्रणाली है।

**2.2.15. स्विस शासन -प्रणाली**

स्विट्जरलैण्ड की शासन-प्रणाली के संबंध में निश्चितरूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अध्यक्षात्मक है अथवा संसदीय है। यह दोनों के मिश्रण का अनूठा उदाहरण है। स्विट्जरलैंड में बहुल कार्यपालिका है। इसके संघीय परिषद् में सात सदस्य होते हैं जिनकी शक्तियाँ और स्थिति समान है। सभी सदस्यों को बारी-बारी से एक साल के लिए अध्यक्ष बनने का अवसर मिलता है। अध्यक्ष को कोई विशेष शक्ति एवं स्थिति प्रदान नहीं की गयी है। स्विट्जरलैंड की संघीय परिषद् के सदस्य वहाँ की विधायिका, संघीय सभा के द्वारा निर्वाचित होते हैं। पर वह संघीय सभा का सदस्य नहीं होता है। संघीय परिषद् की कार्यावधि अमेरिका के राष्ट्रपति की कार्यावधि की तरह निश्चित है। वे चार वर्षों के लिए निर्वाचित होते हैं। संघीय सभा उन्हें अविश्वास के प्रस्ताव के द्वारा नहीं हटा सकती है। स्विट्जरलैंड की संघीय परिषद् में दलगत एकता का अभाव रहता है। बिना किसी दल का सदस्य हुए भी कोई व्यक्ति संघीय परिषद् का सदस्य हो सकता है। संघीय परिषद् के सदस्य को संघीय सभा की कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है। वे भाग लेते हैं, वाद-विवाद में भी शामिल होते हैं परन्तु उन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका न तो अमेरिका की अध्यक्षात्मक प्रणाली की तरह है और न ब्रिटेन और भारत की संसदीय शासन-प्रणाली की तरह है। अमेरिका के राष्ट्रपति प्रत्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, लेकिन स्विट्जरलैंड में संघीय परिषद् संघीय सभा के द्वारा निर्वाचित होती है। यद्यपि दोनों की कार्यावधि निश्चित है, तथापि वह राष्ट्रपति की तरह स्वतंत्र नहीं है। स्विस कार्यपालिका संघीय सभा के नियंत्रण एवं निदेशन में काम करती है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने स्विट्जरलैंड की संघीय परिषद् को संघीय सभा की 'कार्यकारिणी समिति' कहा है। यह ब्रिटेन की कार्यपालिका से भी भिन्न है। स्विस संघीय परिषद् और ब्रिटिश मंत्रिमंडल में अनेक असमानताएँ पायी जाती हैं। ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में एक ही दल के सदस्य रहते हैं, जबकि स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों के लिए एक दल का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। ब्रिटेन के मंत्रिमंडल के सदस्य सामूहिक रूप से विधायिका के प्रथम सदन, कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं जबकि स्विट्जरलैंड में संघीय परिषद् के सदस्य संघीय विधायिका के किसी भी सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी नहीं होते हैं। यहाँ तक कि ब्रिटेन में मंत्रिमंडल का नेता, प्रधानमंत्री कॉमन्स सभा का भी नेता होता है। मंत्रिमंडल विधि निर्माण में भाग लेता है। व्यवहार में मंत्रिमंडल कॉमन्स सभा को नियंत्रित एवं संचालित करता है। इसके विपरीत, स्विट्जरलैंड में संघीय परिषद् संघीय सभा से नियंत्रित होती है और उसके निदेशन में काम करती है।

इस प्रकार स्विट्जरलैंड में न तो अमेरिका के शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है और न ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली के सिद्धान्त, यानी कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच समन्वय को अपनाया गया है। इन्हीं कारणों से ब्राइस ने स्विट्जरलैंड की शासन-प्रणाली को अनूठी शासन-प्रणाली कहा है। स्विट्जरलैंड ही एक ऐसा देश है जहाँ प्रत्यक्ष लोकतंत्र के उपकरण सफल हुए हैं। अतः अपनी विशिष्ट राजनीतिक स्थिति के कारण स्विट्जरलैंड ब्रिटिश शासन- व्यवस्था को अपनाने में असमर्थ था। यही कारण है कि स्विट्जरलैंड के संविधाननिर्माताओं ने जिस प्रणाली को अपनाया वह

निश्चय ही अमेरिका और ब्रिटेन की शासन- प्रणालियों के बीच की प्रणाली है जिसमें दोनों शासन-प्रणालियों की विशेषताएँ एवं तत्व आंशिक रूप से सम्मिलित हैं। अतः यह भी मिश्रित शासन-प्रणाली ही है।

**2.2.16. निष्कर्ष**

इस प्रकार कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच संबंध के आधार पर शासन- प्रणाली को संसदीय एवं अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के रूप में निरूपित किया गया। यदि कार्यपालिका तथा विधायिका संयुक्त हो तथा कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी हो तो यह संसदीय शासन कहलाता है। इस शासन में मंत्रिमंडल संसद तथा इसके माध्यम से मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन स्थिर द्वि- दलीय व्यवस्था वाले देश में सुचारू रूप से चलता है जहाँ एकदल शासन संचालन करता है तथा दूसरा दल 'वफादार विपक्ष' की भूमिका अदा करता है। यह बहुदलीय व्यवस्था तथा दायित्वहीन विपक्ष की बुराइयों से भरे देश में असफल हो जाता है।

अध्यक्षात्मक शासन शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित है। इस शासन में प्रमुख कार्यकारी राज्य का वास्तविक अध्यक्ष होता है। वह लोगों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है तथा वह विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। लेकिन यह सच है कि आधुनिक जगत् में जिस प्रकार संघीय शासन प्रणाली का विशुद्ध रूप नहीं मिल सकता है, उसी प्रकार आज किसी भी देश में संसदीय या अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली का विशुद्ध रूप नहीं मिल सकता है। अमेरिका में दो सौ वर्ष पूर्व स्थापित एवं संगठित अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के स्वरूप में आमूल परिवर्तन हुए हैं। तथापि अमेरिका के संविधान का स्वरूप अध्यक्षात्मक है, क्योंकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली की बुनियादी विशेषताएँ इसके अन्तर्गत विद्यमान हैं।

यद्यपि संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में गुण-दोष हैं तथापि कभी- कभी यह विवाद उत्पन्न हो जाता है कि दोनों में कौन सी प्रणाली या व्यवस्था बेहतर है। इस संबंध में अनेक अंग्रेज लेखक एकमत होकर संसदीय शासन को श्रेष्ठ मानते हैं, जबकि अमरीकी लेखक अध्यक्षात्मक शासन को बेहतर कहते हैं। अतः इस संबंध में हम कह सकते हैं कि शासन के संसदीय और अध्यक्षात्मक दोनों रूप ऐसे लाभों से युक्त है जिनकी निरन्तरता अपेक्षित है तथा प्रत्येक रूप में उन प्रचलनों का लाभ उठाकर सुधार किया जा सकता है जो दूसरे में सफल सिद्ध हुए हैं।

**2.2.17. कठिन शब्दावली**

(1) सांविधानिक - संविधान के अनुसार
(2) गठबंधन- समान उद्देश्य के लिए दोस्ती करना
(3) निरंकुश - जिस पर अंकुश या नियंत्रण न हो
(4) पृथक्करण - सबों में समुचित बँटवारा करना
(5) महाभियोग- विशेष अभियोग या आरोप पर निर्णय - प्रक्रिया
(6) अनुत्तरदायी - जबाबदेही विहीन
(7) राज्याध्यक्ष - राष्ट्र का प्रधान

**2.2.18. अभ्यास प्रश्न**

**वैकल्पिक प्रश्न**

(1) कौन सी विशेषता संसदीय शासन - प्रणाली के नहीं हैं?

(क) कार्यपालिका एवं विधायिका में संबंध

(ख) राज्याध्यक्ष सांविधानिक प्रधान

(ग) शक्तियों का पृथक्करण

(घ) मंत्रिमंडल की राजनीतिक एकता

(2) कौन सी विशेषता अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के नहीं हैं?

(क) शक्तियों का पृथक्करण

(ख) राज्याध्यक्ष वास्तविक प्रधान

(ग) प्रधानमंत्री का नेतृत्व

(घ) कार्यपालिका की कार्यावधि निश्चित

(3) ब्रिटेन में कौन सी शासन व्यवस्था है?

(क) अध्यक्षात्मक (ख) संसदात्मक या संसदीय

(ग) मिश्रित शासन (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(4) अमेरिका में कौन सी शासन व्यवस्था है?

(क) अध्यक्षात्मक (ख) संसदीय

(ग) मिश्रित व्यवस्था (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(5) भारत में कौन सी शासन व्यवस्था है?

(क) मिश्रित (ख) संसदीय

(ग) अध्यक्षात्मक (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(6) मिश्रित शासन व्यवस्था कहाँ है?

(क) भारत (ख) सोवियत रूस

(ग) स्विट्जरलैंड (घ) ब्रिटेन

(7) फ्रांस में कौन सी शासन-व्यवस्था है?

(क) अध्यक्षात्मक (ख) मिश्रित

(ग) संसदीय (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(8) सोवियत रूस में कौन सी शासन-व्यवस्था है?

(क) मिश्रित (ख) संसदीय

(ग) अध्यक्षात्मक (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

उत्तर- (1) ग (2) ग (3) ख (4) क (5) ख (6) ग (7) ख (8) ख

**लघु उत्तरीय प्रश्न-**

(1) संसदीय शासन-प्रणाली की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

(2) अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

(3) संसदीय एवं अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के बीच मुख्य अन्तर बताएँ।

(4) मिश्रित शासन व्यवस्था किसे कहते हैं?

(5) स्विस कार्यपालिका के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

(6) संसदीय शासन-प्रणाली के दोषों का उल्लेख करें।

(7) अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के गुणों का उल्लेख करें।

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-**

(1) संसदीय शासन की मुख्य विशेषताएँ क्या है? इसके गुण-दोषों का वर्णन करें।

(2) अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली की विशेषताओं तथा उसके गुण-दोषों का उल्लेख करें।

(3) संसदीय एवं अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के बीच अन्तर स्पष्ट करें तथा उनके सापेक्ष गुण-दोषों का उल्लेख करें।

(4) सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप क्या है? उल्लेख करें।

(5) 'स्विस संघीय कार्यपालिका न तो संसदात्मक है और न अध्यक्षात्मक' इस कथन की व्यवस्था करें।

(6) 'फ्रांस का संविधान संसदीय एवं अध्यक्षात्मक दोनों शासन-प्रणालियों के तत्वों का सम्मिश्रण हैं।' टिप्पणी करें।

(7) अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के स्वरूप का वर्णन करें।

(8) इंगलैंड अथवा ब्रिटेन में संसदीय शासन-प्रणाली के स्वरूप एवं कार्यचालन का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत करें।

## 2.2.19. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद डॉ. मणि शंकर, तुलनात्मक राजनीति, भारती भवन प्रकाशन, पटना, 1986, पृ0 सं0 117-138
2. जैन पुखराज एवं जौहरी जे0सी0, राजनीति विज्ञान, एस0 बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, आगरा, 2013, पृ0सं0 131-156
3. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
5. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## इकाई-3 : शासन के प्रकार : एकात्मक तथा संघात्मक शासन प्रणाली

**इकाई की रूपरेखा**

**2.3.1. उद्देश्य**
**2.3.2. एकात्मक शासन का अर्थ**
**2.3.3. विशेषताएँ**
**2.3.4. गुण**
**2.3.5. दोष**
**2.3.6. संघात्मक शासन का अर्थ**
**2.3.7. विशेषताएँ**
**2.3.8. गुण**
**2.3.9. दोष**
**2.3.10. संघात्मक शासन के निर्माण एवं सफलता के लिए शर्त्त**
**2.3.11. एकात्मक शासन एवं संघात्मक शासन के बीच अन्तर**
**2.3.12. अमरीकी संघीय व्यवस्था**
**2.3.13. स्विस संघीय व्यवस्था**
**2.3.14. सोवियत रूस में संघात्मक शासन**
**2.3.15. भारतीय संघीय व्यवस्था**
**2.3.16. निष्कर्ष**
**2.3.17. कठिन शब्दावली**
**2.3.18. अभ्यास प्रश्न**
**2.3.19. संदर्भ ग्रंथ सूची**

### 2.3.1. उद्देश्य

- एकात्मक शासन के अर्थ एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- उसके गुण-दोषों को समझ सकेंगे।
- संघात्मक शासन के अर्थ एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- उसके गुण-दोषों को समझ सकेंगे।
- संघात्मक शासन के निर्माण एवं सफलता के लिए आवश्यक शर्तों को समझ सकेंगे।
- एकात्मक एवं संघात्मक शासन के बीच अन्तर को समझ सकेंगे।
- विश्व के अन्य देशों की संघीय व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- भारतीय संघीय व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

### 2.3.2. एकात्मक शासन का अर्थ

शक्तियों के विभाजन के आधार पर शासन-प्रणाली के दो रूप होते हैं- एकात्मक शासन एवं संघात्मक शासन। एकात्मक शासन उस शासन को कहते हैं जिसके अन्तर्गत शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ एक ही सरकार में निहित हो, जिसे केन्द्रीय शासन कहते हैं। एकात्मक शासन के अन्तर्गत केन्द्र सरकार होती है जिसके अधीन कई क्षेत्रीय एवं स्थानीय सरकारें होती हैं। इन सरकारों का केन्द्र शासन से स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है। डॉ0 फाइनर के अनुसार, ''एकात्मक शासन वह है जिसमें शासन-सत्ता एवं शक्ति एक केन्द्र में निहित रहती है तथा जिसकी इच्छा एवं अभिकर्त्ता सम्पूर्ण क्षेत्र में विधिवत् सर्वशक्तिमान होते हैं।'' डायसी ने कहा है कि ''केन्द्रीय शक्ति के द्वारा सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग किया जाना ही एकात्मक शासन है।'' उसी प्रकार गार्नर ने भी कहा है कि ''एकात्मक शासन वह शासन-प्रणाली है जिसमें संविधान के द्वारा शासन की सभी शक्तियाँ शासन के एक अथवा एक से अधिक अंगों को सौंप दी जाती हैं तथा जिनसे स्थानीय अपना प्राधिकार या अपनी स्वायत्तता ग्रहण करती है।''

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि एकात्मक शासन ने शासन की समस्त शक्तियों का अधिकारी केन्द्र सरकार होती है और केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार सम्पूर्ण देश का शासन संचालन होता है। इसके अलावे देश की शासन-प्रक्रियाओं में संलग्न अंग एवं अभिकर्त्ताएँ केन्द्र सरकार के अधीन उसके आदेशानुसार काम करती हैं। इस प्रकार एकात्मक शासन में केन्द्र तथा प्रान्तों में वैधानिक दृष्टि से शक्तियों का कोई विभाजन नहीं होता है बल्कि सारी शक्तियाँ केन्द्र के पास ही होती है। यह केन्द्रीय सरकार की इच्छा पर निर्भर है कि व्यवहार में भी समस्त शक्तियों का वह स्वयं ही प्रयोग करे अथवा प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने की दृष्टि से कुछ शक्तियाँ स्थानीय सरकारों को दे दे। वर्तमान में इंगलैंड, जापान, नार्वे, स्वीडेन, हॉलैण्ड, बेल्जियम, इटली, फ्रांस आदि राज्यों में एकात्मक शासन है।

### 2.3.3 एकात्मक शासन की विशेषताएँ

एकात्मक शासन की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं-

(1) एक ही सरकार- एकात्मक शासन के अन्तर्गत एक ही सरकार की व्यवस्था रहती है। इसके अन्तर्गत केवल केन्द्र सरकार का अस्तित्व रहता है।

(2) शक्तियों का विभाजन नहीं- एकात्मक शासन में शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था नहीं रहती है। समस्त शक्तियाँ एक ही जगह, केन्द्र सरकार में निहित रहती हैं। क्षेत्रीय तथा स्थानीय सरकारों का स्वतंत्र अस्तित्व या प्राधिकार नहीं होता है।

(3) संविधान में संशोधन की सरलता- संविधान में संशोधन की सरलता एकात्मक शासन की एक मुख्य विशेषता है।

(4) इकहरी नागरिकता- चूँकि एकात्मक शासन में एक ही सरकार होती है इसलिए नागरिकता भी इकहरी होता है।

### 2.3.4. गुण

एकात्मक शासन के निम्नलिखित मुख्य गुण हैं-

(1) राष्ट्रीय एकता- एकात्मक शासन का सबसे बड़ा गुण है राष्ट्रीय एकता। संपूर्ण देश में एक शासन-विधान, एक संविधान तथा सारे देश के लिए एक प्रकार के नियम और नीति होने के कारण राष्ट्रीय एकता बनी रहती है।

(2) शासन की सरलता- शासन-संचालन एक स्तर पर होने के कारण शासकीय प्रक्रिया में सरलता रहती है। एक संविधान, एक नीति तथा एक प्रकार की नियम-व्यवस्था रहने के कारण शासन-संचालन की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

(3) प्रभावी एवं दृढ़ शासन-  एक स्तर पर शासन-संचालन होने के कारण एकात्मक शासन ज्यादा सुदृढ़ तथा प्रभावी होता है। केन्द्र सरकार संपूर्ण देश में प्रभावकारी ढ़ंग से अपना निर्णय लागू कर सकती है।

(4) प्रशासकीय एकरूपता- एकात्मक शासन की सबसे बड़ी खूबी प्रशासकीय एकरूपता है। देश के सभी क्षेत्रों, सभी स्थितियों तथा सभी नागरिकों के लिए कानून तथा शासकीय व्यवस्था एक प्रकार की होती है।

(5) संकटकाल के लिए उपयुक्त- एकात्मक शासन संकटकाल के लिए उपयुक्त है। क्योंकि संकटकाल में किसी विषय पर अविलम्ब निर्णय लेने की जरूरत होती है। अतः एक स्थान से निर्णय लिए जाने के कारण यह शासन प्रभावकारी ढ़ंग से संकटकाल की चुनौतियों का मुकाबला कर सकता है।

(6) वैदेशिक मामले में प्रभावी- वैदेशिक मामला अति संवेदनशील विषय है। इस क्षेत्र में कई स्तरों पर निर्णय लेने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। जबकि एकात्मक शासन में केन्द्र सरकार द्वारा निर्णय लिए जाने के कारण सही निर्णय लेने की ज्यादा संभावना रहती है।

(7) मितव्ययिता- एकात्मक शासन कम खर्चीली व्यवस्था है। एक स्तर पर शासन- संचालन होने से सरकारी तंत्र पर कम खर्च होता है।

(8) संघर्ष का अभाव- एकात्मक शासन में शासन-व्यवस्था एक ही स्तर पर संचालित होता है जिससे संघर्ष की आशंका नहीं रहती है। स्थानीय एवं क्षेत्रीय सरकारें केन्द्र सरकार के अधीन काम करती हैं, इसलिए संघर्ष की संभावना नहीं रहती है।

### 2.3.5. दोष

तथापि एकात्मक शासन के अनेक दोष भी हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) निरंकुशता का भय- एकात्मक शासन के अन्तर्गत शासन की समस्त शक्तियाँ केन्द्र सरकार में निहित होने के कारण केन्द्र सरकार के निरंकुश हो जाने का भय बना रहता है।

(2) कार्यकुशलता का अभाव- एकात्मक शासन में केन्द्र सरकार पर अत्यधिक कार्य-बोझ रहता है जिसके कारण सभी कार्यों का कुशलतापूर्वक निष्पादन असंभव हो जाता है। एक ही स्तर से शासन-संचालन होने के कारण शासन में कार्यकुशलता की कमी हो जाती है।

(3) नौकरशाही का शासन- एकात्मक शासन में नौकरशाही की प्रधानता बनी रहती है। एक ही स्तर पर शासन-संचालन होने से निर्वाचित प्रतिनिधि भाग नहीं ले पाते हैं। जिसके कारण शासन का भार नौकरशाही पर चला आता है। नौकरशाही लोकतंत्र के लिए खतरनाक सिद्ध होती है।

(4) स्थानीय स्वशासन में कमी- एकात्मक शासन के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर स्वशासन का विकास नहीं हो पाता है। स्थानीय संस्थाएँ केन्द्रीय सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में काम करती हैं। उनको अपेक्षित स्वायत्तता नहीं प्राप्त हो पाती है।

(5) जनसहभागिता का सीमित क्षेत्र- एकात्मक शासन में जनता की सहभागिता का क्षेत्र अत्यंत सीमित होता है। इसके अन्तर्गत शासन-संचालन एक ही स्थान से होता है, जिसके कारण जनता की सहभागिता काफी कम हो पाती है जिससे जनता की उदासीनता बढ़ती है।

(6) बड़े राज्य के लिए अनुपयुक्त- एकात्मक शासन बड़े राज्यों के लिए अनुपयुक्त है। भारत जैसे विशाल देश में एकात्मक शासन सफल नहीं हो सकता है।

### 2.3.6. संघात्मक शासन का अर्थ

संघीय शासन, शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत एक नवीन देन है। संघात्मक व्यवस्था आधुनिक युग की देन है। वस्तुतः इसका प्रारम्भ 1787 में अमेरिका के संविधान की रचना के साथ हुआ है। एकात्मक शासन के विपरीत संघात्मक शासन में दोहरी शासन-व्यवस्था रहती है, एक संघ की सरकार और दूसरी इकाइयों की सरकारें। संघात्मक शासन में दो स्तरों पर शासन का संचालन होता है। संघात्मक शासन की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। डायसी के अनुसार, ''संघात्मक राज्य एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता तथा राज्य के अधिकारों के साथ समन्वय स्थापित करना है।'' फाइनर के अनुसार, ''संघीय राज्य वह राज्य है जिसमें सत्ता और शक्ति का कुछ भाग स्थानीय क्षेत्रों में निहित हो तथा दूसरा भाग स्थानीय क्षेत्रों द्वारा संगठित केन्द्रीय संस्था में निहित हो।'' हैमिल्टन के मतानुसार, ''संघ राज्यों का एक ऐसा समुदाय है जो नये राज्यों का निर्माण करता है।'' संघात्मक शासन की व्यापक परिभाषा गार्नर ने दिया है। उसके अनुसार ''संघात्मक शासन वह पद्धति है जिसमें एक ही संप्रभुसत्ता के अधीन केन्द्रीय एवं स्थानीय सरकारें संगठित होती हैं और जो संसद् के कानून के अन्तर्गत अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोच्च होती हैं।''

इस प्रकार इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि संघीय शासन वह राजनीतिक योजना है जिसके अन्तर्गत शासन का संचालन दो स्तरों पर होता है तथा जिसमें केन्द्रीय सत्ता के साथ-साथ स्थानीय या क्षेत्रीय स्वायत्तता दोनों का सामंजस्य होता है। वर्तमान समय में संयुक्त राज्य अमरीका, भारत, कनाडा, स्विट्ज़रलैंड और सोवियत रूस आदि राज्यों में संघात्मक शासन ही है।

### 2.3.7. विशेषताएँ

संघात्मक शासन-प्रणाली के चार आधारभूत लक्षण या विशेषताएँ हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) दोहरे शासन एवं दोहरी नागरिकता की व्यवस्था- संघात्मक शासन में दो स्तरों पर शासन का संचालन होता है। केन्द्रीय स्तर पर इसे संघ सरकार या केन्द्र सरकार के नाम से जानते हैं। दूसरे स्तर पर इकाइयों की सरकारें होती हैं, जिन्हें राज्यों की सरकार या प्रान्तीय सरकार के नाम से जानी जाती है। साथ ही नागरिकों को दोनों स्तरों की नागरिकता प्राप्त होती है, जिसे दोहरी नागरिकता कहते हैं।

(2) शक्तियों का विभाजन- संघात्मक शासन के अन्तर्गत शक्तियों का विभाजन होता है। समस्त शासकीय शक्तियाँ संघ और इकाइयों के बीच बँटी रहती हैं और अपने-अपने क्षेत्र में दोनों को

विधिनिर्माण करने तथा स्वतंत्र रूप से शासन-संचालन करने का अधिकार होता है। शक्तियों का विभाजन संविधान के द्वारा किया जाता है।

(3) लिखित, कठोर एवं सर्वोच्च संविधान- संघात्मक शासन में संविधान लिखित, कठोर एवं सर्वोच्च होता है। संघ एवं राज्य तथा शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियाँ तथा उनके कार्यों का विवरण संविधान में उल्लिखित होता है। संविधान की सर्वोच्चता के कारण उसका कठोर होना स्वाभाविक है।

(4) स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका- संघात्मक शासन-प्रणाली में संघ और राज्यों की अलग-अलग शासन-व्यवस्थाएँ होने के कारण दोनों के बीच संघर्ष की संभावना बनी रहती है। इसीलिए एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका आवश्यक होता है, जो संघ और राज्यों के आपसी मतभेद और संघर्ष का फैसला निष्पक्ष होकर कर सके।

### 2.3.8. गुण

संघात्मक शासन के निम्नलिखित प्रमुख गुण हैं-

(1) राष्ट्रीय एकता एवं क्षेत्रीय स्वतंत्रता में सामंजस्य- संघात्मक शासन का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता तथा क्षेत्रीय स्वतंत्रता में समुचित सामंजस्य स्थापित होता है। डायसी ने भी कहा है कि ‘‘संघात्मक शासन का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता तथा क्षेत्रीय स्वायत्तता में सामंजस्य प्राप्त करना है।’’

(2) लोकतंत्र के लिए आवश्यक- संघात्मक शासन लोकतंत्र की रक्षा के लिए आवश्यक है। संघीय शासन का आधार है शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। विकेन्द्रीकरण से लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होती हैं तथा लोकतंत्र सबल और स्वस्थ होता है।

(3) कार्यकुशलता में वृद्धि- संघात्मक शासन में शासनयंत्र कई स्तरों पर बँटे रहने के कारण किसी एक स्तर पर कार्यभार कम हो जाता है और विभिन्न अंगों की कार्य कुशलता बढ़ जाती है तथा काम सुचारू रूप से होता है।

(4) निरंकुशता का भय नहीं- संघीय शासन-प्रणाली में निरंकुशता का भय नहीं रहता है। एक बिन्दु या एक स्तर पर शासकीय शक्तियों के केन्द्रित नहीं होने के कारण सरकार के निरंकुश होने का भय नहीं रहता है।

(5) बड़े राज्यों के लिए उपयुक्त- संघात्मक शासन बड़े राज्यों के लिए ज्यादा उपयुक्त है। भारत, रूस, अमेरिका जैसे बड़े राज्यों में एक स्तर से शासन-संचालन कर देश में सही व्यवस्था लागू नहीं हो सकती है। इसीलिए बड़े देशों के लिए यह हितकर एवं उपयुक्त है।

(6) जनसहभागिता का व्यापक अवसर- संघात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत जनता को शासन की प्रक्रियाओं में भाग लेने का व्यापक अवसर मिलता है। कई स्तरों पर शासन-संचालन होने से जनता को सहभागिता के अनेक अवसर मिलते हैं। इसके कारण जनता में राजनीतिक चेतना आती है और शासन तथा राष्ट्र के प्रति उनकी भक्ति बढ़ती है।

(7) स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा- सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण संघात्मक शासन में राज्यों की सरकारों को तो अपने क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त होती ही है, साथ ही स्थानीय संस्थाओं को भी स्वशासन का समुचित अवसर मिलता है।

**2.3.9. दोष**

एकात्मक शासन-प्रणाली की तरह संघात्मक शासन के भी दोष हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) कमजोर शासन- संघात्मक शासन कमजोर शासन होता है। इसके अन्तर्गत शासकीय सत्ता कई स्तरों पर बँटी रहती है जिसके कारण निर्णय लेने का अधिकार किसी एक सरकार को नहीं रहता है। फलतः शासन कमजोर सिद्ध होता है।

(2) खर्चीली शासन-व्यवस्था- संघात्मक शासन एक खर्चीली शासन- व्यवस्था है। दो स्तरों पर शासन-संचालन होने के कारण दोहरा शासन-यंत्र रहता है तथा हर क्षेत्र में दोहरी शासन-व्यवस्था करनी पड़ती है। जिसके फलस्वरूप शासन पर अनावश्यक खर्च बढ़ जाता है।

(3) संकटकाल के लिए अनुपयुक्त- संघीय शासन संकटकाल के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होता है। संकटकाल में अविलम्ब निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, जिसके लिए शासन-संचालन एक ही स्तर पर होना अनिवार्य है। लेकिन संघात्मक शासन में दोहरी शासन-व्यवस्था रहने के कारण निर्णय लेने में विलम्ब होना स्वाभाविक है। इसीलिए इसे संकटकाल के लिए अनुपयुक्त कहा गया है।

(4) संघर्ष की संभावना- संघीय शासन में दोहरी शासन-व्यवस्था के कारण संघ और इकाइयों तथा आपस में इकाइयों के बीच मतभेद और संघर्ष की पूरी संभावना रहती है। जिसके कारण शासन-यंत्र की दक्षता और कार्यकुशलता में कमी आ जाती है।

(5) राष्ट्रीय एकता को खतरा- संघात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता को खतरा रहता है। क्योंकि प्रत्येक इकाई अपने-अपने क्षेत्र के बारे प्राथमिकता के साथ सोचती है और तदनुसार वहाँ की सरकार शासन करती है। जिससे राष्ट्रीय एकता को स्वाभाविक रूप से खतरा बढ़ता है। इसीलिए गेटेल ने कहा है कि ''संघीय शासन-प्रणालीवाले देशों में केन्द्र सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों के बीच वैमनस्य का खतरा बना रहता है।''

(6) उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई- संघात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत किसी गलती या किसी उपेक्षा के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकार एक- दूसरे पर दोषारोपण करते हैं। जिससे आम जतना के लिए कभी-कभी इसके कारण उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई होती है।

(7) वैदेशिक नीति-निर्धारण में दुर्बलता- सामान्यतः वैदेशिक नीति-निर्धारण में सम्पूर्ण देश की राजनीतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक स्थितियों को ध्यान में रखना अनिवार्य होता है। दोहरी शासन-व्यवस्था के कारण इन स्थितियों पर अलग-अलग शासन का अलग-अलग नियंत्रण एवं मत रहता है। जिसके कारण वैदेशिक नीति-निर्धारण में कठिनाई होती है। के0सी0 ह्वीयर के मतानुसार, ''संघवाद और उत्साहपूर्ण वैदेशिक नीति साथ-साथ नहीं चल सकती।''

(8) शासन की जटिलता-संघीय शासन में शासन की जटिलता रहती है। दोहरी सरकारें, दो प्रकार के कानून, दो संविधान, दोहरी नागरिकता आदि के कारण शासन- यंत्र में जटिलता स्वाभाविक है। इसके कारण अनेक महत्वपूर्ण समस्याएँ बिना हल के रह जाती है।

(9) राज्यों के संघ से अलग हो जाने का भय-संघात्मक शासन में इकाइयों का संघात्मक संरचना से अलग होने का भय सदा बना रहता है। संघ और इकाइयों के बीच संघर्ष या तनाव होने पर इकाइयों के अलग होने की आशंका रहती है। गिलक्राइस्ट का कथन है कि ''एक इकाई का राज्य को छोड़ना एकात्मक शासन की अपेक्षा संघात्मक शासन में अधिक आसान है।''

**2.3.10. संघात्मक शासन के निर्माण एवं सफलता के लिए शर्त**

प्रत्येक शासन-व्यवस्था एक विशेष पृष्ठभूमि में काम करती है, इसलिए उसकी सफलता के लिए कुछ आवश्यक शर्त्तें आवश्यक होती हैं। संघात्मक शासन की सफलता भी कुछ विशेष शर्तों पर निर्भर करती हैं जिसका उल्लेख आवश्यक है एवं जो निम्नलिखित हैं-

(1) भौगोलिक समीपता- संघात्मक शासन के लिए भौगोलिक समीपता उसकी सफलता के लिए एक अनिवार्य शर्त्त है। संघ-निर्माण के लिए या संघ की सफलता के लिए संघ की विभिन्न इकाइयों के बीच सान्निध्य या समीपता आवश्यक है। अगर इकाइयां एक-दूसरे से बहुत अधिक दूरी पर हों तो संघ की सफलता संदेहात्मक हो जाएगी। भौगोलिक समीपता के कारण उनके बीच एकता की भावना भी पनपेगी तथा प्रशासन में भी सुविधा होगी।

(2) भाषा, संस्कृति, धर्म तथा हितों की एकता- संघ निर्माण तथा उसकी सफलता के लिए भाषा, संस्कृति, धर्म तथा हितों की एकता एक आवश्यक शर्त्त है। आज के युग में यह अनिवार्य शर्त्त नहीं है। भारत में भाषा, संस्कृति और धर्म में विविधता के बाबजूद संघ का निर्माण हुआ और वह सफलतापूर्वक काम कर रहा है। तथापि यह कहना युक्तिसंगत है कि यदि किसी देश में भाषा, धर्म और संस्कृति में एकता पायी जाती हो तो वहाँ संघ-शासन अधिक सफल और स्थायी होगा। जे0एस0मिल ने भी इसका समर्थन किया है।

(3) सामाजिक प्रथाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं में समानता- संघ के निर्माण तथा सफलता में सामाजिक प्रथाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं की समानता बहुत हद तक उत्तरदायी है। एक प्रकार की राजनीतिक संस्थाएँ संघ की सफलता के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि प्रायः सभी संघात्मक शासन-व्यवस्थाओं के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों, दोनों स्तरों पर गठित सरकारों का स्वरूप एक ही प्रकार का होता है। उदाहरणस्वरूप अमेरिका में केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली अपनायी गयी है और भारत में केन्द्र और राज्यों में संसदीय शासन-प्रणाली है।

(4) इकाइयों के बीच समानता- संघात्मक शासन के स्थायित्व के लिए इकाइयों के बीच समानता आवश्यक है। यही कारण है कि अमेरिका के संविधान में प्रत्येक राज्य को अमरीकी उच्च सदन सिनेट में दो-दो सदस्य भेजने का अधिकार प्राप्त है। भारत में आबादी तथा क्षेत्रफल के अनुसार राज्य सभा में इकाइयों का प्रतिनिधित्व दिया गया है। प्रतिनिधित्व की समानता के अतिरिक्त आर्थिक-सामाजिक क्षेत्रों में भी समानता आवश्यक है। आर्थिक साधनों के वितरण में भी समानता आवश्यक है। भारत में कई राज्यों की यह शिकायत रहती है कि आर्थिक साधनों के वितरण में केन्द्र-सरकार उनके साथ सौतेला व्यवहार करती है। इस प्रकार की भावना संघ-शासन के अस्तित्व के लिए खतरनाक है।

(5) सामाजिक-आर्थिक विकास-संघीय शासन की सफलता के लिए एक निश्चित सीमा तक सामाजिक-आर्थिक विकास आवश्यक शर्त्त है। सामाजिक-आर्थिक विकास के लाभ कुछ क्षेत्रों को न मिलकर सभी क्षेत्रों को मिलना चाहिए। तभी संघ- सरकार के प्रति विश्वास और आस्था पैदा होगी।

(6) केन्द्र और राज्य के बीच सहयोग और समन्वय- संघवाद एक शासन-पद्धति है जो यथार्थवाद से आँखें मूँदकर काम नहीं कर सकती है। शक्तियों के विभाजन मात्र से संघीय व्यवस्था सफल नहीं हो सकती है। इसकी सफलता के लिए एक सीमा तक संघ तथा इकाइयों के बीच सहयोग और समन्वय आवश्यक है।

(7) एकता की इच्छा- एकता की इच्छा संघ के निर्माण तथा उसकी सफलता के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त्त है। एकता की इच्छा के बिना न तो संघ का निर्माण हो सकता है और न उसे सफलता मिल सकती है। एकता की इच्छा के कई कारण हो सकते हैं, लेकिन सुरक्षा की आवश्यकता तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिए प्रयास एकता की इच्छा के प्रमुख कारण हैं।

**2.3.11. एकात्मक शासन एवं संघात्मक शासन के बीच अन्तर**

एकात्मक शासन, शक्तियों के केन्द्रीकरण और संघात्मक शासन, शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होता है। एकात्मक और संघात्मक शासन के बीच मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं-

(1) शक्तियों के विभाजन का अन्तर- एकात्मक शासन में संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन नहीं किया जाता और संविधान द्वारा सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रीय सरकार को प्रदान कर दी जाती है। प्रादेशिक सरकारों में शक्ति का विभाजन केन्द्रीय शासन की इच्छा पर निर्भर करता है। लेकिन संघात्मक शासन में संविधान द्वारा ही केन्द्रीय सरकार और इकाइयों की सरकारों के बीच शक्ति का विभाजन कर दिया जाता है।

(2) प्रान्तीय सरकारों की स्थिति में अन्तर- एकात्मक शासन में प्रान्तीय सरकारें पूर्णतया केन्द्रीय शासन के अधीन होती हैं और ये इकाइयाँ, केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का ही उपयोग कर सकती हैं, लेकिन संघात्मक शासन में प्रान्तीय सरकारों को संविधान से ही शक्ति प्राप्त होती है और ये सरकारें केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं बल्कि समकक्ष होती हैं।

(3) नागरिकों की स्थिति में अन्तर- एकात्मक शासन में नागरिक केवल केन्द्रीय सरकार के प्रति ही भक्ति रखते हैं और इकहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है, लेकिन संघात्मक शासन में नागरिक केन्द्रीय सरकार के साथ-साथ प्रान्तीय सरकार दोनों के प्रति भक्ति रखते हैं और दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है। इस संबंध में भारत की संघात्मक व्यवस्था अवश्य ही एक अपवाद है।

(4) संविधान के रूप का अन्तर- एकात्मक राज्य का संविधान लिखित, अलिखित, कठोर या लचीला किसी भी प्रकार का हो सकता है, लेकिन संघात्मक राज्य का संविधान आवश्यक रूप से लिखित होता है। इस प्रकार संघात्मक राज्य के लिए लिखित और कठोर संविधान आवश्यक है, लेकिन एकात्मक राज्य के लिए नहीं।

(5) प्रशासकीय अंगों की शक्ति में अन्तर- एकात्मक राज्यों के अन्तर्गत साधारणतया व्यवस्थापिका संप्रभु होती है और न्यायपालिका का कार्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों के आधार पर न्याय प्रदत्त करना होता है। किन्तु संघात्मक राज्य में संविधान सर्वोच्च होता है, सम्प्रभुता संविधान में निहित होती है और इस संविधान की व्याख्या एवं रक्षा करने का कार्य सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है। ऐसी स्थिति में न्यायपालिका व्यवस्थापिका से अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून संविधान के प्रतिकूल होने पर न्यायपालिका उसे अवैधानिक घोषित कर सकती है।

इस प्रकार एकात्मक शासन-प्रणाली एवं संघात्मक शासन-प्रणाली के बीच बहुत बड़ा अन्तर है, जो मूलतः शक्तियों के विभाजन को लेकर ही है।

**2.3.12. अमरीकी संघीय व्यवस्था**

अमेरिका को आधुनिक संघवाद का गृह कहा जाय तो काई अतिशयोक्ति नहीं होगी। 1787 में फिलाडेल्फिया कन्वेन्शन में अमरीकी संविधान निर्माताओं ने संविधान में संघीय व्यवस्था के स्वरूप का स्पष्ट एवं निश्चित प्रावधान किया था। सी0एफ0स्ट्रांग के मतानुसार, ''संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान संसार का पूर्णतः संघीय संविधान है।'' अमरीकी संविधान में संघात्मकता के सभी लक्षण मौजूद हैं, इसलिए इसे संघात्मक संविधान कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। इसके संघात्मक लक्षणों का वर्णन निम्न हैं-

(1) दो स्तरों पर शासन-संचालन- अमेरिका में दो स्तरों पर शासन-व्यवस्था संगठित की गयी है, एक संघीय स्तर पर और दूसरा राज्यों के स्तर पर। तेरह राज्यों से प्रारंभ किया गया अमरीकी संघ में आज 50 राज्य हैं। संघ और राज्य दोनों स्तर पर अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली गठित की गयी है।

(2) शक्तियों का विभाजन- संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। अमरीकी संविधान के अन्तर्गत कुछ शक्तियाँ संघ सरकार को सौंपी गयी है और अवशेष शक्तियाँ राज्य सरकार में निहित कर दी गयी हैं। संविधान के द्वारा कुछ अधिकारों के संबंध में राज्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

(3) संविधान की सर्वोच्चता- अमेरिका की संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत संविधान की सर्वोच्चता का सिद्धांत अपनाया गया है। संविधान के अनुच्छेद 6 के अन्तर्गत कहा गया है कि ''यह संविधान और इसके अनुसार बनाए गए सभी कानून तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राधिकार के अधीन की गयी अथवा भविष्य में की जानेवाली सभी सन्धियाँ, देश का सर्वोच्च कानून होगा और प्रत्येक राज्य के न्यायाधीश उससे बाध्य होंगे। किसी भी राज्य के संविधान अथवा कानून की कोई भी बात, जो इस संविधान के विरूद्ध होगी, अवैध समझी जाएगी।''

(4) न्यायपालिका की सर्वोच्चता- अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपनाया गया है। वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान के विरूद्ध पारित अधिनियमों को अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार अमरीकी संविधान की प्रमुख विशेषता है।

(5) इकाइयों की समानता- अमेरिका में इकाइयों को समानता दी गयी है। इसका सबसे स्पष्ट और ज्वलन्त उदाहरण इकाइयों का सिनेट में प्रतिनिधित्व है। इकाइयों की समानता के आधार पर सिनेट में पचास राज्यों को जनसंख्या तथा आकार का ध्यान दिए बिना दो-दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्रदान किया गया है। इसीलिए सिनेट के सदस्यों की संख्या 100 है।

(6) दोहरी नागरिकता- अमेरिका में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था है। वहाँ संघ और राज्य दोनों को नागरिकता प्रदान करने का अधिकार है। अमेरिका का नागरिक एक साथ दोहरी नागरिकता ग्रहण करता है। वह संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक होने के साथ-साथ उस राज्य का भी नागरिक है जिस राज्य में वह निवास करता है।

(7) प्रादेशिक अखंडता- अमरीकी संघीय व्यवस्था में प्रादेशिक अखंडता बनाए रखने के लिए संविधान के अन्तर्गत आवश्यक प्रावधान किए गए हैं। संविधान के चौथे अनुच्छेद में कहा गया है कि किसी राज्य से उसकी सहमति के बिना न तो उसके भू-भाग का कोई हिस्सा बाहर निकाला जा सकता है और न ही दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक नये राज्य का रूप दिया जा सकता है।

(8) इकाइयों के लिए गणतांत्रिक व्यवस्था- अमेरिका के संविधान के चौथे अनुच्छेद में राज्यों की शासन व्यवस्था के स्वरूप का भी उल्लेख कर दिया गया है। संविधान के द्वारा संघ सरकार को यह निर्देश दिया गया है कि वह राज्यों के लिए गणतांत्रिक शासन- व्यवस्था स्थापित करने तथा उसे बरकरार रखने का प्रयास करेगा।

(9) संविधान के संशोधन में संघ और इकाइयों को समान अधिकार-अमेरिका में संघीय संविधान में संशोधन के लिए संघ तथा राज्यों दोनों को अधिकार दिया गया है। संघीय काँग्रेस द्वारा पारित संशोधन अधिनियम तब तक लागू नहीं होंगे जबतक तीन- चैथाई राज्यों का उस पर अनुसमर्थन प्राप्त न हो गया हो। इसके अतिरिक्त, राज्यों को संविधान में संशोधन प्रस्तावित करने का भी अधिकार प्राप्त है।

उपर्युक्त संघात्मक लक्षणों के अतिरिक्त अमरीकी संघीय व्यवस्था की और भी कई विशेषताएँ हैं। प्रथम, अमेरिका में संघ और राज्यों के लिए अलग-अलग संविधान है। द्वितीय, संघ और राज्यों के लिए अलग-अलग न्यायपालिका है और तृतीय, राज्यों के प्रधान गवर्नरों का वहाँ की जनता के द्वारा निर्वाचन होता है। अतः अमरीकी शासन-प्रणाली के इन लक्षणों के आधार पर इसे संघीय शासन-प्रणाली कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। तभी तो सी0एफ0स्ट्रांग ने कहा है कि ''संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान विश्व का सर्वाधिक पूर्ण संघात्मक संविधान है।'' के0सी0 ह्वीयर ने इसे आदर्श संघ की संज्ञा दी है।

लेकिन कई समीक्षकों ने यह भी कहा है कि आज की अमरीकी संघीय व्यवस्था वह नहीं है जो दो सौ वर्ष पहले गठित हुई थी। पिछले कई वर्षों में अमरीकी राजनीतिक व्यवस्था में इतने उथल-पुथल हुए हैं कि इसके संघीय स्वरूप में मौलिक परिवर्तन हो गये हैं। कई विद्वानों ने तो प्रारंभ से ही अमेरिका में विशुद्ध संघवाद के लक्षणों का अभाव माना है। अमेरिका की वर्तमान संघीय-व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप केन्द्रवाद पर आधारित है। आज संघ सरकार की सर्वोच्चता अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख लक्षण है। अधिकांश लेखक एवं समीक्षक भी यह मानते हैं कि अमरीकी संघीय-व्यवस्था का आधार सहकारी संघवाद है।

### 2.3.13. स्विस संघीय व्यवस्था

स्विट्जरलैंड में भी संघात्मक व्यवस्था अपनायी गयी है। यद्यपि स्विस संविधान में संघ के स्थान पर 'राज्य-मण्डल' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो के0सी0 ह्वीयर के मतानुसार संघ का पर्यायवाची ही है। संविधान की प्रस्तावना से यह स्पष्ट होता है कि स्विट्जरलैंड में संघीय व्यवस्था है। प्रस्तावना में कहा गया है कि ''स्विस राज्य मंडल की स्थापना का उद्देश्य है कि कैंटनों के संघ को सुदृढ़ बनाया जाय और उसके द्वारा स्विस राष्ट्र की एकता, शक्ति और सम्मान की रक्षा और वृद्धि की जाय।'' इसी प्रकार के कथन संविधान के अनुच्छेद 2 में भी हैं। स्विट्जरलैंड की संघीय व्यवस्था के कुछ अपने लक्षण हैं तथा कुछ अपनी विशेषताएँ हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) दोहरी शासन-व्यवस्था-स्विट्जरलैंड में दोहरी शासन-व्यवस्था है। यहाँ संघ की सरकार के अतिरिक्त कैंटनों और अर्द्ध कैंटनों की अलग-अलग सरकारें हैं। स्विट्जरलैंड में 19 पूर्ण कैंटन तथा 6 अर्द्ध-कैंटन हैं। कैण्टन तथा अर्द्ध-कैण्टन के बीच सबसे प्रमुख अन्तर यह है कि संघ की राज्य-परिषद् में प्रत्येक कैण्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है जबकि अर्द्ध-कैण्टन को एक प्रतिनिधि भेजने का ही अधिकार प्राप्त है।

(2) शक्तियों का विभाजन- संघ और कैण्टनों के बीच शक्तियों का विभाजन कर दिया गया है। शक्तियों का विभाजन अमरीकी व्यवस्था के आधार पर की गयी है। संघ सरकार की शक्तियों को स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है और अवशेष अधिकार कैण्टनों में निहित माना गया है। अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की भांति स्विट्जरलैंड में भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें समवर्ती क्षेत्र कहा जाता है तथा जिनपर संघ और कैण्टन दोनों का समवर्ती अधिकार क्षेत्र है। स्विस संघीय व्यवस्था की विशेषता यह है कि यहाँ संघ और राज्य शासन के मामले में समान स्थिति में है। दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में विधि-निर्माण करने तथा प्रशासन करने का पूर्ण अधिकार है।

(3) संविधान की सर्वोच्चता- स्विट्जरलैंड में एक लिखित तथा सर्वोच्च संविधान है। वहाँ संविधान कठोर भी है। इसके संशोधन की प्रक्रिया जटिल और लम्बी है। संविधान की सर्वोच्चता के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका के संविधान की तरह स्विट्जरलैंड का संविधान सर्वोच्च नहीं है। क्योंकि जनमत-संग्रह, प्रस्तावना या आरंभन आदि के कारण इसे पूर्णतया सर्वोच्च स्थान प्राप्त नहीं है।

(4) स्वतंत्र और शक्तिशाली न्यायपालिका- यद्यपि स्विट्जरलैंड की न्यायपालिका स्वतंत्र और शक्तिशाली है, तथापि उसे अमेरिका की न्यायपालिका की तरह संविधान का निर्वचन का अधिकार प्राप्त नहीं है। स्विस संघीय न्यायालय को संघ या कैण्टन के अधिनियमों की संविधानिकता की जाँच करने का अधिकार नहीं है। इस संबंध में सी0 एफ0 स्ट्राँग का कथन है कि संघीय न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार देने का प्रयोजन भी नहीं है, क्योंकि वहाँ अधिनियमों पर जनता का अन्तिम अधिकार प्राप्त है।

(5) इकाइयों की समानता- अमेरिका की तरह स्विट्जरलैंड में भी इकाइयों की समानता का सिद्धान्त अपनाया गया है। प्रत्येक कैंटन का अपना संविधान है, सबों के नागरिकता संबंधी नियम अलग-अलग हैं। स्विस विधानमंडल के उच्च सदन के लिए प्रत्येक कैंटन को दो तथा अर्द्ध-कैंटन को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

(6) संविधान-संशोधन में संघ और इकाइयों को समान अधिकार- स्विट्जरलैंड के संविधान में संशोधन लाने में संघ और कैंटनों को समान अधिकार प्राप्त है। संविधान में संशोधन तभी पारित समझा जाता है जब कम-से-कम आधे कैंटनों का अनुसमर्थन प्राप्त हो।

इस प्रकार अन्य देशों की तरह स्विट्जरलैंड की संघीय व्यवस्था में भी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। संघ सरकार की शक्तियों में वृद्धि हुई है। यद्यपि स्विस संविधान के अनुच्छेद 3 में स्पष्ट कहा गया है कि ''संघीय संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत कैण्टन प्रभुतासम्पन्न है'', परन्तु व्यवहार में संघ सरकार का अधिकार व्यापक है। युद्ध, आर्थिक मंदी, सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में विस्तार तथा तकनीकी क्रांति के कारण स्विट्जरलैंड में संघ सरकार के अधिकार-क्षेत्र में विस्तार हुआ है। साथ ही उसकी भौगोलिक स्थिति भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण है। स्विस संघीय-व्यवस्था में वे सभी लक्षण मौजूद हैं जो अमरीकी व्यवस्था में है। लेकिन सच तो यही है कि केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के बाबजूद स्विट्जरलैंड की संघ सरकार अमेरिका की तरह ज्यादा शक्तिशाली नहीं हो पायी है।

## 2.3.14. सोवियत रूस में संघात्मक शासन

सोवियत रूस की शासन-व्यवस्था अमेरिका, स्विट्जरलैंड तथा भारत से भिन्न है। सोवियत रूस में साम्यवादी व्यवस्था है जिसका स्वरूप संघात्मक है। सोवियत रूस की संघीय व्यवस्था हमेशा से

विवादास्पद रहीं, क्योंकि सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से संघ होते हुए भी राजनीतिक दृष्टि से यह एकात्मक राज्य है। साम्यवादी विचारक संघात्मक व्यवस्था के विरोधी रहे हैं। उन्होंने संघवाद को 'एक अविवेकपूर्ण आदर्श' कहा है। लेनिन के शब्दों में, ''हम सिद्धान्ततः संघवाद का विरोध करते हैं। यह आर्थिक बन्धनों को शिथिल करता है। यह राज्य के लिए अनुपयुक्त प्रणाली है।'' वस्तुतः सोवियत रूस में संघीय व्यवस्था अस्थायी व्यवस्था के रूप में स्वीकार की गयी है। लेकिन सोवियत रूस की संघात्मकता के समर्थकों के मतानुसार सोवियत रूस की संघीय व्यवस्था सही रूप में संघीय है। सोवियत रूस की संघीय व्यवस्था के निम्नलिखित मुख्य लक्षण हैं-

(1) दो स्तरों पर शासन-संचालन

(2) संघ और इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन

(3) दोहरी नागरिकता

(4) संघ से अलग होने का अधिकार

(5) इकाइयों के विदेशी सम्बन्ध का अधिकार

(6) गणराज्यों की सहमति के बिना उनके क्षेत्र में परिवर्तन नहीं

(7) संघीय गणराज्यों को अलग संविधान बनाने का अधिकार

(8) लिखित और कठोर संविधान

इस प्रकार सोवियत संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत और भी कई ऐसे लक्षण हैं जिनके कारण इसे पूर्ण संघ माना जा सकता है, जैसे, प्रत्येक गणराज्य के लिए एक अलग झण्डा, अलग भाषा आदि। लेकिन सोवियत रूस के संविधान में कुछ एकात्मक लक्षण भी विद्यमान हैं, जिसका उल्लेख संघीय व्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है। ये लक्षण निम्नलिखित हैं-

(1) संविधान की सर्वोच्चता का अभाव

(2) स्वतंत्र और शक्तिशाली न्यायपालिका का अभाव

(3) संविधान के संशोधन में इकाइयों को स्थान नहीं

(4) गणराज्यों के संविधान पर केन्द्र का नियंत्रण

(5) केन्द्र की प्रधानता

(6) साम्यवादी दल की भूमिका

हलाँकि पाश्चात्य देशों में दल-पद्धति संविधान के बाहर की चीज है। लेकिन सोवियत रूस के संविधान के अन्तर्गत दल के संगठन तथा उसकी शक्तियों एवं कृत्यों का उल्लेख किया गया है। संविधान में केवल एक ही दल साम्यवादी दल, का उल्लेख किया गया है। साम्यवादी दल संघ तथा संघीय गणराज्यों की सरकारों के सभी अंगों पर नियंत्रण रखता है। उसके निर्देश के बिना कोई भी नीति संबंधी आदेश नहीं दिए जा सकते हैं। सारी नीतियों का निर्माण साम्यवादी दल के द्वारा होता है। इसलिए सोवियत रूस में संघ के केन्द्रीकृत बनने का सबसे बड़ा कारण सर्वव्यापी साम्यवादी दल है जो पूर्णतया केन्द्र-प्रधान है और जिसमें एक बिन्दु मात्र भी संघीय तत्व नहीं है। यह यथार्थ में एकात्मक व्यवस्था है। लेकिन व्हीयर ने इसे अर्द्धसंघ व्यवस्था की संज्ञा दी है, जिसे ऑग ने भी स्वीकार किया है। जहाँ तक संविधानों के वर्गीकरण का सन्दर्भ है, हमें इसे संघात्मक व्यवस्था कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। सोवियत रूस के संविधान-निर्माताओं में स्पष्टरूप से संघीय व्यवस्था की स्थापना की घोषणा की है। अतः विशिंस्की ने इसे पाश्चात्य देशों की बुर्जुआ संघ से अलग एक नये प्रकार का संघ कहा है।

**2.3.15. भारतीय संघीय व्यवस्था**

यद्यपि भारत के संविधान-निर्माताओं ने संविधान की ढ़ाँचा ब्रिटेन के संविधान के समान तैयार किया है, तथापि कुछ क्षेत्रों में उन्होंने अमेरिका के संविधान से भी तत्व लिए हैं। संघवाद अमेरिका से लिया गया तत्व है। भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि ''भारत राज्यों का एक संघ होगा।'' भारतीय संविधान के अन्तर्गत संघ के चारों लक्षण विद्यमान हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) दोहरी शासन-व्यवस्था-भारत में केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर शासन- संचालन होता है। केन्द्र की तरह राज्य सरकार की भी अलग व्यवस्था है। राज्य की सरकार अपने क्षेत्रान्तर्गत विधि-निर्माण करने तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए सक्षम है।

(2) शक्तियों का विभाजन- केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन संविधान के अन्तर्गत कर दिया गया है। शक्तियों के विभाजन के लिए तीन सूचियाँ अपनायी गयी हैं- संघी सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची के अन्तर्गत केन्द्र सरकार की शक्तियों का विवरण दिया गया है। राज्य सूची में राज्य सरकार की शक्तियाँ दी गयी हैं। तथा समवर्ती सूची में केन्द्र और राज्य दोनों की शक्तियों का उल्लेख किया गया है। जिसमें दोनों को समान रूप से विधि-निर्माण का अधिकार दिया गया है। अवशेष अधिकार केन्द्र में निहित है।

(3) लिखित, कठोर एवं सर्वोच्च संविधान- भारत का संविधान लिखित, कठोर और सर्वोच्च है। संविधान में केन्द्र तथा राज्य के कार्यों तथा दोनों की शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख है। संविधान का अतिक्रमण करनेवाले अधिनियम या आदेश असांविधानिक करार किये जाते हैं।

(4) स्वतंत्र और शक्तिशाली न्यायपालिका- भारत में सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्चन्यायालयों को स्वतंत्र बनाया गया है। साथ ही अमेरिका की भांति उन्हें केन्द्र तथा राज्य की विधायिकाओं द्वारा पारित अधिनियमों की सांविधानिकता की जाँच करने का भी अधिकार प्रदान किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में संघीय व्यवस्था है। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेदकर के शब्दों में, ''संघ राज्यों का न तो एक ढ़ीला-ढ़ाला संगठन है और न राज्य संघ के प्रतिनिधि हैं जिनकी शक्ति का स्रोत केन्द्र है। दोनों की शक्तियों का स्रोत संविधान है। दोनों अपने क्षेत्र में समस्तरीय हैं।'' परन्तु भारतीय संविधान में कुछ ऐसे लक्षण भी हैं जो एकात्मक लक्षण हैं, वे निम्नलिखित हैं-

(1) संघ का निर्माण- भारत में संघ-निर्माण के पूर्व एकात्मक व्यवस्था थी। संघ-निर्माण के उद्देश्य के लिए एकात्मक व्यवस्था को संघात्मक व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया गया तथा एकात्मक शासन के अन्तर्गत क्षेत्रीय शासन को इकाइयों का रूप दे दिया गया।

(2) शक्तियों का विभाजन-शक्तियों के विभाजन की योजना के अन्तर्गत अवशेष शक्तियाँ केन्द्र को सौंपी गयी हैं, जबकि सामान्यतया अवशेष शक्तियाँ राज्य में निहित रहती हैं।

(3) राज्यपाल की नियुक्ति- संघात्मक शासन की इकाइयों के प्रधान वहाँ की जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं, परन्तु भारत में राज्यों के प्रधान राज्यपाल केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

(4) इकहरी न्यायपालिका-भारत में दोहरी शासन-व्यवस्था तो है, परन्तु न्यायपालिका इकहरी है। संघ और राज्यों के लिए अलग-अलग न्याय-व्यवस्था न होकर इकहरी न्याय-व्यवस्था है।

(5) इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी शासन-व्यवस्था के साथ-साथ दोहरी नागरिकता भी होती है। लेकिन भारतीय शासन-व्यवस्था दोहरी तो है, परन्तु नागरिकता इकहरी है।

(6) केन्द्र की प्रधानता- भारतीय संघ व्यवस्था में केन्द्र की प्रधानता स्थापित की गयी है। राज्यसभा द्वारा राज्य-सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित करने पर उस विषय पर भी संसद को विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त होगी। भारतीय संघ की यह भी एक विचित्र व्यवस्था है कि सम्पूर्ण देश के लिए एक भाषा तथा एक संविधान की व्यवस्था की गयी है। साथ ही संपूर्ण भारत में चुनावों के लिए एक चुनाव आयोग, देश-भर की योजना के लिए एक योजना आयोग तथा संघ और राज्यों की सरकारों के आय-व्यय के लेखा-परीक्षण के लिए एक ही लेखा-परीक्षण विभाग की व्यवस्था की गयी है। ये सभी केन्द्र सरकार के अधीन हैं। जहाँ संघीय शासन में संघ के उच्च सदन में इकाइयों का समान प्रतिनिधित्व होता है। वहाँ भारत में यह व्यवस्था नहीं है। भारत में राज्यों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या और क्षेत्रफल के आधार पर होता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान में संकटकालीन स्थितियों का उल्लेख किया गया है। संकटकाल में भारत का संघीय स्वरूप बदलकर एकात्मक हो जाता है। संघ की विधायिका तथा कार्यपालिका दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में व्यापक अधिकार प्राप्त हो जाता है। सांविधानिक संकट उत्पन्न होने पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कई विद्वानों ने इसे एकात्मक शासन कहा है। जबकि अनेक विद्वानों ने भारत की संघीय व्यवस्था को अर्द्धसंघ या केन्द्रीकृत संघ कहा है, परन्तु आज के युग में जब संघवाद के गृह अमेरिका में सहकारी संघवाद को मान्यता दी जा रही है, वैसी स्थिति में भारतीय संघ को एकात्मक या अर्द्धसंघ कहना उचित नहीं है। भारतीय संघ व्यवस्था में संघवाद के सभी मूल लक्षण विद्यमान हैं। अतः यह संघीय शासन है। प्रो0 अलेक्जेण्ड्रोविच के मतानुसार ''भारत निःसंदेह एक संघ है जिसमें सार्वभौमिकता केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजित है।''

### 2.3.16. निष्कर्ष

निश्चय ही एकात्मक शासन के गुण-दोषों की विवेचना के बाद हम कह सकते हैं कि यह शासन छोटे राज्यों के लिए ही उपयुक्त हो सकता है, बड़े राज्यों के लिए कदापि नहीं। इसीलिए अनेक विद्वानों ने लोकतंत्र की दृष्टि से एकात्मक शासन की अनुशंसा नहीं की है। आधुनिक राज्यों में संघीय व्यवस्था को ही प्राथमिकता दी जा रही है। आज का राज्य लोकतांत्रिक राज्य है और संघात्मक व्यवस्था लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने में सहायक सिद्ध होती है। भारत, अमेरिका, कनाडा और स्विट्जरलैंड जैसे देशों में संघात्मक शासन-व्यवस्था सफलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से काम कर रही है। वैसे कभी-कभी भारत में संघीय क्षेत्र में केन्द्र और राज्य के बीच तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके बावजूद संघात्मक व्यवस्था को सफल ही कहा जा सकता है। सोवियत रूस की संघीय व्यवस्था कागजी ही कही जा सकती है, जिसका कारण एकदलीय साम्यवादी दल का संपूर्ण प्रशासन पर एकाधिकार है।

अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि आज की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों में परम्परागत विशुद्ध संघवाद न तो व्यावहारिक है और न ही वांछनीय है। संघवाद कोई ध्येय नहीं है, यह एक साधन है जिसके द्वारा राष्ट्र तथा उसके विभिन्न क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास हो। यदि इसके लिए 'सहकारी संघवाद' ज्यादा उपयोगी है तो हमें इसे मान्यता देने में हिचकना नहीं चाहिए क्योंकि सहकारी संघवाद में संघ और राज्य एक-दूसरे से बिल्कुल अलग होकर काम नहीं करते, बल्कि एक-दूसरे के पारस्परिक सहयोग के आधार पर काम करते हैं। यहाँ तक कि सभी इकाइयों में भी पारस्परिक सहयोग की

भावना रहती है। सच तो यह है कि आज की दुनियाँ में कोई भी देश शक्तियों के विभाजन को कठोरता के साथ लागू कर काम नहीं कर सकता है। आज के युग की माँग है सहकारी संघवाद।

**2.3.17. कठिन शब्दावली**

(1) निरंकुश- नियंत्रण न होना
(2) जनसहभागिता- आमलोगों का शामिल होना
(3) पुनर्निरीक्षण-फिर से जाँचना
(4) असांविधानिक-संविधान के प्रतिकूल
(5) इकहरी- एक
(6) अवशेष- बचा हुआ
(7) सर्वांगीण-सब प्रकार का
(8) एकाधिकार-एक का ही अधिकार

**2.3.18. अभ्यास प्रश्न**

**वैकल्पिक प्रश्न**

(1) एकात्मक शासन में कौन से लक्षण नहीं होते हैं?
(क) संविधान लचीला (ख) शक्तियों का विभाजन
(ग) एक ही सरकार (घ) इकहरी नागरिकता

(2) संघात्मक शासन में कौन से लक्षण नहीं होते हैं?
(क) दोहरा शासन (ख) संविधान लिखित एवं कठोर
(ग) दोहरी नागरिकता (घ) शक्तियों का विभाजन नहीं

(3) एकात्मक शासन कहाँ नहीं है?
(क) भारत (ख) फ्रांस
(ग) इंगलैंड (घ) जापान

(4) संघात्मक शासन कहाँ नहीं है?
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) स्विट्जरलैंड (घ) इंगलैंड

(5) संघात्मक शासन में संविधान कैसा होता है?
(क) लचीला (ख) अलिखित
(ग) कठोर (घ) कमजोर

(6) संकटकाल के लिए किस शासन को उपयुक्त माना गया है?
(क) संघात्मक (ख) एकात्मक
(ग) सहकारी संघवाद (घ) दोनों

(7) न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार किस शासन को प्राप्त है?
(क) ब्रिटिश शासन (ख) स्विस शासन
(ग) अमेरिकी शासन (घ) भारतीय शासन

(8) संघात्मक के आवरण में एकात्मक व्यवस्था कहाँ है?

(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) सोवियत रूस (घ) स्विट्ज़रलैंड

उत्तर- 1 (ख), 2 (घ), 3 (क), 4 (घ), 5 (ग), 6 (ख), 7 (ग), 8 (ग)

**लघु उत्तरीय प्रश्न**

(1) एकात्मक शासन क्या है? स्पष्ट करें।
(2) एकात्मक शासन के लक्षणों को स्पष्ट करें।
(3) एकात्मक शासन के गुणों का उल्लेख करें।
(4) एकात्मक शासन के दोषों का उल्लेख करें।
(5) संघात्मक शासन के अर्थ को स्पष्ट करें।
(6) संघात्मक शासन की विशेषताओं का उल्लेख करें।
(7) संघात्मक शासन के गुणों को स्पष्ट करें।
(8) संघात्मक शासन के दोषों का उल्लेख करें।
(9) एकात्मक शासन संकटकाल के लिए उपयुक्त होता है, सकारण स्पष्ट करें।

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

(1) एकात्मक शासन किसे कहते हैं? उसकी विशेषताओं तथा उसके गुण-दोषों का वर्णन करें।
(2) संघात्मक शासन को परिभाषित करें तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं एवं गुण-दोषों का उल्लेख करें।
(3) संघात्मक शासन किसे कहते हैं? संघात्मक शासन और एकात्मक शासन के बीच अन्तर बताएँ।
(4) संघात्मक शासन के निर्माण एवं सफलता की आवश्यक शर्तों का उल्लेख करें।
(5) अमेरिकी संघवाद के स्वरूप एवं विशेषताओं का उल्लेख करें।
(6) अमेरिका एवं स्विट्ज़रलैंड की संघीय प्रणालियों की प्रवृत्ति की तुलना करें।
(7) 'भारतीय संविधान का स्वरूप संघात्मक है, परन्तु उसकी आत्मा एकात्मक हैं, समीक्षा करें।
(8)'सोवियत रूस संघात्मक के आवरण में एकात्मक व्यवस्था है', समीक्षा करें।

**2.3.19. संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. जैन डॉ0 पुखराज एवं फड़िया डॉ0 बी0एल0, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2003, पृ0 सं0 355-388
2. प्रसाद डॉ0 मणिशंकर, तुलनात्मक राजनीति, भारतीय भवन पब्लिशर्स, पटना, 1986, पृ0 सं0 88-116.
3. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960

5. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

# इकाई-4 : राजनीतिक संस्थाओं (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) का तुलनात्मक अध्ययन

**इकाई की रूपरेखा**

**2.4.1. उद्देश्य**
**2.4.2. राजनीतिक संस्थाओं का परिचय**
**2.4.3. राजनीतिक संस्थाओं का गठन**
**2.4.4. व्यवस्थापिका के कार्य**
**2.4.5. कार्यपालिका के कार्य**
**2.4.6. न्यायपालिका के कार्य**
**2.4.7. व्यवस्थापिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन**
**2.4.8. कार्यपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन**
**2.4.9. न्यायपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन**
**2.4.10. व्यवस्थापिकाओं की स्थिति**
**2.4.11. कार्यपालिकाओं की स्थिति**
**2.4.12. न्यायपालिकाओं की स्थिति**
**2.4.13. निष्कर्ष**
**2.4.14. कठिन शब्दावली**
**2.4.15. अभ्यास प्रश्न**
**2.4.16. संदर्भ ग्रंथ सूची**

## 2.4.1. उद्देश्य

- विभिन्न देशों के राजनीतिक संस्थाओं अर्थात् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका को समझ सकेंगे।
- व्यवस्थापिका के कार्यों को समझ सकेंगे।
- कार्यपालिका के कार्यों को समझ सकेंगे।
- न्यायपालिका के कार्यों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न देशों की व्यवस्थापिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।
- विभिन्न देशों की कार्यपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।
- विभिन्न देशों की न्यायपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।
- व्यवस्थापिकाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।
- कार्यपालिकाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।
- न्यायपालिकाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।

### 2.4.2. राजनीतिक संस्थाओं का परिचय

सरकार राज्य का आवश्यक तत्व है। यह राज्य का कार्यवाहक यंत्र है, जो राज्य की इच्छा को निर्धारित, व्यक्त तथा क्रियान्वित करता है। सरकार राज्य का मूर्त रूप है। उसे राज्य की आत्मा कहा जा सकता है। सरकार राज्य का वह यंत्र है जिसके उपर राज्य के कानून बनाने, उन्हें क्रियान्वित करने तथा उनकी व्याख्या करने का दायित्व है। इस प्रकार सरकार तीन प्रकार के कार्य करती है- (1) कानून बनाना, (2) उन्हें क्रियान्वित करना और (3) उनकी व्याख्या करना तथा उनका उल्लंघन करनेवालों को दण्ड देना। इन कार्यों को करने के लिए सरकार के तीन अंग होते हैं- (1) व्यवस्थापिका, (2) कार्यपालिका और (3) न्यायपालिका। व्यवस्थापिका कानून बनाती है, कार्यपालिका उन्हें क्रियान्वित करती है और न्यायपालिका उनकी रक्षा करती है।

व्यवस्थापिका को विधायिका या विधानपालिका भी कहते हैं। यह सरकार का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। यह समूचे देश के लिए विधियों का निर्माण करती है, सरकार की सफलता इस पर ही निर्भर करती है। एक लोकतांत्रिक राज्य में व्यवस्थापिका सर्वोपरि होती है। संसदीय सरकार के अन्तर्गत शासन करनेवाले का चयन भी व्यवस्थापिका करती है। यह सरकार का सबसे महत्वपूर्ण अंग होती है। यह जनता का दर्पण है। राजनीतिक दलों के आधार पर ही व्यवस्थापिका का गठन होता है। विभिन्न देशों में व्यवस्थापिका को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इंगलैंड, फ्रांस और भारत में इसे संसद् कहा जाता है। अमरीका में कांग्रेस, स्विट्ज़रलैंड में संघीय सभा और सोवियत रूस में इसे सर्वोच्च सोवियत कहा जाता है।

कार्यपालिका सरकार या शासन का वह अंग है जिसका कार्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधेयकों का कार्यान्वयन करना है। विधियों को लागू करनेवाली शक्ति को कार्यपालिका शक्ति और इस शक्ति का प्रयोग करनेवाली संस्थात्मक संरचना को कार्यपालिका कहा जाता है। कार्यपालिका का दो अर्थ में प्रयोग किया जाता है, व्यापक अर्थ में और संकुचित अर्थ में। व्यापक अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत वे सभी राज्य कर्मचारी आते हैं जिनका सम्बन्ध प्रशासन से होता है। संकुचित अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत वे राजनीतिक अधिकारीगण आते हैं जिनका सम्बन्ध नीति-निर्माण तथा उसके कार्यान्वयन से है। इसे राजनीतिक कार्यपालिका कहते हैं। अमेरिका में राष्ट्रपति तथा उसके मंत्रिमंडल, ब्रिटेन में सम्राट, प्रधानमंत्री तथा उसके मंत्रिमंडल, फ्रांस में राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल तथा भारत में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल कार्यपालिका के अन्तर्गत आते हैं।

जब कार्यपालिका की शक्तियाँ एक निश्चित व्यक्ति के हाथ में निहित होती हैं तो उसे एकल कार्यपालिका कहा जाता है। इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस तथा भारत में एकल कार्यपालिका है। जब कार्यपालिका की शक्तियाँ किसी एक व्यक्ति में निवास न कर कुछ व्यक्तियों के समूह में निवास करती हैं तो उसे बहुल कार्यपालिका कहा जाता है। स्विट्ज़रलैंड की संघीय परिषद् तथा सोवियत रूस की प्रेजीडियम बहुल कार्यपालिका के उदाहरण हैं। स्विट्ज़रलैंड तथा सोवियत रूस में कार्यपालिका की शक्तियाँ सभी सदस्यों में समान रूप से बँटी हुई हैं। इन संस्थाओं का प्रधान मात्र औपचारिक प्रधान होता है। उसे किसी भी प्रकार का विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

न्यायपालिका लोकतंत्र की प्रहरी है। सरकार के तीन अंगों में न्यायपालिका का विशिष्ट महत्व है। सरकार के जितने भी मुख्य कार्य हैं, उनमें न्याय कार्य निःसंदेह अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका सम्बन्ध नागरिकों से होता है। कानून का पालन करने तथा कानून के प्रति आस्था जगाने में, न्यायपालिका की

भूमिका विशिष्ट रहती है। लोकतंत्र में जनता को समानता पर आधारित न्याय, स्वतंत्रता तथा उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा करने में न्यायपालिका की भूमिका अहम होती है। यह समाज में प्रचलित विधियों को लेकर उठने वाले विवादों का समाधान करने का संस्थागत यन्त्र है। संघात्मक शासन में न्यायपालिका का विशेष महत्व है। संघात्मक शासन में संघ और इकाइयों के बीच सदैव संघर्ष की संभावना रहती है, जिसके लिए एक स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं शक्तिशाली न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका होती है। एक सभ्य समाज के लिए न्यायपालिका अनिवार्य शत्र है। इसीलिए ब्राइस ने कहा है कि ''यदि न्याय का दीप अँधेरे में बुझ जाय तो वह अँधेरा कितना गहन होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।''

### 2.4.3. राजनीतिक संस्थाओं का गठन

व्यवस्थापिका के संगठन के कई आधार हैं। अलग-अलग देश में व्यवस्थापिका के संगठन के लिए अलग-अलग आधार अपनाया जाता है। कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। कुछ देशों में इसका संगठन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। कुछ विशेष प्रकार के हितों तथा अल्पसंख्यकों को मान्यता देने के लिए आरक्षण, मनोनयन आदि कुछ विशेष प्रकार की व्यवस्थाएँ अपनायी जाती है। व्यवस्थापिका के संगठन का विश्लेषण करने के क्रम में एकसदनात्मक एवं द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का उल्लेख करना आवश्यक है।

जिस व्यवस्थापिका में एक सदन हो उसे एकसदनात्मक व्यवस्थापिका कहते हैं। अनेक विद्वानों के मतानुसार एकसदनात्मक व्यवस्थापिका ही लोकतंत्र के लिए उपयुक्त है। चूँकि कानून जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति या उसका प्रतिनिधित्व करते हैं, यह कार्य एक सदन द्वारा ही किया जा सकता है, एक से अधिक के द्वारा नहीं, क्योंकि इच्छा एक होती है, अनेक नहीं। साथ ही एकसदनात्मक व्यवस्थापिका कम खर्चीला है जबकि द्विसदनात्मक व्यवस्था अनुपयोगी और खर्चीला है। तथापि अधिकांश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को ही स्थान दिया गया है। दो सदनों वाली व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका कहते हैं। यह इंगलैंड की देन है। जिन देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका है वहाँ एक सदन को प्रथम सदन तथा दूसरे को द्वितीय सदन कहा जाता है।

भारत में संसद् के दो सदन-लोक सभा और राज्य सभा, इंगलैंड में संसद् के दो सदन-कॉमन सभा और लॉर्ड सभा, अमेरिका में कांग्रेस के दो सदन-प्रतिनिधि सभा और सिनेट, फ्रांस संसद् के दो सदन-राष्ट्रीय सभा और सिनेट, स्वीट्जरलैंड में संघीय सभा के दो सदन-राष्ट्रीय परिषद् और राज्य परिषद् तथा सोवियत रूस में सर्वोच्च सोवियत के दो सदन-संघीय सोवियत और राष्ट्रीयताओं की सोवियत आदि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिकाएँ हैं।

संघात्मक शासन के अन्तर्गत द्वितीय सदन राज्यों या संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च सदन या द्वितीय सदन की रचना में भी भिन्नता पायी जाती है। इंगलैंड में लॉर्ड सभा के संगठन का आधार वंशपरम्परानुगत है, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, पोलैंड, ब्राजिल तथा सोवियत रूस में द्वितीय सदन प्रत्यक्ष ढ़ंग से निर्वाचित होते हैं। जबकि भारत में द्वितीय सदन अप्रत्यक्ष ढ़ंग से निर्वाचित होता है तथा इसके कुछ सदस्य मनोनीत भी होते हैं।

आधुनिक युग में कार्यपालिका के कई प्रकार हैं। अलग-अलग राज्य में कार्यपालिका के अलग-अलग प्रकार हैं। आधुनिक कार्यपालिका में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि और प्रशिक्षित स्थायी

प्रशासक मिलकर काम करते हैं। इनमें से प्रथम को राजनीतिक कार्यपालिका और दूसरे को स्थायी कार्यपालिका कहते हैं। राजनीतिक कार्यपालिका वह है जो निर्वाचित होती है तथा एक निश्चित अवधि के लिए अपने पद पर बनी रहती है। इसके विपरीत स्थायी कार्यपालिका वह है जो स्थायी है तथा सरकारी सेवा में अवकाश-ग्रहण की आयु तक रहते हैं। उनका कार्य राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष रहकर राजनीतिक कार्यपालिका को सहयोग देना है। भारत में प्रधानमंत्री और मंत्रीपरिषद् राजनीतिक कार्यकारी हैं और असैनिक सेवा के अधिकारी स्थायी कार्यकारी होते हैं।

जब कार्यपालिका केवल नाममात्र का प्रधान होती है तो उसे नाममात्र की कार्यपालिका कहते हैं। इसे सांविधानिक कार्यपालिका भी कहा जाता है। संसदीय शासन-प्रणाली में नाममात्र की तथा वास्तविक दोनों प्रकार की कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन का सम्राट तथा भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका के उदाहरण हैं। वास्तविक कार्यपालिका वह होती है जो शासन की समस्त शक्तियों का प्रयोग स्वयं करती है। यह राज्य तथा शासन दोनों का प्रधान होती है। अमेरीका का राष्ट्रपति ऐसे ही वास्तविक कार्यपालिका है। ब्रिटेन एवं भारत का मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है तथा फ्रांस का राष्ट्रपति सांविधानिक एवं वास्तविक दोनों कार्यपालिका के मिश्रण हैं।

संसदीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत दो प्रकार की कार्यपालिका होती है- सांविधानिक और वास्तविक। वास्तविक कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। भारत और ब्रिटेन में मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है और वह व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। जबकि अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में कार्यपालिका सांवैधानिक और वास्तविक एक ही होती है। साथ ही वह व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। अमेरिका का राष्ट्रपति अध्यक्षात्मक कार्यपालिका है। वह वास्तविक प्रधान है तथा उन्हें और उनके सचिव को काँग्रेस के किसी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं रहना पड़ता है।

न्यायिक व्यवस्था के संगठन का सभी देशों में एक-सा ढ़ांचा नहीं पाया जाता। एकात्मक और संघात्मक राज्यों में न्यायिक व्यवस्था के ढ़ांचे में अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार साम्यवादी और अधिनायकवादी व्यवस्था के ढ़ांचे में भी अन्तर देखने को मिलता है। तथापि प्रायः सभी देशों की न्यायिक व्यवस्था अथवा न्यायपालिका का संगठन पिरामिड की तरह होता है। जिसमें निम्न स्तर के न्यायालयों के ऊपर उच्च स्तरीय न्यायालय होते हैं और सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय होता है। प्रायः सभी देशों में सर्वोच्च न्यायालयों में पीठ व्यवस्था का प्रावधान रहता है। हर मुकदमे की सुनवाई में सर्वोच्च न्यायालय पीठ के रूप में कार्य करता है। कई देशों में दो प्रकार के न्यायालय पाए जाते हैं- सामान्य और प्रशासकीय। इन देशों में सामान्य नागरिक के मुकदमों की सुनवाई हेतु सामान्य न्यायालय तथा प्रशासकीय अधिकारियों के मुकदमे की सुनवाई हेतु प्रशासकीय न्यायालय होते हैं। फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में इसी प्रकार की न्यायालय व्यवस्था है।

न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालय की वह शक्ति है जिसके द्वारा न्यायालय कानूनों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है। न्यायालय को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों की जाँच करने की शक्ति है। वह संविधान का संरक्षक है। संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करने पर वह उसे अवैध घोषित कर सकता है तथा उसे लागू करने से अस्वीकार कर सकता है। न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के कारण अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालय बन गया है। स्विट्ज़रलैंड के संघीय न्यायालय को आंशिक रूप से न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है। उसे

केवल कैंटनों की विधियों की सांविधानिकता जाँच करने का अधिकार है। वस्तुतः स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के कारण इसका कोई अर्थ नहीं रहता है।

### 2.4.4. व्यवस्थापिका के कार्य

सभी देशों में व्यवस्थापिका के कार्य समान नहीं होते, वे शासन-प्रणाली के स्वरूप एवं संविधान की धाराओं पर निर्भर रहते हैं। उदाहरण के तौर पर, निरंकुश राजतंत्र अथवा अधिनायकतंत्र में व्यवस्थापिका एक परामर्शदात्री संस्था मात्र बनकर रह जाती है। वह कार्यपालिका के पूर्ण नियंत्रण में रहती है। इसके विपरीत, लोकतंत्र में विधायिका का स्थान अत्यन्त ऊँचा होता है, क्योंकि वह जो विधियाँ बनाती है उन्हीं को कार्यपालिका व्यवहार में लागू करती है और उन्हीं के सम्बन्ध में न्यायपालिका निर्णय देती है। ब्रिटेन में संसद सभी महत्वपूर्ण कार्य करती है और उसे संप्रभु संसद कहा जाता है। स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष लोकतंत्रीय व्यवस्था के कारण व्यवस्थापिका अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण है। व्यवस्थापिका के कार्य सर्वत्र एक जैसे नहीं होते तथापि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हैं जिन्हें प्रत्येक लोकतंत्रीय राज्य में व्यवस्थापिका को करना होता है। उसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

**(1) कानून निर्माणः-** व्यवस्थापिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य विधि-निर्माण है। वह नये कानूनों का निर्माण करती है और पुराने कानूनों को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप संशोधन करती है।

**(2) कार्यपालिका पर नियंत्रणः-** व्यवस्थापिका का दूसरा प्रमुख कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण है। संसदीय शासन वाले देशों में तो कार्यपालिका पूरी तरह व्यवस्थापिका पर निर्भर होती है। कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। व्यवस्थापिका सरकार की आलोचना कर सकती है, सरकारी नीति पर वाद-विवाद कर सकती है तथा सरकार के विरूद्ध निन्दा का प्रस्ताव पारित कर सकती है। व्यवस्थापिका के सदस्य मंत्रियों से उनके विभागों के बारे में आवश्यक प्रश्न पूछकर, राज्याध्यक्ष के अभिभाषण पर वाद-विवाद कर, बजट में कटौती का प्रस्ताव पारित कर और स्थगन प्रस्ताव लाकर कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है। इसके अतिरिक्त अविश्वास का प्रस्ताव कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने का सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण माध्यम है। व्यवस्थापिका के प्रथम सदन मंत्रिपरिषद् के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उसे अपदस्थ कर सकती है। लेकिन अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण नहीं रखती हैं, फिर भी नियंत्रण का स्वरूप ज्यादा प्रभावशाली होता है। इसीलिए अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियों एवं संधि के प्रस्तावों पर सिनेट का अनुसमर्थन आवश्यक होता है। इसप्रकार अमेरिका की सिनेट राष्ट्रपति के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में काम करती है।

**(3) विमर्शात्मक कार्यः-** व्यवस्थापिका एक विमर्शात्मक निकाय के रूप में भी काम करती है। यहाँ घरेलू, वैदेशिक और राजस्व सम्बन्धी नीतियों और कार्यों पर वाद-विवाद किया जाता है।

**(4) वित्तीय कार्यः-** व्यवस्थापिका राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का नियंत्रण एवं नियमन करती है। प्रत्येक वर्ष के आरंभ में वह अनुमानित आय-व्यय को स्वीकृत करती है। वह राष्ट्रीय बजट को पारित करती है, जिसके द्वारा नये कर लगाए जाते हैं और पुराने करों की दरें घटायी-बढ़ायी जाती है या उन्हें समाप्त किया जाता है। यहाँ तक कि बिना व्यवस्थापिका की अनुमति के एक पैसा भी खर्च नहीं किया जा सकता।

**(5) न्यायिक कार्यः-** कई देशों में व्यवस्थापिका न्यायिक कार्य भी करती है। ब्रिटेन की लॉर्ड सभा देश का सर्वोच्च न्यायालय भी है। भारत और अमेरिका में संसद को राष्ट्रपति और उप राष्ट्रपति पर

महाभियोग लगाने के अधिकार मिले हुए हैं। स्विट्जरलैंड में संघीय सभा संविधान की व्याख्या का कार्य करती है, जो न्यायिक कार्य ही है।

**(6) विविध कार्य:-** उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त व्यवस्थापिका को अन्य कई प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। संविधान में संशोधन, जनता की शिकायतों की सुनवाई तथा निवारण, राज्याध्यक्षों का चुनाव आदि मुख्य कार्य व्यवस्थापिका को करना होता है। सोवियत रूस की व्यवस्थापिका सर्वोच्च सोवियत को विभिन्न प्रकार की नियुक्तियाँ करने का भी अधिकार प्राप्त है। स्विट्जरलैंड की संघीय सभा मंत्रिपरिषद् के सदस्यों, न्यायाधीशों तथा प्रधान सेनापति की नियुक्ति करता है। व्यवस्थापिका को नियुक्ति के साथ-साथ पदच्युति का भी अधिकार है। भारत में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने का प्रस्ताव व्यवस्थापिका द्वारा ही पारित होता है।

### 2.4.5. कार्यपालिका के कार्य

प्राचीन काल में जब राज्य का स्वरूप सैनिक राज्य का था तो कार्यपालिका के कार्य सीमित थे, परन्तु आधुनिक राज्य में कार्यपालिका के कार्यों के क्षेत्र एवं प्रकृति में मौलिक अन्तर हुआ है। साथ ही उसके कार्यों में वृद्धि भी हुई है। कार्यपालिका 'सरकार' शब्द का पर्यायवाची बन गयी है। गेटेल ने कार्यपालिका के पाँच कार्य बतलाए हैं- कुटनीतिक कार्य, प्रशासनिक कार्य, सेना सम्बन्धी कार्य, व्यवस्था सम्बन्धी कार्य और न्याय सम्बन्धी कार्य। कार्यपालिका के प्रमुख कार्यों का विवरण निम्नलिखित हैंः:-

**(1) प्रशासकीय कार्य**:- कार्यपालिका के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रशासकीय कार्य हैं। कार्यपालिका अपने देश की सीमा के अन्तर्गत विधियों को लागूकर शान्ति एवं कानून-व्यवस्था के लिए प्रशासन के विभिन्न एजेन्सियों को गठित करती है तथा उनके लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है।

**(2) कूटनीतिक कार्य:-** कार्यपालिका कूटनीतिक कार्यों का भी संपादन करती है। इसके अन्तर्गत विदेशी मामले भी आ जाते हैं। वह विदेश में राजदूतों एवं राजनयिकों की नियुक्ति करती है तथा विदेशों से आनेवाले राजदूतों का प्रमाण-पत्र ग्रहण करती है। विदेशों के साथ सन्धि एवं समझौते करने और उन्हें लागू करने में कार्यपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसके अलावे विदेशों के साथ आर्थिक, राजनीतिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने की जिम्मेदारी भी कार्यपालिका की ही है।

**(3) सैनिक कार्य:-** आधुनिक युग में मुख्य कार्यपालक को ही सेना का प्रधान कहा जाता है। भारत का राष्ट्रपति सेना के तीनों अंगों का प्रधान हैं। वह सेना के प्रधानों की नियुक्ति करते है तथा उसे युद्ध या अन्य प्रयोजनों के लिए आदेश देते हैं। युद्ध, युद्ध-विराम एवं शांति की घोषणा भी कार्यपालिका के कार्य हैं।

**(4) विधायिनी कार्य:-** कार्यपालिका विधायिनी कार्यों का भी संपादन करती है। संसदीय शासन में विधि-निर्माण की वास्तविक जिम्मेदारी कार्यपालिका की होती है। विधेयकों को प्रस्तावित करने से लेकर उन्हें पारित करने की जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। वह अध्यादेश भी जारी करती है। अध्यक्षात्मक शासन में शक्तियों के पृथक्करण के कारण कार्यपालिका सक्रिय रूप से विधि-निर्माण की प्रक्रियाओं में तो भाग नहीं लेती है, परन्तु संदेश भेजकर एवं निषेधाधिकार के कारण वह विधायन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। आधुनिक युग में प्रदत्त विधायन के कारण भी विधायिनी क्षेत्र में कार्यपालिका की भूमिका सक्रिय एवं महत्वपूर्ण हो गयी है।

**(5) वित्तीय कार्य:-** शासन का वार्षिक आय-व्यय निर्धारित करने का कार्य भी कार्यपालिका का है। राष्ट्रीय बजट पास करना और आर्थिक व्यवस्था पर नियंत्रण रखना आदि विधायिका के कार्य हैं, परन्तु

इस दिशा में पहल एवं मार्गदर्शन कार्यपालिका ही करती है। कार्यपालिका देश की संचित निधि का संरक्षक होती है। विधायिका की स्वीकृति के अभाव में वह आकस्मिक निधि से राशि निकालकर व्यय कर सकती है।

**(6) न्यायिक कार्य:-** कार्यपालिका को न्यायिक कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है। वह न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है, न्यायालय द्वारा दंडित व्यक्तियों के दंड को कम कर सकती है, स्थगित कर सकती है तथा क्षमा प्रदान कर सकती है।

**(7) अन्य कार्य:-** कार्यपालिका को इसके अतिरिक्त अन्य कार्यों का भी संपादन करना होता है, जैसे उपाधियों का वितरण करना, राष्ट्रीय आयोजन करना, विदेशियों को नागरिकता के अधिकार प्रदान करना आदि। कार्यपालिका संकटकालीन स्थितियों में असामान्य शक्तियों का भी प्रयोग करती है।

आधुनिक युग में कार्यपालिका सांविधानिक कार्यों के अतिरिक्त कतिपय राजनीतिक कार्यों का भी संपादन करती है। मैक्रिडिस ने कार्यपालिका के पाँच राजनीतिक कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया है- ;पद्ध प्रतिनिधित्व व एकीकरण, ;पपद्ध नेतृत्व, ;पपपद्ध विचार-विमर्श एवं निर्णय, ;पअद्ध निरीक्षण, कार्यान्वयन एवं नियंत्रण और ;अद्ध उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही। आधुनिक युग में कार्यपालिका के राजनीतिक कार्य उसके सांविधानिक कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

### 2.4.6. न्यायपालिका के कार्य

न्यायपालिका शासन का वह अंग होती है जो विधियों की व्याख्या करती है तथा उनका उल्लंघन करने वालों को उचित दण्ड देती है। आधुनिक राज्य में न्यायपालिका निम्नलिखित मुख्य कार्यों का संपादन करती है-

**(1) कानूनों की व्याख्या करना:-** न्यायपालिका का प्रमुख कार्य कानूनों की व्याख्या करना है। प्रायः कानून अस्पष्ट तथा क्लिष्ट भाषा में होते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश अपने विवेकानुसार कानूनों की व्याख्या करते हैं और उनके अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

**(2) झगड़ों का निर्णय:-** न्यायपालिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है झगड़ों एवं विवादों का फैसला करना। पुराने जमाने में पंचों के द्वारा आपसी झगड़ों को दूर किया जाता था, लेकिन यह काम अब न्यायपालिका करती है। न्यायपालिका नागरिकों के आपसी विवादों का फैसला करती है और कानून का उल्लंघन करनेवालों को दण्ड या सजा देती है।

**(3) संविधान की रक्षा:-** संविधान की रक्षा करना न्यायपालिका का पुनीत कार्य है। संविधान देश की शासन-व्यवस्था का आधार है। न्यायपालिका विधायिका द्वारा पारित वैसे कानून जो संविधान की भावना के प्रतिकूल हो तो उसे असंवैधानिक घोषित करती है। इसे न्यायिक पुनर्निरीक्षण कहते हैं। न्यायपालिका के कारण ही संविधान की पवित्रता बनी रहती है।

**(4) कानून-निर्माण:-** न्यायपालिका कानून-निर्माण का भी कार्य करती है। समय-समय पर कानूनों की व्याख्या करने के क्रम में न्यायपालिका नये कानून का भी निर्माण करती है। औचित्य के आधार पर भी कानून का निर्माण किया जाता है। न्यायपालिका द्वारा निर्मित कानून को केस-लॉ कहा जाता है।

**(5) नागरिकों के अधिकारों की रक्षा:-** न्यायपालिका पर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की भी जिम्मेदारी रहती है। न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों का संरक्षक माना जाता है। मौलिक अधिकारों की रक्षा के क्रम में न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख एवं आदेश जारी करता है।

**(6) अपील सुननाः-** न्यायपालिका को प्रशासनिक विभागों या प्राधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। भारत में न्यायालय श्रम-न्यायालय, आयकर विभाग, चुनाव आयोग के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनता है।
**(7) परामर्श सम्बन्धी कार्यः-** अनेक राज्यों में न्यायपालिका परामर्श देने का भी कार्य करती है। भारत में कई मामलों में राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकता है। ब्रिटेन में प्रिवी कौंसिल भी परामर्श देने का कार्य करती थी।
**(8) प्रशासकीय कार्यः-** न्यायपालिका प्रशासकीय कार्य भी सम्पादित करती है। अपने अधीन काम करनेवाले कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनकी सेवा-सम्बन्धी शत्र्तों को निर्धारित करना, अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण एवं अधीक्षण न्यायपालिका के कुछ प्रशासकीय कार्य हैं।
**(9) विविध कार्य-** न्यायालय अल्पवयस्क या नाबालिगों की जायदाद के लिए ट्रस्टी या संरक्षक नियुक्त करता है। निर्वाचन सम्बन्धी विवादों की अपील सुनता है। वसीयतनामों तथा इच्छा-पत्रों की रजिस्ट्री भी न्यायपालिका द्वारा होती है।

तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक संदर्भ में न्यायपालिका के निम्नलिखित कार्य हैंःः- ;पद्ध राजनीतिक व्यवस्था में संस्थाओं के बीच विवाचन, ;पपद्ध राजनीतिक व्यवस्था के लिए सामान्य समर्थन, ;पपपद्ध न्यायिक समीक्षा और संविधान की व्याख्या, ;पअद्ध शान्ति बनाए रखना, ;अद्ध विवादों का निर्णय और ;अपद्ध व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा।

### 2.4.7. व्यवस्थापिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन

वैधानिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद की प्रभुसत्ता ब्रिटिश संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। ब्रिटिश संसद कानून-निर्माण की सामान्य प्रक्रिया के आधार पर ही सभी विषयों के सम्बन्ध में कानून का निर्माण कर सकती है और इसके द्वारा निर्मित कानून को किसी के भी द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से कानून-निर्माण के क्षेत्र एवं ब्रिटिश संसद को प्राप्त इस असीमित शक्ति को ही 'संसद की संप्रभुता' कहा जाता है। अमेरिका की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका काँग्रेस ब्रिटिश संसद से मूलभूत रूप में भिन्न है। यह ब्रिटिश संसद से न केवल शक्तियों की दृष्टि से वरन् कार्यपालिका विभाग के साथ सम्बन्धों में भी भिन्न है।

ब्रिटिश संसद विश्व की एकमात्र संप्रभु व्यवस्थापिका है और इसकी कानून-निर्माण की शक्ति की कोई वैधानिक सीमा नहीं है। इसके द्वारा किसी भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। ब्रिटेन में न्यायिक पुनर्विलोकन की कोई व्यवस्था नहीं है और ऐसी कोई सत्ता नहीं है जो संसद द्वारा पारित कानूनों को अवैधानिक घोषित कर सके। लेकिन अमरीकी कांग्रेस एक संप्रभु संस्था नहीं है और इसकी शक्तियाँ प्रभावशाली होते हुए भी दो रूपों में बहुत अधिक सीमित हैं। अमरीकी कांग्रेस की शक्तियों की प्रथम सीमा उसकी संघात्मक व्यवस्था के कारण है। संविधान के द्वारा केन्द्रीय सरकार और इकाइयों की सरकारों में शक्ति विभाजन किया गया है, और अनेक विषयों पर संघीय कांग्रेस द्वारा नहीं बल्कि इकाइयों के विधानमंडलों के द्वारा ही कानूनों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश संसद सभी विषयों पर कानून का निर्माण करने में स्वतंत्र है, लेकिन अमरीकी कांग्रेस केवल संघीय विषयों पर ही कानूनों का निर्माण करती है। अमरीकी कांग्रेस की शक्तियों की दूसरी सीमा सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त न्यायिक

पुनर्विलोकन की शक्ति है। सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति अमरीकी कांग्रेस की विधि-निर्माण की शक्ति पर एक बहुत बड़ा प्रतिबंध है।

अमरीकी कांग्रेस और ब्रिटिश संसद, इन दो व्यवस्थापिकाओं में न केवल शक्ति की दृष्टि से, वरन् अपने-अपने देश की कार्यपालिका के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण अन्तर है। ब्रिटेन की संसदात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं। मंत्रिमंडल के सदस्य संसद से ही लिए जाते हैं और वे संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि लोकसदन बहुमत से अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दे, तो मंत्रिमंडल का पतन हो जाता है। सिद्धान्ततः संसद, विशेष रूप से लोकसदन मंत्रिमंडल का स्वामी कहलाता है। जबकि अमेरिका में शक्ति-विभाजन के कारण कांग्रेस और राष्ट्रपति एक-दूसरे से बिल्कुल अलग है। राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के सदस्य काँग्रेस के सदस्य नहीं हो सकते। राष्ट्रपति और कांग्रेस न केवल एक-दूसरे से पृथक बल्कि पूर्ण स्वतंत्र भी हैं। कांग्रेस महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी प्रक्रिया से राष्ट्रपति को चार वर्ष की निश्चित अवधि के पूर्व पदच्युत नहीं कर सकती और न ही राष्ट्रपति कांग्रेस के किसी सदन को भंग कर सकता है।

इसप्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से अमरीकी कांग्रेस की स्थिति ब्रिटिश संसद की तुलना में बहुत कम महत्वपूर्ण है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से अमरीकी कांग्रेस को ब्रिटिश संसद की तुलना में अधिक शक्ति प्राप्त है। कानून-निर्माण और राष्ट्रीय वित्त पर कांग्रेस को जैसा प्रभावी नियंत्रण प्राप्त है, आज की स्थिति में ब्रिटिश संसद को वैसा प्रभावी नियंत्रण प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस, विशेषतया सीनेट के द्वारा राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियों पर भी प्रभावशाली नियंत्रण रखा जाता है।

सीनेट अमरीकी कांग्रेस का द्वितीय सदन है। सीनेट अन्य राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के द्वितीय सदन की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली है। इसीलिए लिण्डले रोजर्स ने कहा है कि ''सीनेट विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली सदन है। दूसरे देशों की राजनीतिक व्यवस्था में तो द्वितीय सदन की शक्तियाँ कम हुई हैं, परन्तु सीनेट की शक्तियों का विस्तार हुआ है।'' जहाँ सीनेट विश्व के द्वितीय सदनों में सबसे अधिक शक्तिशाली है, वहाँ लॉर्ड सभा को विश्व के द्वितीय सदनों में सबसे अधिक शक्तिहीन कहा जाता है। लॉर्ड सभा के अधिकांश सदस्य वंश-परम्परा के आधार पर पद ग्रहण करते हैं और उनकी सदस्यता आजीवन प्राप्त रहती है। वे जन-प्रतिनिधि नहीं हो सकते। जबकि सीनेट के सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर पद ग्रहण करते हैं और उनका कार्यकाल 6 वर्ष होता है। वे सच्चे जन-प्रतिनिधि होते हैं। लॉर्ड सभा के सदस्य जहाँ अपने पद और कत्र्तव्यों के प्रति उदासीन होते हैं, वहीं सीनेट के सदस्य अधिकाधिक सक्रिय होते हैं। शक्तियों की दृष्टि से सीनेट लॉर्ड सभा की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली है।

लेकिन न्यायिक क्षेत्र में लॉर्ड सभा सीनेट से अधिक शक्तिशाली है। सीनेट और लॉर्ड सभा दोनों को ही निम्न सदन द्वारा लगाये गये महाभियोग को सुनने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन लॉर्ड सभा ब्रिटेन में अपील का सर्वोच्च न्यायालय भी है और उसे पीयर लोगों के देशद्रोह से सम्बन्ध रखनेवाले महाभियोग को सुनने का प्रारंभिक क्षेत्राधिकार भी प्राप्त है। जबकि ये अधिकार सीनेट के पास नहीं है। तथापि ब्रिटेन की लॉर्ड सभा जहाँ लोक सदन की तुलना में बहुत निर्बल है, वहाँ अमरीका की सीनेट प्रतिनिधि सभा की तुलना में बहुत सबल है। अमरीकी सीनेट स्विट्जरलैंड की द्वितीय सदन राज्य परिषद् से भी पर्याप्त शक्तिशाली है। स्विस राज्य परिषद् को नियुक्तियों और संधियों के विषय में अमरीकी सीनेट की तरह अधिकार प्राप्त नहीं है। इसे कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है।

विश्व के अन्य देशों की तरह संयुक्त राज्य अमेरिका में भी द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका है लेकिन निम्न सदन को जन-आकांक्षाओं के प्रतिनिधि के कारण लोकतंत्र का सजग प्रहरी माना जाता है और उच्च सदन की तुलना में अधिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जबकि अमरीका में प्रतिनिधि सभा सीनेट की तुलना में दुर्बल है। अमरीका में राष्ट्रपति पर नियंत्रण की शक्ति सीनेट को प्राप्त है, प्रतिनिधि सभा को नहीं। अमेरिका में द्वितीय या उच्च सदन सीनेट ज्यादा शक्तिशाली है। भारत, ब्रिटेन और फ्रांस में द्वितीय सदन प्रथम सदन की अपेक्षा कमजोर और निर्बल है। स्विट्जरलैंड में कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने, न्यायिक शक्तियों के प्रयोग करने, संविधान में संशोधन करने तथा अन्य मामलों में राष्ट्रीय परिषद् तथा राज्य परिषद् दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। स्विट्जरलैंड में जनमत-संग्रह एवं आरंभण के कारण भी संघीय सभा के दोनों सदनों की स्थिति समान हो गयी है। वहीं सर्वोच्च सोवियत आजतक मुख्य रूप से एक अनुसमर्थक एवं प्रचारक संस्था के रूप में साम्यवादी दल के केन्द्रीय समिति के निदेशानुसार काम करती है।

**2.4.8. कार्यपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन**

अमरीकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश सम्राट में एक मात्र समानता यह है कि ये दोनों ही सम्बन्धित राज्यों के प्रधान हैं, इसलिए दोनों को कई औपचारिक कार्य करने होते हैं, जैसे, विदेशी राजदूतों का स्वागत करना, समारोहों का उद्घाटन करना, स्वागत समारोह करना और औपचारिक भाषण करना आदि। लेकिन इस क्षेत्र में भी दोनों की स्थिति में महत्वपूर्ण अन्तर है। क्योंकि ब्रिटिश सम्राट एक वैधानिक प्रधानमात्र है, अतः ये कार्य उसके कर्तव्यों का प्रमुख भाग है। लेकिन अमरीकी राष्ट्रपति न केवल राज्य बल्कि राष्ट्रीय प्रशासन का भी प्रमुख होता है, अतः उसके द्वारा किए जानेवाले ये औपचारिक कार्य उसके कर्तव्यों का बहुत छोटा एवं अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण भाग होता है। ब्रिटेन का सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं करता। अर्थात् सम्राट को शासन के क्षेत्र में कोई वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त नहीं है। ब्रिटिश सम्राट तो एक वंशानुगत सम्राट है, जिसे महिमा और गौरव तो प्राप्त है लेकिन शक्ति नहीं। सच तो यह है कि सम्राट के पास अब केवल प्रोत्साहन, परामर्श और चेतावनी देने का अधिकार ही रह गया है। जबकि अमरीकी राष्ट्रपति वास्तविक कार्यपालिका है। उसके द्वारा उन सभी शक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिनका प्रयोग ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और मंत्रीमंडल करते हैं। वह मन्त्रियों की नियुक्ति और पदच्युति, सेना के विभिन्न अंगों के प्रधानों तथा अन्य महत्वपूर्ण प्रशासनिक और राजनीतिक पदों पर नियुक्तियाँ करता है।

ब्रिटिश सम्राट को प्रशासनिक आदेश या अध्यादेश जारी करने का अधिकार नहीं है, लेकिन अमरीकी राष्ट्रपति प्रशासनिक आदेश जारी कर सकता है और अनेक उपायों से विधि-निर्माण कार्य को प्रभावित कर सकता है। ब्रिटेन में सम्राट परामर्श देता है और निर्णय मंत्री करते हैं, लेकिन अमरीका में निर्णय राष्ट्रपति करता है और मंत्रियों को उसकी आज्ञानुसार चलना होता है। इस प्रकार सम्राट अमरीकी राष्ट्रपति की तुलना में केवल नाममात्र का प्रधान होता है, लेकिन सम्राट के व्यक्तित्व में जो आकर्षण है और उसके पद में जो गौरव है, वह राष्ट्रपति के व्यक्तित्व एवं पद में नहीं है। ब्रिटिश सम्राट निष्पक्ष तथा निर्दलीय होता है, इसीलिए ब्रिटेन का प्रत्येक नागरिक उसकी इज्जत करता है, लेकिन अमरीका का राष्ट्रपति दलीय प्रतिनिधि होता है, इसीलिए उसे अपने विरोधी पक्ष की आलोचना सहन करती होती है।

सम्राट जीवनपर्यन्त शासन करता है, लेकिन अमरीकी राष्ट्रपति केवल 4 वर्ष की अवधि के लिए निर्वाचित होता है। अतः अमरीका का राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट से अधिक भी है और कम भी।

इसप्रकार ब्रिटिश सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं और ब्रिटिश प्रधानमंत्री शासन करता है, राज्य नही, जबकि अमरीकी राष्ट्रपति राज्य भी करता है और शासन भी। अमरीकी राष्ट्रपति और ब्रिटेन का प्रधानमंत्री दोनों ही अपने-अपने देशों में प्रमुख शासनाधिकारी हैं। ब्रिटेन में एकात्मक शासन-व्यवस्था होने के कारण प्रधानमंत्री पूरे ब्रिटेन के लिए कार्य करता है जबकि अमरीका में संघात्मक शासन-व्यवस्था होने के कारण राष्ट्रपति संघीय क्षेत्र में ही कार्य कर सकता है, इकाइयों में नहीं। प्रशासनिक क्षेत्र में अमरीकी राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से अधिक शक्तिशाली होता है, क्योंकि राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होता है जबकि प्रधानमंत्री का कार्यकाल लोकसदन के विश्वास पर निर्भर करता है। ब्रिटेन का मंत्रिमंडल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित है। वहाँ सम्पूर्ण मंत्रिमंडल कॉमन सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायित्व का सिद्धान्त नहीं है। ब्रिटेन में मंत्रिमंडल के सदस्य प्रधानमंत्री के अधीनस्थ पदाधिकारी नहीं होते बल्कि सहयोगी होते हैं। जबकि अमेरिका में मंत्रिमंडल के सदस्य राष्ट्रपति के सहयोगी नहीं बल्कि अधीनस्थ पदाधिकारी होते हैं। लास्की ने कहा है कि ''अमेरिकी मंत्रिमंडल राष्ट्रपति के सलाहकारों की एक संस्था है। यह सहयोगियों की एक ऐसी परिषद् नहीं है जिसके साथ उसे कार्य करना है और जिसकी सहमति पर वह निर्भर करता है।''

यद्यपि अमरीकी राष्ट्रपति की कार्यपालिका-शक्तियाँ अधिक हैं। वह मुख्य कार्यपालक है, मंत्रिमंडल पर उसका एकछत्र अधिकार है। संविधान के अन्तर्गत समस्त कार्यपालिका-शक्तियाँ राष्ट्रपति को ही सौंपी गयी हैं। घरेलू एवं वैदेशिक क्षेत्रों में उसका एकाधिकार है। वह सेना का प्रधान है और सारे उच्चतर पदों पर नियुक्तियाँ उसी के द्वारा की जाती हैं। जबकि ब्रिटेन में कार्यपालिका-शक्तियाँ सम्राट को दी गयी हैं, परन्तु व्यवहार में प्रधानमंत्री ही समस्त कार्यपालिका-शक्तियों का वास्तविक अधिकारी है। प्रधानमंत्री का कार्यपालिका-क्षेत्र में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। जबकि अमेरिका में सिनेट कार्यपालिका-शक्तियों पर नियंत्रण रखता है। इसीलिए रोशे एवं स्टेडमैन ने कहा है कि ''ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से बहुत ज्यादा शक्तिशाली है।''

उसी प्रकार अमेरिका का राष्ट्रपति और फ्रांस का राष्ट्रपति दोनों कई दृष्टियों से समान होते हुए भी कई विन्दुओं पर असमान है। क्योंकि अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है जबकि फ्रांस में अध्यक्षात्मक और संसदीय शासन दोनों का मिश्रित रूप है। शक्तियों और स्थिति के संदर्भ में भी दोनों के बीच अन्तर पाया जाता है। फ्रांस का राष्ट्रपति कार्यपालिका और विधायिनी शक्तियों के साथ-साथ आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करता है और राष्ट्रपति पर संसद का नियंत्रण नहीं है। जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त नहीं है और उनके कार्यपालिका शक्तियों पर सिनेट का नियंत्रण रहता है। विधायिनी क्षेत्र में दोनों की शक्तियाँ प्रायः समान ही है। अमेरिका में राष्ट्रपति या मंत्रिमंडल कांग्रेस के किसी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं है, परन्तु फ्रांस में मंत्रीमंडल राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है। जबकि दोनों विधायिका के सदस्य नहीं होते हैं।

इस प्रकार दोनों राष्ट्रपतियों की शक्तियों का तुलना के क्रम में यह कहा जा सकता है कि कई ऐसे अधिकार हैं जो फ्रांस के राष्ट्रपति को प्राप्त हैं परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं हैं। आपातकालीन शक्तियाँ, विधायिका के प्रथम सदन को भंग करने की शक्ति, विधेयकों को जनमत संग्रह के लिए भेजने की शक्ति, ये शक्तियाँ फ्रांस के राष्ट्रपति को प्राप्त हैं, परन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं हैं। इसके

अतिरिक्त अमेरिका में न्यायालय और सिनेट राष्ट्रपति के दो मजबूत प्रतिद्वंद्वी हैं, जबकि फ्रांस के राष्ट्रपति को ऐसे प्रतिद्वंद्वी नहीं है। तथापि अनेक शक्तियों के बाबजूद फ्रांस का राष्ट्रपति अमेरिकी राष्ट्रपति की तरह शक्तिशाली शासक या लोकनेता नहीं हो सका है। क्योंकि फ्रांस में मंत्रिमंडल को राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है न कि राष्ट्रपति के प्रति।

विश्व के कुछ देशों में सामूहिक कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी है, जैसे स्विट्जरलैंड और सोवियत रूस। सोवियत रूस में प्रेजीडियम सामूहिक कार्यपालिका के उदाहरण हैं। प्रेजीडियम सोवियत रूस की कार्यपालिका है। समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ प्रेजीडियम में ही निहित हैं। वैसे तो सिद्धान्ततः प्रेजीडियम सर्वोच्च सोवियत की समिति मात्र है, परन्तु व्यवहार में इसका व्यापक प्रभाव है। तथापि सोवियत मंत्रिपरिषद् ब्रिटिश मंत्रिमंडल से भिन्न है। ब्रिटिश मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका एवं सर्वशक्तिमान है। सम्राट, संसद और दल तीनों को मंत्रिमंडल प्रभावित करता है। जबकि सोवियत रूस में मंत्रिपरिषद् ब्रिटेन के मंत्रिमंडल की भाँति न तो प्रेजिडियम को नियंत्रित कर सकती है और न ही दल को। वस्तुतः सोवियत रूस में समस्त शक्तियों का स्रोत एवं केन्द्र बिन्दु साम्यवादी दल है। ऑग और जिंक ने लिखा है कि ''केवल औपचारिक दृष्टि से ही मंत्रिपरिषद् एक सर्वोच्च कार्यपालिका मानी जाती है। वस्तुतः पोलिटब्यूरो के रहते उसे वह स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।''

स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका ब्रिटेन तथा अमेरिका से भिन्न है। क्योंकि यह न तो संसदीय कार्यपालिका है और न ही अध्यक्षात्मक कार्यपालिका है। स्विस कार्यपालिका की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है इसका बहुल होना और निर्दलीयता। ब्रिटेन के मंत्रिमंडल में प्रायः एक ही दल के सदस्य होते हैं। सोवियत रूस की प्रेजीडियम के सभी सदस्य साम्यवादी दल के शीर्ष नेता होते हैं। स्विस संघीय परिषद् के सदस्यों के लिए एक दल का सदस्य होना आवश्यक नहीं है। संघीय परिषद् कार्यपालिका का तो प्रधान है ही, विधायिनी क्षेत्र में भी इसके अनन्य अधिकार हैं। संघीय परिषद् ब्रिटिश मंत्रिमंडल के समान तथा फ्रेंच मंत्रिमंडल से अधिक शक्तियों का प्रयोग करती है। डायसी ने कहा है कि ''संघीय परिषद् एक ऐसा निदेशक मंडल है जो संघीय सभा के इच्छानुसार राज्यमंडल के समस्त कार्यों का प्रबंध करती है।''

### 2.4.9. न्यायपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन

ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धान्त के कारण न्यायपालिका का वह महत्व नहीं है जो भारत और अमेरिका में है। ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है 'विधि का शासन'। जिसका अर्थ है कानून का प्रभुत्व अथवा सामान्य विधि की सर्वोच्चता। यदि ब्रिटेन विधि के शासन के लिए विख्यात है तो फ्रांस प्रशासकीय विधि के लिए। ब्रिटेन, अमेरिका, भारत आदि देशों में न्यायपालिका को शासन का एक स्वतंत्र अंग माना गया है, जिसमें व्यवस्थापिका या कार्यपालिका कोई हस्तक्षेप नहीं करती। लेकिन फ्रांस में न्यायपालिका को एक मूलतः प्रशासकीय अंग माना गया है और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को मान्यता नहीं दी गयी है। ब्रिटेन में सामान्य विधि सर्वोच्च है। लेकिन फ्रांस में सामान्य विधि और प्रशासकीय विधि दोनों समान हैं। विधि का शासन समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री से लेकर सामान्य नागरिक तक विधि की दृष्टि में समान हैं। जबकि फ्रांस में विधि के समक्ष समानता का सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है। फ्रांस में प्रशासकीय विधि में सामान्य नागरिकों तथा प्रशासकीय पदाधिकारियों में असमानता बरता जाता है। प्रशासकीय विधि संहिताबद्ध है, परन्तु विधि का शासन संहिताबद्ध नहीं है। इसके अधिकांश भाग अलिखित हैं। विधि के शासन के अन्तर्गत सामान्य

विधि परम्पराओं एवं अभिसमयों की उपज है, परन्तु प्रशासकीय विधि सांविधिक विधि है जिसका निर्माण संसद या अन्य स्थापित संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। विधि के शासन के अन्तर्गत नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पूर्णतः सुरक्षित है। क्योंकि नागरिकों के मौलिक अधिकार सामान्य विधि की उपज हैं और न्यायालय उनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। जबकि फ्रांस में मौलिक अधिकार सामान्य विधि की उपज नहीं है और न्यायालय भी तीव्रता के साथ उनकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील नहीं रहता है।

यद्यपि कई समीक्षकों ने दोनों की तुलना के क्रम में विधि के शासन की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु सच तो यह है कि दोनों के अपने गुण भी हैं तथा अपने दोष भी हैं। आज ब्रिटेन में अनेक प्रशासकीय नियम पनप गये हैं तथा अनेक प्रशासकीय न्यायाधिकरण काम कर रहे हैं। फ्रांस में प्रशासकीय विधि के कारण न्याय सुलभ एवं सस्ता है, जबकि ब्रिटेन में न्याय बहुत मँहगा है। लॉर्ड सभा अपील का सर्वोच्च न्यायालय है। यह दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के लिए अपील का अन्तिम न्यायालय है। ब्रिटेन के न्यायालयों को अमेरिका के न्यायालयों की भाँति न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त नहीं है। यह संगठन एवं अधिकार क्षेत्र दोनों दृष्टिकोण से भारत एवं अमेरिका के न्यायालयों से भिन्न है।

स्विट्जरलैंड में संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह संघात्मक शासन व्यवस्था है, जिसके कारण दोनों में काफी समानता होनी चाहिए। लेकिन वस्तुतः दोनों के संगठन और शक्तियों में महत्वपूर्ण अन्तर है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायपालिका है। क्योंकि प्रारंभिक एवं अपीलीय क्षेत्राधिकारों के अतिरिक्त इसे न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है। वह संघीय कांग्रेस तथा राज्यों के विधानमंडलों के अधिनियमों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है तथा अवैध घोषित कर सकता है। अमरीकी न्याय व्यवस्था के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है जिसके नीचे अनेक संघीय न्यायालय हैं। जबकि स्विट्जरलैंड में संघीय न्यायालय एकमात्र संघीय स्तर का न्यायालय है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश कार्यपालिका तथा विधायिका से स्वतंत्र होकर काम करते हैं। जबकि स्विट्जरलैंड में न्यायाधीश स्वतंत्र नहीं हैं। स्विस संघीय न्यायालय के न्यायाधीश विधायिका यानी संघीय सभा के अधीन होकर काम करते हैं। उनकी नियुक्ति संघीय सभा के द्वारा की जाती है।

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय तथा स्विस संघीय न्यायालय के बीच बड़ा अन्तर यह है कि अमेरिका की तरह स्विस संघीय न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसे आंशिक रूप से ही न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है, जिसके कारण संघीय न्यायालय केवल कैण्टन की विधियों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है। यह संघीय विधियों की सांविधानिकता की जाँच करने में अक्षम है। तथापि दीवानी तथा फौजदारी मामलों में स्विस संघीय न्यायालय अमेरीकी सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा ज्यादा शक्तिशाली है, क्योंकि स्विट्जरलैंड में दीवानी तथा फौजदारी विधि संघ सरकार के अधीन हैं, जबकि अमेरिका में यह राज्य सरकार के अधीन हैं। स्विस संघीय न्यायालय को दीवानी, फौजदारी तथा सांविधानिक तीनों क्षेत्रों में व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। जबकि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है। लेकिन सच है कि स्विस संघीय न्यायालय की वह स्थिति तथा प्रतिष्ठा नहीं है जो अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय की है।

सोवियत संघ की न्याय व्यवस्था में शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है। यह देश का सर्वोपरि निकाय है। ब्रिटेन की तरह सोवियत रूस में एक ही प्रकार के न्यायालय हैं। यहाँ फ्रांस की तरह अलग से प्रशासकीय न्यायालय नहीं है। सोवियत रूस में विकेन्द्रित न्याय-व्यवस्था होते हुए भी न्यायिक प्रक्रिया में एकरूपता पायी जाती है। क्योंकि सभी न्यायालयों के संगठन की रूपरेखा संविधान के द्वारा ही निर्धारित कर दी गयी है। सोवियत रूस में न्यायिक पुनर्विलोकन का अभाव है। वहाँ न्यायपालिका सुधारवादी दृष्टिकोण से काम करती है। यहाँ तक कि भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका की तरह वकालत पेशा स्वतंत्र और व्यक्तिगत पेशा नहीं है। इस पर राज्य का नियंत्रण रहता है। सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय एक प्रकार से राजनीतिक न्यायालय है। यह अमेरिका या भारत की तरह स्वतंत्र न्यायालय नहीं है। अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि सोवियत रूस का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका, भारत या स्विस सर्वोच्च न्यायालय की तरह न तो स्वतंत्र है और न उतनी शक्तिशाली है।

**2.4.10. व्यवस्थापिकाओं की स्थिति**

ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत के कारण कॉमन्स सभा के कार्य एवं शक्तियाँ व्यापक हैं। विधि-निर्माण में उसकी व्यापक शक्ति है। कार्यपालिका पर भी नियंत्रण रखती है। मंत्रिमंडल कामन्स सभा की उपेक्षा नहीं कर सकता है क्योंकि संपूर्ण मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से उसके प्रति उत्तरदायी होता है। लेकिन व्यवहार में ब्रिटेन में शासन के हर क्षेत्र में मंत्रिमंडल का प्रभुत्व कायम है। न केवल प्रशासनिक क्षेत्र में, बल्कि विधि-निर्माण के क्षेत्र में भी मंत्रिमंडल का प्रभुत्व है। सच तो यह है कि कठोर दलीय अनुशासन के कारण कामन्स सभा मंत्रिमंडल द्वारा नियंत्रित होता है। तथापि मंत्रिमंडल कामन्स सभा की अवहेलना नहीं कर सकता है। ब्रिटेन में कामन्स सभा राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त करने का भी एक मार्ग है। जबकि ब्रिटेन में लॉर्ड सभा की शक्तियों एवं कार्यों को देखते हुए हम उसे एक औपचारिक सदन कह सकते हैं। यह न केवल द्वितीय सदन है, बल्कि एक गौण सदन भी है। आज लॉर्ड सभा विश्व का सबसे कमजोर द्वितीय सदन माना जाता है।

अमेरिका का प्रतिनिधि सभा लोकप्रिय सदन होते हुए भी ब्रिटिश कामन्स सभा या भारतीय लोकसभा की तरह शक्तिशाली नहीं है। अमेरिका में सिनेट प्रतिनिधि सभा की प्रतिद्वन्द्वी है। हरेक क्षेत्र में दोनों को समान अधिकार है। कई क्षेत्रों में तो सिनेट प्रतिनिधि सभा से ज्यादा शक्तिशाली है। अमेरिका की सिनेट विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली द्वितीय सदन है। अन्य देशों की तरह यह प्रथम सदन का अधीनस्थ सदन नहीं है। वस्तुतः अमेरिका में प्रतिनिधि सभा गौण सदन हो जाती है और सिनेट प्रधान सदन बन जाती है।

फ्रांस में राष्ट्रीय सभा और सिनेट के अधिकार समान हैं। दोनों सहमति के बिना न तो कोई विधेयक पारित हो सकता है और न ही कोई धन विधेयक। यद्यपि युद्ध की घोषणा, साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में निषेधाधिकार आदि के कारण सिनेट की शक्ति एवं प्रभाव में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। तथापि राष्ट्रीय सभा मात्र औपचारिक एवं कमजोर सदन नहीं है। वस्तुतः दोनों के अधिकार समान हैं। कई क्षेत्रों में तथा कई दृष्टिकोणों से सिनेट राष्ट्रीय सभा से ज्यादा प्रभावशाली बनायी गयी है। इसीलिए फ्रेंच सिनेट की स्थिति अमेरिकी सिनेट तथा ब्रिटिश लॉर्ड सभा के बीच की स्थिति है।

सोवियत रूस की संघीय विधायिका यानी सर्वोच्च सोवियत की स्थिति अलग है। सिद्धान्ततः उसके अधिकार एवं कार्य का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है, परन्तु व्यवहार में वास्तविक स्थिति कुछ और है।

सोवियत रूस में प्रशासन के सभी अंगों पर साम्यवादी दल का नियंत्रण है। साम्यवादी दल के निदेशानुसार ही सर्वोच्च सोवियत विधि-निर्माण का कार्य करती है तथा कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है। उसके सारे कार्य प्रेजिडियम करती है। सर्वोच्च सोवियत प्रेजिडियम द्वारा लिए गए निर्णयों का अनुसमर्थन करती है। इसीलिए टाउस्टर ने कहा है कि ''सर्वोच्च सोवियत आजतक मुख्य रूप से एक अनुसमर्थक एवं प्रचारक संस्था के रूप में काम करती रही है।''

इसी प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से स्विस संघीय सभा को सर्वोच्च संस्था कहा जाता है। कुछ अर्थों में इसकी सर्वोच्चता ब्रिटिश संसद् की सर्वोच्चता के समान है। इसे न केवल संघ के सम्बन्ध में, वरन् कैण्टनों के सम्बन्ध में भी आवश्यक अधिकार प्राप्त है। लेकिन व्यवहार में संघीय सभा की सत्ता कई दृष्टियों से तथा कई स्तरों पर मर्यादित है। स्विट्जरलैंड में जनमत संग्रह और आरंभण की व्यवस्था के कारण संघीय सभा की सत्ता मर्यादित हो जाती है। कोडिंग के शब्दों में ''स्विस व्यवस्थापिका को वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है जिसकी कल्पना 1843 के संविधान निर्माताओं ने की थी।'' इसके बाबजूद संघीय सभा एक व्यवस्थापिका के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। लॉर्ड ब्राइस के कथनानुसार, ''स्विट्जरलैंड की संघीय सभा बड़ी ईमानदारी से कार्य करनेवाली संस्था है जो शांति और देश प्रेम से प्रभावित होकर अपना कार्य सम्पन्न करती है।'' स्विस संघीय सभा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ दोनों सदन समान हैं तथा दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। स्विस राज्य परिषद् अमेरिका की सिनेट की तरह ताकतवर तो नहीं है, परन्तु यह लॉर्ड सभा से शक्तिशाली है।

इस प्रकार दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों की तुलना के आधार पर हम कह सकते हैं कि अमेरिकी सिनेट ज्यादा शक्तिशाली तथा प्रतिनिधि सभा सबसे निर्बल सदन है। जबकि ब्रिटेन, भारत आदि देशों में प्रथम सदन ज्यादा शक्तिशाली है। स्विट्जरलैण्ड में सिद्धान्तः दोनों सदन समान हैं, परन्तु व्यवहार में प्रथम सदन ही शक्तिशाली है। फ्रांस और सोवियत रूस में दोनों सदन की स्थिति समान है।

### 2.4.11. कार्यपालिकाओं की स्थिति

ब्रिटेन में सम्राट् राज्य का प्रधान है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्राट् शासन की सभी शक्तियों का स्रोत माना जाता है। विधिनिर्माण, कार्यपालिका, न्यायिक, वित्तीय, वैदेशिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में सम्राट् की शक्तियाँ व्यापक हैं। वह न्याय और धर्म, दोनों का स्रोत माना जाता है। लेकिन व्यवहार में उनकी स्थिति ऐसी नहीं है। ब्रिटेन राजतंत्र और लोकतंत्र दोनों तत्वों का समन्वय है। सम्राट ने आजतक जनता के लोकतंत्र दोनों तत्वों का समन्वय है। सम्राट ने आजतक जनता के प्रतिनिधि, प्रधानमंत्री तथा मंत्रीमंडल के परामर्श से काम किया है। सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं करता है। उनकी सारी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमंडल उनके नाम पर करती है। सम्राट् शक्तियों का अधिकारी तो नहीं, परन्तु प्रभाव का प्रतीक माना जाता है। ब्रिटेन में मंत्रिमंडल ही कार्यपालिका के क्षेत्र में निदेशन तथा नियंत्रण का कार्य करता है। वह सभी विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है। वस्तुतः मंत्रिमंडल वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द सम्पूर्ण प्रशासकीय यंत्र चक्कर काटता है। वह सम्पूर्ण प्रशासन का केन्द्र बिन्दु है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री देश का मुख्य कार्यपालक है, सम्राट का प्रमुख परामर्शदाता तथा अपने दल का नेता है। मंत्रिमंडल के संगठन में उसे असीमित अधिकार है। आज ब्रिटेन में मंत्रिमंडलात्मक शासन को प्रधानमंत्री का शासन कहा जाता है।

जबकि अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक रूप में मुख्य कार्यपालक तथा देश का सर्वोच्च नेता है। वह सम्पूर्ण शासन का केन्द्र बिन्दु है। उसकी व्यापक शक्तियों को देखते हुए ही ऑग और रे ने कहा है कि ''यूरोप के कुछ अधिनायकों को छोड़कर अमेरिका का राष्ट्रपति विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक है।'' राष्ट्रपति की शक्तियों में इतनी वृद्धि हो गयी है कि राष्ट्रपति काँग्रेस को पूर्णतया प्रभावित करने की क्षमता रखता है तथा प्रयास करता है। अमेरिका में मंत्रिमंडल राष्ट्रपति की कृति है। मंत्रिमंडल के सभी सदस्य राष्ट्रपति द्वारा न केवल नियुक्त एवं पदच्युत होते हैं, वरन् उसके आदेशों के दास होते हैं। वे राष्ट्रपति के समकक्षी अथवा सहयोगी नहीं हैं, बल्कि उनके अधीनस्थ पदाधिकारी होते हैं। दूसरी ओर, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री का मंत्रिमंडल के साथ सहयोगी का सम्बन्ध है। वे प्रधानमंत्री के सेवक न होकर समकक्षी एवं सहयोगी हैं। अमेरिका में शक्तियों का पृथक्करण के कारण राष्ट्रपति और काँग्रेस का सम्बन्ध बिलगाव का है, मंत्रिमंडल के सदस्य न तो काँग्रेस के सदस्य होते हैं और न ही उसके किसी सदन के प्रति उत्तरदायी हैं। दूसरी ओर, ब्रिटेन में प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल के सदस्य संसद् के सदस्य भी होते हैं और कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी भी हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से कुल मिलाकर ज्यादा शक्तिशाली है तथा अधिक प्रभावशाली है।

फ्रांस के राष्ट्रपति की स्थिति तथा उसकी शक्तियों में मौलिक परिवर्तन हुए हैं। चतुर्थ गणतंत्र का राष्ट्रपति शक्तिहीन एवं प्रभावहीन था, लेकिन पंचम् गणतंत्र का राष्ट्रपति शक्तिशाली भी है और प्रभावशाली भी। पंचम् गणतंत्र में राष्ट्रपति को जानबूझकर व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। उसे सामान्य शक्तियों के अलावा आपातकालीन शक्तियों से सुसज्जित किया गया है। फ्रांस का राष्ट्रपति कार्यपालिका और विधायिनी शक्तियों के साथ-साथ आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करता है। उस पर संसद का नियंत्रण नहीं है। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त नहीं है। उनके कार्यपालिका शक्तियों पर सिनेट का नियंत्रण रहता है। विधायिनी क्षेत्र में दोनों की शक्तियाँ प्रायः समान ही हैं। तथापि अनेक शक्तियों के बाबजूद फ्रांस का राष्ट्रपति अमेरिका के राष्ट्रपति की तरह शक्तिशाली शासक या लोक नेता नहीं हो सका है। क्योंकि फ्रांस के मंत्रिमंडल को राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है, न कि राष्ट्रपति के प्रति। हलाँकि फ्रांस के प्रधानमंत्री को सभी क्षेत्रों में कुछ न कुछ अधिकार प्राप्त है, परन्तु उसकी स्थिति ब्रिटेन तथा भारत के प्रधानमंत्री की तरह नहीं है। फ्रांस का प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के अभिकत्र्ता के रूप में काम करता है। उसकी स्थिति अति सामान्य है, लेकिन स्वतंत्र सत्ता नहीं रहने के बाबजूद फ्रांस के प्रशासन में उसकी सक्रिय भूमिका है।

सोवियत रूस में प्रेजीडियम सैद्धान्तिक स्तर पर सर्वोच्च सोवियत की समिति मात्र है, परन्तु व्यवहार में इसका कार्यपालिका क्षेत्र में व्यापक प्रभाव है। साथ ही विधायिनी एवं न्यायिक क्षेत्र में भी इसके अधिकार और प्रभाव व्यापक हैं। सोवियत मंत्रिपरिषद् ब्रिटिश मंत्रिमंडल से भिन्न है। सोवियत रूस में मंत्रिपरिषद् ब्रिटेन के मंत्रिमंडल की भाँति न तो प्रेजिडियम को नियंत्रित कर सकती है और न ही दल को। वस्तुतः सोवियत रूस में समस्त शक्तियों का स्रोत एवं केन्द्रबिन्दु साम्यवादी दल है। वहाँ सर्वोच्च सोवियत, प्रेजिडियम और मंत्रिपरिषद् सभी साम्यवादी दल के अनुसार काम करती है। इसीलिए ऑग और जिंक ने लिखा है कि ''केवल औपचारिक दृष्टि से ही मंत्रिपरिषद् एक सर्वोच्च कार्यपालिका मानी जा सकती है। वस्तुतः पोलिटब्यूरो के रहते उसे वह स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।''

स्विस कार्यपालिका भी अपने आप में एक अनोखी संस्था है जिसके कुछ गुण ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के हैं तथा कुछ गुण अमेरिका की अध्यक्षात्मक प्रणाली के हैं। संघीय परिषद् कार्यपालिका का तो

प्रधान है ही, विधायिनी क्षेत्र में भी इसके अनन्य अधिकार हैं। व्यवहार में संघीय परिषद् ब्रिटिश मंत्रिमंडल के समान अत्यधिक शक्तिशाली होती जा रही है। डायसी ने ठीक ही कहा कि ''संघीय परिषद् एक ऐसा निदेशकमंडल है जो संघीय सभा के इच्छानुसार राज्यमंडल के समस्त कार्यों का प्रबंध करती है।''

### 2.4.12. न्यायपालिकाओं की स्थिति

ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता के कारण न्यायपालिका का महत्व भारत और अमेरिका के न्यायपालिका की तरह नहीं है। यह संगठन एवं अधिकार क्षेत्र दोनों दृष्टिकोण से अन्य देशों की न्यायपालिका से भिन्न है। विधि का शासन ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। साथ ही लॉर्ड सभा अपील का सर्वोच्च न्यायालय है। यह दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों के लिए अपील का अन्तिम न्यायालय है। जबकि अमेरिका में संघीय शासन-प्रणाली के कारण वहाँ संघ और राज्यों के लिए अलग-अलग न्यायालयों की व्यवस्था की गयी है। संघीय न्यायालयों की शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय का संगठन किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय का अपील सम्बन्धी न्याय क्षेत्र केवल सांविधानिक मामलों में है। प्रारंभिक और अपीलीय क्षेत्राधिकारों के अतिरिक्त न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार इसका सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है जिसके कारण अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय विश्व का सबसे शक्तिशाली न्यायालय हो गया है। जबकि स्विस संघीय न्यायालय को आंशिक रूप से ही न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय संघ तथा राज्यों की विधियों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है, परन्तु स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायालय केवल कैण्टन की विधियों की सांविधानिकता की जाँच कर सकता है। यह संघीय विधियों की जाँच नहीं कर सकता। स्विट्जरलैण्ड में संघीय न्यायालय एकमात्र संघीय स्तर का न्यायालय है। संघीय न्यायालय के न्यायाधीश संघीय सभा के अधीन होकर काम करते हैं। न्यायाधीशों की नियुक्ति संघीय सभा करती है। स्विट्जरलैंड में न्यायाधीशों की स्थिति अमेरिका के न्यायाधीशों की तरह स्वतंत्र नहीं है। इस प्रकार सच यही है कि स्विस संघीय न्यायालय की वह स्थिति तथा प्रतिष्ठा नहीं है जो अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय की है।

फ्रांस की न्याय-प्रणाली अमेरिका, ब्रिटेन तथा स्विट्जरलैंड से भिन्न है। ब्रिटिश सांविधानिक पद्धति विधि के शासन से संचालित होती है तो फ्रांस की सांविधानिक पद्धति में प्रशासकीय विधि की प्रमुखता है। सांविधानिक परिषद् फ्रांस की न्याय-व्यवस्था की अनोखी विशेषता है। इसके निर्णयों के विरूद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती है। यद्यपि फ्रांस में न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था नहीं है, फिर भी कई स्थितियों में सांविधानिक परिषद् को आंगिक विधियों को असांविधानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त है। परन्तु यह अमरीकी या भारतीय सर्वोच्च न्यायालय से कम शक्तिशाली है। वस्तुतः सांविधानिक परिषद् एक अर्द्ध-न्यायिक निकाय है, जो विशेष परिस्थिति में महत्वपूर्ण संस्था के रूप कार्य करती है।

सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय व्यापक अधिकारों से पूर्ण है, परन्तु उसकी स्थिति अमेरिका या भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तरह नहीं है। इसे न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त नहीं है। सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय एक प्रकार से राजनीतिक न्यायालय है, जिसे प्रशासन का एक अंग कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। यह अमेरिका या भारत की तरह स्वतंत्र न्यायालय नहीं है। अतः यह कहने में कोई हिचक नहीं कि सोवियत संघ का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका, भारत या स्विस सर्वोच्च न्यायालय की तरह न तो स्वतंत्र है और न उतनी शक्तिशाली है।

**2.4.13. निष्कर्ष**

ब्रिटिश संविधान की सर्वप्रमुख विशेषता संसद् की संप्रभुता है। ब्रिटिश संसद् धार्मिक तथा लौकिक मामलों में कानून निर्माण की सर्वोच्च सत्ता है। ब्रिटिश संसद् संप्रभु है और इसके अधिकार पूर्ण एवं असीमित हैं। लेकिन डायसी ने स्वीकार किया था कि संसदीय संप्रभुता के दो पक्ष हैं- वैधानिक एवं राजनीतिक। वैधानिक संप्रभुता राजनीतिक संप्रभुता के अधीन है। संसद् वैधानिक संप्रभुता का प्रतीक है और राजनीतिक संप्रभुता जनता में निवास करती है। इसलिए सिद्धान्तिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद् सक्षम होते हुए भी ऐसा कोई कानून नहीं पारित कर सकती है जो ब्रिटिश जनता के हित का विरोधी हो। परन्तु व्यवहार में स्थिति भिन्न है। ब्रिटेन में मंत्रिमंडल इतना शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है कि शासन के हर क्षेत्र में उसका व्यापक प्रभुत्व है। न केवल प्रशासनिक क्षेत्र में, बल्कि विधि-निर्माण के क्षेत्र में भी उसका प्रभुत्व है। ब्रिटेन में मंत्रिमंडल जिस प्रकार का कानून पारित करवाना चाहता है उस प्रकार का कानून पारित होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से मंत्रिमंडल कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु कठोर दलीय अनुशासन के कारण कॉमन्स सभा मंत्रिमंडल द्वारा नियंत्रित होती है। इसके लिए लॉर्ड सभा को शक्तियों से मजबूत करना चाहिए और इसका गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे यह सदन कॉमन्स सभा पर एक सीमा तक रोक लगाने में समर्थ हो सके। जिस प्रकार सिनेट अमेरिकी शासन-व्यवस्था में गुरूत्वाकर्षण केन्द्र बना हुआ है। चार्ल्स वियड के अनुसार ''अमेरिकी सिनेट अपनी शिल्प चातुरी, लम्बे अनुभव तथा कानूनी योग्यता के कारण राजनीतिक दाँव-पेंच में निम्न सदन से बढ़कर है।'' इसके अवरोध से राष्ट्रपति भी मात खा सकता है। इस प्रकार अमेरिकी सिनेट ज्यादा शक्तिशाली तथा प्रतिनिधि सभा सबसे निर्बल सदन है। ब्रिटेन, भारत, फ्रांस और स्विट्जरलैंड में प्रथम सदन ज्यादा शक्तिशाली है। सोवियत संघ में साम्यवादी दल का नियंत्रण होने के कारण सर्वोच्च सोवियत प्रेजिडियम द्वारा लिए गए निर्णयों का अनुसमर्थन करती है।

अलग-अलग राज्य में कार्यपालिका के स्वरूप में अन्तर उस राज्य की शासन-प्रणाली का देन है। संसदीय शासन-प्रणाली में नाम मात्र की तथा वास्तविक दोनों प्रकार की कार्यपालिका होती है। इसीलिए ब्रिटेन का सम्राट तथा भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है, जबकि ब्रिटेन और भारत का मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है और व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी है। अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में कार्यपालिका सांविधानिक और वास्तविक एक ही होती है। साथ ही यह व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है। अमेरिका का राष्ट्रपति अध्यक्षात्मक कार्यपालिका है। ब्रिटेन, अमेरिका, भारत और फ्रांस में एकल कार्यपालिका है। लेकिन जब कार्यपालिका की शक्तियाँ किसी एक व्यक्ति में निवास न कर कुछ व्यक्तियों के समूह में निवास करती है, तो उसे बहुल कार्यपालिका कहा जाता है। स्विट्जरलैंड की संघीय परिषद् तथा सोवियत रूस की प्रेजिडियम बहुल कार्यपालिका है। इसमें कार्यपालिका की शक्तियाँ सभी सदस्यों में समान रूप से बँटी रहती हैं। इन संस्थाओं का प्रधान मात्र औपचारिक प्रधान होता है। उसे कोई विशेषाधिकार नहीं होता।

अमेरिका में संघात्मक शासन के कारण न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपनाया गया है। संघात्मक शासन में संघ और इकाइयों के बीच सदैव संघर्ष की संभावना रहती है। इसीलिए एक स्वतंत्र एवं शक्तिशाली न्यायपालिका संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषता है। यही कारण है कि साम्यवादी देशों को छोड़कर प्रायः सभी देशों में न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाए रखने का प्रयास किया गया है। अमेरिका, भारत आदि देशों में न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर अत्यधिक बल दिया गया है। अमेरिका के सर्वोच्च

न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार प्राप्त है, जबकि स्विट्ज़रलैंड के संघीय न्यायालय को आंशिक रूप से न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है। क्योंकि स्विट्ज़रलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के कारण इसका कोई अर्थ नहीं है। फ्रांस और ब्रिटेन की न्याय-प्रणाली सबसे भिन्न है। जहाँ ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था विधि के शासन से संचालित होती है, वहीं फ्रांस की न्याय-व्यवस्था में प्रशासकीय विधि की प्रधानता है। प्रशासकीय विधि के कारण फ्रांसीसी जनता की स्वतंत्रता निरापद रहती है।

**2.4.14. कठिन शब्दावली**

(क) अल्पसंख्यक - जिसकी संख्या कम हो।
(ख) वंशपरंपरानुगत - वंश के आधार पर।
(ग) पुनर्विलोकन - पुनः वैधानिकता की जाँच करना।
(घ) प्रत्यक्ष प्रजातंत्र - शासन में जनता का प्रत्यक्ष साहभागिता।
(च) अनुसमर्थन - समर्थन करना।
(छ) विधायिनी - विधि-निर्माण करना।
(ज) अवरोध - रूकावट।
(झ) निरापद - बरकरार।

**2.4.15. अभ्यास प्रश्न**

**वैकल्पिक प्रश्न**

(1) ब्रिटिश संसद् के प्रथम सदन को क्या कहते हैं?
(क) लोक सभा (ख) प्रतिनिधि सभा
(ग) राष्ट्रीय सभा (घ) कॉमन सभा

(2) फ्रांस की व्यवस्थापिका को क्या कहते हैं?
(क) संघीय सभा (ख) सर्वोच्च सोवियत
(ग) काँग्रेस (घ) संसद्

(3) संघीय परिषद् किस देश की कार्यपालिका है?
(क) सोवियत संघ (ख) फ्रांस
(ग) स्विट्ज़रलैंड (घ) अमेरिका

(4) ब्रिटिश अपीलीय सर्वोच्च न्यायालय कौन है?
(क) सर्वोच्च न्यायालय (ख) संघीय न्यायालय
(ग) लॉर्ड सभा (घ) प्रतिनिधि सभा

(5) बहुल कार्यपालिका किस देश में है?
(क) फ्रांस (ख) भारत
(ग) सोवियत संघ (घ) ब्रिटेन

(6) सोवियत संघ में कार्यपालिका का वास्तविक संचालक कौन है?
(क) प्रेजिडियम (ख) सर्वोच्च सोवियत
(ग) सर्वोच्च न्यायालय (घ) साम्यवादी दल

(7) स्विस संघीय न्यायालय के न्यायाधीश को कौन नियुक्त करता है?
(क) संघीय सभा (ख) संघीय परिषद्
(ग) राष्ट्रीपति (घ) जनता के द्वारा

(8) न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार किस देश की न्यायपालिका को प्राप्त है?
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) फ्रांस (घ) ब्रिटेन

(9) संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धांत किस देश ने अपनाया है?
(क) भारत (ख) अमेरिका
(ग) ब्रिटेन (घ) फ्रांस

(10) सर्वोच्च न्यायालय किस देश में नहीं है?
(क) ब्रिटेन (ख) अमेरिका
(ग) सोवियत संघ (घ) भारत

उत्तर- (1) घ (2) घ (3) ग (4) ग (5) ग (6) घ (7) क (8) ख (9) ग (10) क

**लघु उत्तरीय प्रश्न**

(1) व्यवस्थापिका के कार्य का उल्लेख करें।
(2) कार्यपालिका के कार्य का उल्लेख करें।
(3) न्यायपालिका के कार्य का उल्लेख करें।
(4) विधि का शासन का अर्थ समझावें।
(5) लॉर्ड सभा को कमजोर सदन क्यों कहते हैं?
(6) न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ स्पष्ट करें।
(7) संसदात्मक शासन-प्रणाली में कार्यपालिका की स्थिति स्पष्ट करें।
(8) अमेरिका का राष्ट्रपति शक्तिशाली क्यों है?
(9) 'अमेरिका का सिनेट विश्व का शक्तिशाली द्वितीय सदन है', क्यों?
(10) बहुल कार्यपालिका किसे कहते हैं? यह किन देशों में है?

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

(1) 'अमेरिकी सिनेट विश्व का शक्तिशाली द्वितीय सदन है', इस कथन की विवेचना करें।
(2) व्यवस्थापिका के कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें।
(3) ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा अमेरिकी राष्ट्रपति के कार्यों एवं शक्तियों की तुलना करें।
(4) न्यायपालिका के कार्यों का उल्लेख करें? न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार को स्पष्ट करें।
(5) न्यायपालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें।
(6) विभिन्न देशों की कार्यपालिकाओं की स्थिति को स्पष्ट करें।
(7) विभिन्न देशों की व्यवस्थापिकाओं की स्थिति को स्पष्ट करें।
(8) सोवियत रूस की राजनीतिक संस्थाओं में साम्यवादी दल की भूमिका की विवेचना करें।

**2.4.16. संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. जैन डॉ॰ पुखराज एवं फड़िया डॉ॰ बी॰ एल॰, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003, पृ॰ सं॰ 82-354.
2. प्रसाद डॉ॰ मणि शंकर, तुलनात्मक राजनीति, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना, 1986, पृ॰ सं॰ 173-305.
3. आमण्ड, जी.ए. और पॉवेल, जी.वी. (जूनियर), 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स', ए डेवलपमेंटस एप्रोच, लिटल ब्राऊन, बोस्टन, 1966
4. आमण्ड, गैब्रियल तथा कोलमैन, जेम्स एस., 'द पॉलिटिक्स आपफ डेवलपिंग एरियाज', प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन, 1960
5. आमण्ड, गैब्रियल ए., 'कम्पेरेटिव पॉलिटिकल सिस्टम', जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, वोल्यूम 18, 1956 एण्ड रिप्रिंटेड इन पॉलिटिकल बिहेवियर, ए रीडर इन थ्यौरी एण्ड रिसर्च, प्री प्रेस, प्रिंस्टन-1956

## खंड-4 : राजनीतिक संस्थाएँ एवं दल संरचनाएँ
## इकाई-1 : राजनीतिक दल एवं दल प्रणालियाँ

**इकाई की रूपरेखा**

**4.1.1. उद्देश्य**
**4.1.2. प्रस्तावना**
**4.1.3. दल, अर्थ एवं परिभाषा**
**4.1.4. आवश्यक तत्व**
**4.1.5. राजनीतिक दल के कार्य**
**4.1.6. दलीय व्यवस्था के गुण**
**4.1.7. राजनीतिक दलों के दोष**
**4.1.8. दलीय प्रणलियाँ (वर्गीकरण)**
**4.1.8.1. लॉ पालोम्बरा की दल व्यवस्था (वर्गीकरण)**
**4.1.8.2. सारटोरी की दल व्यवस्था**
**4.1.8.3. इलाण्डेल का वर्गीकरण**
**4.1.8.4. अमाण्ड का वर्गीकरण**
**4.1.8.5. एलन वाल का वर्गीकरण**
**4.1.8.6. मिचेल्स का वर्गीकरण**
**4.1.8.7. डूवर्जर का वर्गीकरण**
**4.1.9. दलीय व्यवस्था के प्रकार**
**4.1.10. सारांश**
**4.1.11. शब्दावली**
**4.1.12. अभ्यास के प्रश्न**
**4.1.13. संदर्भ ग्रन्थ सूची**
**4.1.14. सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री**
**4.1.15. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**
**4.1.16. निबन्धात्मक प्रश्न**

### 4.1.1. उद्देश्य

इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

1. राजनीतिक दलों का अर्थ एवं कार्यों से परीचित कराना।
2. राजनीतिक दलों के विभिन्न वर्गीकरण का ज्ञान कराना।
3. राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व तथा प्रकारों का ज्ञान कराना।
4. राजनीतिक दलों के गुणों, दोषों से विद्यार्थियों को परीचित कराना।
5. दलीय व्यवस्था के प्रकार का वर्णन करना।

**4.1.2. प्रास्तावना**

राजनीतिक दल प्रजातान्त्रिक तथा उत्तरदायी शासन के लिए अपरिहार्य है। राजनीतिक दलों के अभाव में प्रजातन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आधुनिक प्रजातन्त्रों में प्रजातन्त्र का संचालन राजनीतिक दलों के द्वारा ही होता है। राजनीतिक दल ही राजनीतिक चेतना के केन्द्र होते हैं। सम्पूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया राजनीतिक दल के इर्दगिर्द घूमती दिखायी पड़ती है। ये प्रत्येक शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित करते है। इनका प्रत्येक व्यवस्था में विशिष्ट स्थान है यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने राजनीतिक दलों को अदृश्य सरकार कहा है।

**4.1.3. दल का अर्थ एवं परिभाषा**

सामान्य भाषा में व्यक्तियों के किसी समूह को जो एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करता है दल कहा जाता है। यदि दल का उद्देश्य राजनीतिक है तो वह राजनीतिक दल कहलाता है । विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक दल की अलग-अलग परिभाषा दी है-

बर्क के शब्दों में - "राजनीति दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को आधार मानकर जिसमें वे सहमत हों, अपना संगठन करते है।"

गेटेल के शब्दों में- "राजनीतिक दल प्रायः नागरिकों का ऐसा समुदाय है जो राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है तथा अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार को संगठित करना तथा सामान्य नीति को पूर्ण करना चाहता है।"

लीकॉक के शब्दों में - "राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो इकट्ठे मिलकर राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक मामलों में एक से होते हैं और सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।"

गिलक्राइस्ट के शब्दों में - "राजनीति कद नागरिकों के उस समूह को कहते हैं जिसमें सभी सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं। तथा जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करके सरकार को नियन्त्रित करने का काम करते हैं।"

**4.1.4. राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व**

राजनीतिक दलों की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक दलों के निम्न आवश्यक तत्व बताये जाते हैं-

**1. आधारभूत सिद्धान्तों के एकता** - राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि उसके कुछ प्रमुख सिद्धान्त हों। इसमें शामिल हो रहे लोगों के लिए आवश्यक है कि वे उन सिद्धान्तों पर एकजुट हों। सभी सदस्यों का सिद्धान्तों पर मतैक्य होना चाहिए। यदि सिद्धान्तों के आधार पर मतभेद होंगे तो सभी एकजुट नहीं हो पायेंगे और लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

**2. संगठन -** समान विचार वाले लोग यदि संगठित नहीं होंगे तो वह राजनीतिक दल नहीं वरन् भीड़ बनकर रह जायेंगे। संगठन एक शक्ति का प्रतीक है। संगठन का आश्य नियम, अनुशासन एवं पदसोपान से है। जिसमें कार्य विभाजन है तथा उत्तरदायित्व निश्चित किये जा सकें। अतः बिना संगठन बनाये राजनीतिक दलों की कल्पना नहीं की जा सकती।

**3. वैधानिक उपायों में विश्वास** - राजनीतिक दलों के लक्ष्य होते हैं उसे लागू करने के लिये वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति कि लिए वे विभिन्न प्रयास करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रयास संवैधानिक होने चाहिए। संविधान विरूद्ध किया गया प्रयास राजनीतिक दलों के लिए स्वीकार्य नहीं है। हिंसा में, क्रान्ति में, विश्वास रखने वाले संगठन राजनीतिक दल नहीं हो सकते।

**4. राष्ट्रीय हित का संवर्धन-** राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि वे किसी जाति, धर्म, वर्ग के हित को दृष्टि में रखकर कार्य न करें। उनके लिए आवश्यक है कि वे सार्वजनिक हित की पूर्ति करें। राजनीतिक दल संकीर्ण, स्वार्थ, जातिगत, धार्मिक हित की पूर्ति के लिए नहीं बन सकते।

**5. सत्ता प्राप्ति की लालसा**- राजनीतिक दल निश्चित सिद्धांतों पर एकजुट हुए लोगों का समूह होता है। वे उन सिद्धांतों को सार्वजनिक हित के लिए लागू करना चाहते हैं। इन सिद्धांतों को लागू करने के लिए आवश्यक है दल को सत्ता प्राप्त हो। अतः सत्ता प्राप्ति की लालसा भी राजनीतिक दल का आवश्यक तत्व है।

### 4.1.5. राजनीतिक दलों के कार्य

हर प्रकार की शासन प्रणालियों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व होता है। वह चाहे लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली हो या अधिनायकतन्त्र सभी में राजनीतिक दल दिखायी पड़ते हैं। यह अलग बात है कि लोकतन्त्र में उनकी भूमिका बेहद महत्वपूर्ण एवं प्रभावी होती है, जबकि अधिनायकतन्त्र में केवल सजावट की वस्तु बन कर रह जाते हैं लोकतन्त्र का संचालन ही राजनीतिक दल करते हैं। वे लोकमत का निर्माण करते हैं, राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं तथा निरन्तर प्रयासों से सामान्य जन का विश्वास लोकतन्त्र में बहाल रखते हुए मतदान सुनिश्चत करवाते हैं। लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

**1. राजनीतिक चेतना का प्रसार-** लोकतन्त्र को व्यवहार में लाने का सम्पूर्ण श्रेय राजनीति दलों को जाता है। जनता के सजग कर, उनसे राजनीतिक कर्तव्य कराने का कार्य राजनीतिक दल ही करते हैं। विभिन्न दल अपने पत्र, पत्रिकाओं, विज्ञापनों के माध्यम से जनता को सूचनायें, नीतियाँ प्रदान करते हैं। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर जनता का ध्यान आकृष्ट कराते हैं। विभिन्न राजनीतिक दल विभिन्न समस्याओं पर अपना मत देकर आम जनता को विकल्प देते हैं । वे प्रेस, समाचार पत्रों के माध्यम से अपने विचार देते हैं- लोवेल के शब्दों में - "राजनीतिक दल' राजनीतिक विचारों के दलाल हैं।"

**2. जनमत का निर्माण करना-** यह राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण कार्य है। वे लोकमत निर्माण में प्रभावी भूमिका अदा करते है। विभिन्न मुद्दों पर वह अपने दल की राय से लोगों को अवगत कराते हैं । उनकी यह राय जटिल प्रश्नों को समझने में आमजनता की मदद करती है। राजनीतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम, सभायें, गोष्ठियाँ अंततः लोगों को जागरूक कर उनकी अपनी राय निर्मित करवाती है। लोगों की सार्वजनिक हित में बनी राय का योग ही लोकमत होता है। अतः इसमें राजनीतिक दलों की महती

भूमिका रहती है। ब्राइस के शब्दों में- लोकमत को प्रशिक्षित करने उसके निर्माण एवं अभिव्यक्ति करने में राजनीतिक दलों के द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं।''

**3. कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच की कड़ी-** राजनीतिक दल व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में सम्पूर्ण सूत्र का कार्य करते है। वे मध्यस्थ की भूमिका अदा करते है। संसदीय शासन में सरकार एवं विधायिका के मध्य संवाद तथा जनता की आकांक्षाओं को सरकार तक पहुँचाने का कार्य दल करते हैं। अध्यक्षात्मक शासन शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर कार्य करता है फिर भी उसमें गतिरोध उत्पन्न नहीं हो पाता तो उसमें महत्वपूर्ण भूमिका राजनीतिक दल अदा करते हैं। अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों के कारण ही सामंजस्य स्थापित रहता है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में - "दलीय पद्धति ऐसा तरीका है। जहाँ अमेरिकी संविधान की कठोरता का दोष कम हो गया है।''

**4. सरकार पर अंकुशः-** राजनीतिक दल के कारण सरकारें निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन नहीं कर पाती है। राजनीतिक दल सत्तारूढ़ दल की गलत नीतियों का प्रसार करते हैं और सार्वजनिक मंचों से भत्र्सना करते है। इस पूरी प्रक्रिया में सरकार के विरूद्ध जनमत निर्माण होता है। विपक्षी दल भी सरकार के ऊपर गलत नीतियाँ वापस लेने का दबाव बनाते हैं। विपक्ष वैकल्पिक सरकार के रूप में अपने को प्रस्तुत करता है। यही कारण है की राजनीतिक दलों की मौजूदगी सरकार पर अंकुश लगाती है। लास्की के शब्दों मैं - "राजनीतिक दल देश में तानाशाही से रक्षा के सर्वश्रेष्ठ साधन है।"

**5. विशेष नीति के संचालन के लिये विधायिका में एकता-** प्रत्येक राजनीतिक दल विधायिका में एकता स्थापित करता है। प्रत्येक राजनीतिक दल का उम्मीदवार अपने दल की नीति एवं कार्यक्रम निर्वाचन के समय जनता के बीच रखते है। समय - समय पर अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से अनुशासित करना होता है। राजनीतिक दल अपने सदस्यों को नियन्त्रित करते हैं। वे अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों के प्रति सचेत करते हैं। वे दल की नीतियों के विरूद्ध आचरण करने वाले लोगों के प्रति कठोर कार्यवाही कर दलीय अनुशासन एवं एकता को बनाते हैं।

**6. जनता एवं सरकार के बीच कड़ी-** राजनीतिक दल जनता तथा सरकार के बीच संपर्क का कार्य करते हैं। सरकार द्वारा बनायी गई नीति के प्रति जनता के रवैया का आँकलन राजनीतिक दल करते हैं, वे इसकी सूचना सरकार तक पहुँचाते हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर जनमत बिगड़ने से बचाने के लिए सरकार को चेतावनी ही नहीं देते वरन् नीतियों, कार्यक्रमों में आवश्यक फेरबदल भी करते हैं। अतः जनता एवं सरकार के बीच कड़ी की महत्वपूर्ण भूमिका वह अदा करते है।

**7. चुनाव का संचालन-** आज सार्वभौम वयस्क मताधिकार, बढ़ी जनसंख्या, बड़े निर्वाचन क्षेत्र के कारण चुनाव पहले की तुलना में अधिक जटिल हो गये हैं। आज सफल निर्वाचन की कल्पना राजनीतिक दलों के अभाव में नहीं की जा सकती। वे प्रत्याशियों का चयन, चुनाव-प्रचार, चुनाव संचालन, मतदान तथा मतगणना तक निरंतर व्यवस्था बनाने में सक्रिय रहते हैं। उनके इस महत्वपूर्ण कार्य पर फाइनर ने लिखा है- "राजनीतिक दलों के बिना निर्वाचक या तो नितान्त असहाय हो जायेंगे या उनके द्वारा असंभव नीतियों को अपनाकर राजनीतिक यंत्र को नष्ट कर दिया जायेगा।"

**8. सरकार का निर्माण-** आम निर्वाचन के बाद विजयी राजनीतिक दल सरकार का निर्माण करते हैं। संसदात्मक शासन में विधायिका के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल का नेता प्रधानमंत्री बनता है तथा वह अपना मन्त्रिमण्डल (सरकार) बनाता है। वही अध्यक्षात्मक शासन में राष्ट्रपति के चुनाव के बाद

राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से सरकार का निर्माण करता है। अतः कहा जा सकता है कि संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक दोनों ही शासन प्रणलियों में सरकार का निर्माण राजनीतिक दल करते हैं। राजनीतिक दलों के अभाव में विधायिका के सदस्य नियन्त्रण मुक्त होकर 'अपनी ढपली अपना राग' अपना सकते हैं। यह देशहित, जनहित के लिए ठीक नहीं हो सकता। अतः राजनीतिक दल के अभाव में प्रभावी सरकार का निर्माण असंभव है।

### 4.1.6. दलीय व्यवस्था के गुण

राजनीतिक दलों के विषय में अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि यह लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। बिना राजनीतिक दलों के आदर्श शासन व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ये जनमत निर्माण से लेकर सरकार बनाने एवं नीतियों को क्रियान्वित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राजनीतिक दलों के महत्वपूर्ण गुण निम्नलिखित हैं -

**1. राजनीतिक चेतना के साधन हैं-** राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे राजनीतिक चेतना का प्रसार करते हैं। वे जन जागरण अभियान चलाकर जनता की निद्रा भंग करते हैं। वे अपने कार्यक्रमों, गोष्ठियों, सभाओं से जनता से न केवल जागरूक बनाते हैं वरन् उनमें राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं। वे जनता की उदासीनता को मिटाने का कार्य करते हैं। वे नागरिक कर्तव्यों की ओर लोगों को प्रेरित करते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

**2. सरकार पर नियन्त्रणः-** राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। राजनीतिक दल ही सरकार पर पैनी नजर रखते है। वे सरकार की नीतियों ,कार्यक्रमों का विश्लेषण करते है और उसको जनता में प्रचारित करते है। राजनीतिक दल ही अपने वैकल्पिक सरकार के रूप में प्रस्तुत करते है। वे सरकार का विपक्ष के माध्यम से सदन में चेतावनी देते है। आम जनता में विरोध प्रदर्शन, धरना आदि के द्वारा सरकार विरूद्ध चलाकर लोकमत को सरकार के विरूद्ध करते हैं। राजनीतिक दलों के इन कार्यों से सरकार पर नियन्त्रण लगता है। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

**3. राजनीतिक शिक्षा के माध्यमः-** राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे लोकतन्त्र में जनता को सर्वाधिक राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। वे सघन सदस्यता अभियान, जनसंपर्क अभियान से जनता से संवाद कायम करते हैं। वे राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर, सामाजिक, आर्थिक नीतियों पर अपनी राय से जनता को अवगत करा आम जनता का ज्ञान बढ़ाते हैं। यह राजनीतिक दल ही हैं जो नागारिकों को मतदान, सरकार निर्माण, सरकार पर नियन्त्रण की विधियों से अवगत कराते हैं।

**4. शासन के विभिन्न अंगों में तालमेल के साधनः-** राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है कि विधायिका एवं कार्यपालिका में सामंजस्य स्थापित करते हैं। यदि गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो यह देशहित में नहीं होता है। दलों के सदस्य सरकारों के कार्यक्रमों, नीतियों से विधायिका को ने केवल अवगत कराते हैं वरन् विश्वास में भी लेते हैं। वे विधायिका को विश्वास में कर नीतियों को क्रियान्वयन आसान बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

**5. दल एवं सरकार के सदस्यों पर नियन्त्रणः-** राजनीतिक दल चुनाव में अपने ही दल के सदस्यों को चुनाव में टिकट देते हैं। चुनाव जीतने के बाद ये सभी सदस्य दलीय अनुशासन में रहते हैं। ये सरकार में शामिल होने के बाद भी दलीय अनुशासन से बँधे रहते हैं। दल सदैव उनसे दल के निर्देशों के पालन की

अपेक्षा करते हैं । राजनीतिक दल सदस्यों को अनुशासन एवं नियन्त्रण में रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं ।

**6. सामाजिक,आर्थिक कार्यक्रमों का संचालनः-** राजनीतिक दल सुप्त अवस्था में नहीं रहते। उन्हें लोकमत को अपने पक्ष में करना होता है, यदि है तो उसे बनाये रखने का प्रयास करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे निरंतर सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम चलाते रहते हैं । ये सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम सरकार एवं आम नागरिकों दोनों के लिए हितकर होते हैं। यह राजनीतिक दल का विशेष गुण है कि इन कार्यक्रमों का संचालन।

**7. स्थाई एवं श्रेष्ठ सरकार की स्थापनाः-** यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है कि वह जिस भी व्यवस्था में रहते हैं,वहां पर स्थाइ एवं श्रेष्ठ सरकार का निर्माण करते हैं। राजनीतिक दल ही हैं जो लोकमत को किसी दल विशेष के पक्ष में बनाते हैं और उनके ही प्रयास से आम जनता मतदान केन्द्रों तक जाकर मतदान करती है। अतः वे ही स्थाई सरकार के निर्माण के मूल में होते हैं। उन्हीं के दबाव में सरकारें जनकल्याण के कार्यक्रम चलाती है।

**8. निरंकुशता से मुक्तिः-** राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। वे आम नागरिकों को सचेत कर उनके समर्थन से सरकारों के ऊपर नैतिक नियन्त्रण रखते हैं। सरकारें राजनीतिक दलों द्वारा बनाये गये लोकमत की अवहेलना नहीं कर सकती। वे जनमत के खिसकने का जोखिम नहीं उठा सकती। अतः वे जन आकांक्षाओं के अनुरूप नीतियां एवं कार्यक्रम बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का विशेष गुण है और इसी से सरकारों की निरंकुशता से मुक्ति मिलती है।

**9. राष्ट्रीय एकता के साधनः-** राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता के साधन हैं। राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बाँधते है । इनकी सदस्यता सभी धर्मों, जातियों एवम् सभी क्षेत्र के लोगों के लिये होती हैं। ये अपने अभियान, कार्यक्रमों से सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। यह राष्ट्रीय एकीकरण का माध्यम बनते हैं।

**10. श्रेष्ठ कानूनों का निर्माणः-** विधायिका में कानून बनता है। बहुमत प्राप्त दल ही सदैव कानून बनवाने में अग्रणी भूमिका में रहते हैं। लोकमत के भय से, जनता से किये वायदों के अनुरूप व कानून बनाती है। यदि वे व्यक्तिगत कारणों से सार्वजनिक हित छोड़ती हैं तो अन्य राजनीतिक दल सदन में तथा सड़क पर उनका विरोध करते हैं। उनकी गतल, समाजविरोधी नीतियों की आलोचना करते हैं।

### 4.1.7. राजनीतिक दलों के दोष

राजनीतिक दल किसी भी शासन के लिये आवश्यक हैं। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। इसके साथ इसमें अनेक दोष भी दिखायी पड़ते हैं। हाल ही में उभरी नई राजनीतिक प्रवृत्तियों ने सिद्ध किया है कि राजनीतिक व्यवस्था में जो दोष दिखायी पड़ रहे हैं। उसका मूल कारण राजनीतिक दल हैं। अमेरिकी संविधान निर्माता तो राजनीतिक दलों से व्यवस्था को मुक्त रखना चाहते थे। राजनीतिक दलों के प्रमुख दोष निम्न है-

**1. दलों द्वारा नैतिकता एवं आदर्शों का त्यागः-** हर राजनीतिक दल का उद्देश्य चुनाव जीतकर सत्ता को प्राप्त करना होता है। प्रत्येक दल निर्वाचन के समय 'चेन केन प्रकारेण' चुनाव जीतना चाहता है। ऐसे में ये दल सभी आदर्शों को त्यागकर प्रतिद्वन्दी नेता पर व्यक्तिगत हमले करना, छवि धूमिल करना, उनके

निजी जीवन की सी0डी0 बनाकर जनता में वितरित करते हैं। वे चुनाव में मतदाताओं को लुभाने के लिए शराब ,पैसे एवं अन्य अनैतिक साधनों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

**2. दलीय अनुशासन से स्वतन्त्रता का अन्तः-** राजनीतिक दल लोकतन्त्र की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह भी अनोखा संयोग है कि जो लोकतन्त्र नागरिक स्वतन्त्रता के प्रहरी है वहीं दलीय अनुशासन के आधार पर अपने दल के सदस्यों की आवाज का दबा देते हैं। कई बार दल की सदस्यता लेने के बाद व्यक्ति असहाय एवं मजबूर होकर दलीय विचार को स्वीकार करता है। वह अपनी अन्त्रआत्मा एवं अन्तकरणः की आवाज को दबाता है।

**3. उग्र दलबन्दी का विकासः-** राजनीतिक दलों का प्रमुख दोष है। इसमें प्रत्येक दल सत्ता पाने के लिए गलाकाट प्रतियोगिता में लग जाता है। इस कार्य में विभिन्न दल आदर्श प्रतियोगी के स्थान पर उग्र प्रतियोगी हो जाते हैं। इस क्रम में वह कई बार समाज हित, राष्ट्रीय हित की अनदेखी कर जाते हैं। दलीय कड़वाहट इतनी बढ़ जाती है कि राष्ट्रीय हित के मुद्दे, विभिन्न देश हित से जुड़े कानून पास नहीं हो पाते।

**4. दलीय स्वार्थों पर बलः-** राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति की लालसा रखते हैं। सत्ता पाने के बाद व समाज हित, राष्ट्रीय हित के लिये नहीं वरन् दलीय स्वार्थ के लिये, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कार्य करते हैं। इससे समाज में व्यापक असन्तोष पैदा होता है। यह राष्ट्रहित को भी नुकसान पहुँचाता है।

**5.** भाई-भतीजाबाद एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावाः- भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक दलों का सम्बन्ध अब बहुत मजबूत दिख रहा है। इसमें मुख्य रूप से जिम्मेदार महंँगी चुनावी प्रक्रिया है। चुनाव में हुए खत्र्न की भरपाई के लिये ये दल अत्याधिक धनार्जन करते है। कई बार चुनाव में जिन कम्पनियों से धन (चंदा) मिला होता है उसकी भरपाई इस भ्रष्टाचार से करते है। भाई भतीजावाद भी इसी की कड़ी है। दुनिया के अधिकांश देशों में यह रोग फैल रहा है।

**6. विधायिका राजनीतिक संघर्ष का अखाड़ाः-** आज राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि वे राजनीतिक संघर्ष में राष्ट्रहित को भुला बैठे हैं। उनमें आपसी विश्वास, तालमेल समाप्त हो गया है। वे एक दूसरे को रचनात्मक सहयोग नहीं दे रहे हैं। आज रोज विधायिका में काम काज बन्द होने की खबर आम हो गई हैं। संसद लड़ाई का अखाड़ा बन गई है । देश हित, समाज हित के लिये अति आवश्यक बिल पास नहीं हो पा रहें हैं।

**7. सांप्रदायिकता को बढ़ावाः-** कई बार यह देखा गया है कि दलीय स्वार्थ के लिये राजनीतिक दल सांप्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं। वे धार्मिक आधार पर प्रत्याशियों का चयन करते हैं। कई बार धार्मिक आधार पर मन्त्रिमण्डल में स्थान तय होते हैं। यह संयोग है या कुछ और कि चुनाव से पहले धार्मिक तुष्टिकरण के वायदे किये जाते हैं। कई बार तो चुनाव से पहले दंगों का दौर दिखता है।

**8. राष्ट्रीय हितों की अनदेखीः-** कई बार राजनीतिक दल राष्ट्रीय हित का संवर्धन नहीं करते। वे दलीय हितों को साधते है। मेरीयट के शब्दों में- "दलभक्ति की अधिकता से देश भक्ति की आवश्यकताओं पर पर्दा पड़ जाता है। वोट प्राप्त करने के धन्धे पर अत्याधिक ध्यान देने से दलों के नेता अथवा उनके प्रबन्धक देश की उच्चतम आवश्यकताओं को भूल या टाल सकते हैं।"

**9. योग्य व्यक्तियों की उपेक्षाः-** शासन भी एक कला है। यह एक सम्पूर्ण देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित करता है। दुर्भाग्यवश इस महत्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी दलीय बाध्यताओं के कारण सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में नहीं आ पाती। योग्य व्यक्ति कई बार राष्ट्रीय हित, सामाजिक हित के लिये दलीय

स्वार्थों के विरूद्ध मुखर हो जाता है। कतिपय यही कारण है कि आज योग्य व्यक्तियों का अभाव व्यवस्था में दिखायी पड़ रहा है।

दलीय दोषों अथवा दलबन्दी से बचने के उपायः- इससे बचने के लिये कुछ सुझाव कारगर हो सकते हैः-

1. राजनीतिक शिक्षा का प्रसार
2. आर्थिक विषमता को कम करना
3. सीमित दलीय व्यवस्था
4. कम खर्चीले चुनाव
5. राजनीति से अपराधी, भ्रष्टाचारी को दूर करना
6. दलीय लोकतन्त्र की बहाली
7. व्यापक चुनाव सुधार

### 4.1.8. दलीय प्रणालियाँ (वर्गीकरण)

आधुनिक दलीय प्रणलियों की समीक्षा करते हुए डुवर्जर ने कहा- ''किसी भी देश में लम्बे समय तक राजनीतिक दलों की संख्या, उनकी संरचना, विचारधारओं उनके समझौतों तथा विपक्ष में स्थायित्व आ जाता है।" इसी के आधार पर किसी भी देश के दलीय प्रणाली को समझा जा सकता है। इस संबंध में अमाण्ड, जेम्स जप, हिचनर , डूबर्जर , ला पालोम्बरा , सारटोरी आदि ने विस्तृत विश्लेषण किया।

**4.1.8.1. ला पालोम्बरा की दलीय व्यवस्थाः-** ला पालोम्बरा ने दल व्यवस्था के प्रकार का निर्धारण करते समय राजनीतिक दलों मे ं निम्न लक्षणों का आवश्यक माना-

(1) राजनीतिक दल की विशेषतायें एवं लक्षण।

(2) दलों के आपसी संबंध।

(3) दलों का समाज के अन्य घटकों के साथ संबंध।

(4) दलों के कार्यप्रणाली को प्रभावित करने वाले तत्व।

पालोम्बरा एवं वीनर दोनों ही ने इस आधार पर दल व्यवस्था को स्पष्ट रूप् से दो भागों में बाँट दियाः-

(1) प्रतियोगी दल व्यवस्थायें

(2) अप्रतियोगी दल व्यवस्थायें

.

**4.1.8.2. साराटोरी की दल व्यवस्थाः-**_साराटोरी ने दूसरी तरफ वर्गीकरण में दलों की संख्या को आधार मानना भ्रान्तिपूर्ण माना। उसकी मान्यता थी कि दलों के वर्गीकरण में इनके वैचारिक फासले, वैचारिक उग्रता, सत्ता काल अथवा सत्ता में आने की संभावना को ध्यान में रखने की बात कही। सारटोरी ने दल व्यवस्था का वर्गीकरण करने में त्रिमुखी आधार को स्वीकार किया-

(1) राजनीतिक दलों की संख्या

(2) दलों की विचारधारा एवं प्रकृति

(3) दलों में विखण्डन की मात्रा

सारटोरी ने एक तरफ संख्या के आधार पर किया गया वर्गीकरण को गलत मानते हुए भी उसे पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया। उसकी मान्यता थी कि दलों की संख्या अपने आप में दलां े के लक्षण प्रकट

करने वाली है। अतः इसे छोड़ा नहीं जा सकता है। उसने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा कि किसी भी व्यवस्था में दो दलों का होना राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों, निर्वाचन प्रणलियों के बारे में बहुत कुछ तथ्य प्रस्तुत कर देता हैं।

**4.1.8.3. बलोण्डेल का वर्गीकरण:-** बलोण्डेल ने दलीय प्रणाली ने इसके ठीक विपरीत केवल संख्या के आधार पर किसी देश की प्रणाली को समझने को अधूरा प्रयास बताया। वह इसके विपरीत दल प्रणाली के वास्तविक रूप, उसकी प्रकृति, उसके विकास की स्थिति, दलों के संबंधों को वर्गीकरण का आधार मानता है। इसके साथ ही वह दलीय विविधता के महत्व को समझते हुए कहता है कि निम्न तत्व भी दलीय प्रणाली को समझने में कारगर हो सकते है-

(1) राजनीतिक दलों की क्रियाकलाप की दृष्टि से गणना तथा देश की राजनीति में भूमिका।

(2) राजनीतिक व्यवस्था में दल की शक्ति, दल के माप में दल की सदस्य संख्या मतदान प्रतिशत, तथा व्यवस्थापिका में प्राप्त स्थानों को आधार बनाया जा सकता है।

(3) दलों में विचारधारा संबंधी अंतर।

(4) दलों का संगठन

(5) दलों के समर्थन का आधार।

बलोण्डेल ने इन पांँच तत्वों के आधार पर राजनीतिक दलों के पांँच प्रकार बताये हैः-

(1) एक दलीय व्यवस्था

(2) द्वि दलीय व्यवस्था

(3) ढ़ाई दलीय व्यवस्था

(4) एक दल प्रधान बहुदलीय व्यवस्था

(5) बहुदलीय योग दल

**4.1.8.4. अमाण्ड का वर्गीकरण:-** अमाण्ड ने राजनीतिक दलों का वर्गीकरण करते हुए उन्हंे चार भागों में बांटा-

(1) तानाशाही अथवा सर्वसत्तावादी दल

(2) प्रमुखता प्राप्त लोकतान्त्रिक दल

(3) प्रतिस्पर्धात्मक दो दल

(4) प्रतिस्पर्धात्मक बहु दल

इसके अतिरिक्त हिचनर और लेवाइन ने राजनीतिक दल प्रणाली को पांँच भागों में विभक्त किया हैः-

(1) प्रतिस्पर्धा पूर्ण दो दलीय प्रणाली

(2) प्रतिस्पर्धा पूर्ण बहु दलीय प्रणाली

(3) प्रमुखतापात्र लोकतान्त्रिक प्रणाली

(4) अधिनायकवादी दलीय प्रणाली

(5) दलीय प्रणलियों रहित राज्य

**4.1.8.5. एलन वॉल का वर्गीकरण:-** एलन वॉल के अनुसार दल प्रणाली के कई वर्गीकरण किये जा सकते है। वह मानता था कि दल व्यवस्था की अधिकाधिक संख्या के कारण कोई भी वर्गीकरण पूर्णतया सही नहीं होगा। वर्गीकरण के आधारों की अनेकता के कारण वर्गीकरण कठिन हो गया है। वह मानता है

कि दलों का संचालन दलीय पद्धति के अन्तगत होता है और इसका प्रभाव दल के आचरण पर पड़ता है। दलों की संख्या के आधार पर भी वर्गीकरण सही नहीं है। बड़े दलों की संख्या समान होते हुए भी दल व्यवस्थाओं के बीच बड़े अंतर होते है। एक दलीय, द्विदलीय और बहुदलीय व्यवस्थाओं के बीच अतर करने पर ब्रिटिश सवं अमेरिकी दलीय व्यवस्था एक समूह में तथा इटली तथा स्वीडन की दल पद्धतियों को एक साथ नहीं रखा जा सकता। वाल ने दलों की संख्या, उनकी संरचना, उनकी शक्ति को आधार बनाकर दलों का वर्गीकरण किया। उसका दलीय वर्गीकरण इस प्रकार हैः-

**(1) अस्पष्ट द्वि दलीय पद्धतिः-** यह अस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दलीय व्यवस्था है। इसमें येनकेन प्रकारणे मत प्राप्त करने तथा चुनाव जीतने पर बल दिया जाता है। इसमें दलीय व्यवस्था केन्द्रीकृत होती है। तथा व्यक्ति आधारित होती है। इसमें व्यक्ति के गुणों को दलीय सिद्धान्तों पर वरीयता दी जाती है। अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था इसका आदर्श उदाहरण है।

**(2) सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतिः-** सुस्पष्ट द्विदलीय व्यवस्था में दल अधिकाधिक केन्द्रीकृत होते है। जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया में ऐसा स्पष्ट दिखता है। इसमें विचारधारओं का महत्व होता है तथा चुनाव में विचारधारा के आधार पर दलों में स्पष्ट अंतर दिखायी पड़ता है। ब्रिटेन की व्यवस्था में भी यही लक्षण पाया जाता है।

**(3) कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्थाः-** यह वह दलीय व्यवस्था है जिसमें दो से अधिक दल होने के बावजूद वह द्विदलीय व्यवस्था का आभास कराती है। इन देशों में सरकार की स्थिरता पर मतदाताओं का बहुत जोर रहता है। वे अपनी जागरूकता का परिचय देते हुए मत विभाजन नहीं होने देते है। यर्थात में वहाँ पर प्रभावी रूप् से दो दल ही दिखायी पड़ते है। स्वीडन, नार्वे, आदि देशों में अनेक दल होने के बावजूद दो दलों के बीच में सत्ता का संघर्ष दिखायी पड़ता है।

**(4) अस्थिर बहुदलीय व्यवस्थाः-** इस व्यवस्था में सरकार की स्थिरता का अभाव रहता है। इसमें सरकारें अल्पमत की अन्य दलों के सहयोग से बनती है। इस प्रकार की दल प्रणाली का सर्वाेच्च उदाहरण इटली है। वहाँ पर अधिकतर बहुमत के अभाव में छोटे-छोटे दलों के समर्थन से सरकार का गठन होता है। इसमें स्थायित्व का अभाव रहता है। एक सरकार के पतन के बाद पुनः अन्य के सहयोग से नई सरकार बन जाती है।

**(5) प्रभावी दल पद्धतिः-** इस व्यवस्था में दलों के बीच प्रतियोगिता चलने दी जाती है। इस प्रतियोगिता से ऐसे दल का उदय होता है जो अन्य दलों पर छा जाता है। भारत इसका उदाहरण है। भारत में आजादी के बाद 1977 तक काॅंग्रेस पार्टी भारतीय शासन व्यवस्था पर छा गई थी। दूसरे दलों को प्रभावी प्रतियोगिता की छूअ प्रदान की गई। भारत में कई बार ऐसे अवसर भी आये है जब छोटे दलों ने अन्य के समर्थन से शासन पर नियन्त्रण स्थापित किया।

**(6) एक दलीय पद्धतियाँ :-** यह वह शासन प्रणाली है जिसमें एक दल का प्रभुत्व रहता है। इसके प्रमाण मिस्त्र तथा तंजानिया में मिलते है। कीनिया में भी एक दलीय व्यवस्था का उदाहरण मिलता है।

शेख मुजीब के समय बंाग्लादेश, जनरल जिया उक हक के समय पाकिस्तान में भी एक दल के शासन का उदाहरण मिलता हे। इस प्रणाली में दलों के बीच चुनावी प्रतियोगिता का पूर्णतया अभाव रहता है। दलों में ही गुट चुनावी खींचतान करने की छूट रखते है।

**(7) सर्वाधिकारवादी एक दलीय पद्धतिः-** यह पद्धति कई बार एक दलीय पद्धति के साथ जोड़ दी जाती है। इस व्यवस्था में इस दल का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। इस व्यवस्था में केवल शासकों के द्वारा अभिजनों की भर्ती की जाती है। चीन, सोवियत संघ , यूरोप के पूर्वी जर्मनी की सरकार इसके आदर्श उदाहरण है।

एलन वाल का वर्गीकरण सीमित उपयोगिता वाला है। उसके सिद्धान्त से सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते है। यह सही है कि दल पद्धति के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करना जाटिल होता है। इनका गति को समझ कर सिद्धान्त का रूप् देना भी कठिन है।

**4.1.8.6. मिचेल्स के विचार (Michel's view):-** जर्मन विद्वान रार्वअ मिचेल्स ने अपनी पुस्तक "Political Proties" में स्पष्ट किया कि राजनीतिक दल का चरित्र अपने समय की ऐतिहासिक व्यवस्था से निर्धारित होता है। वह मानता है कि जिस दल में निर्णय करने की शक्ति कुछ लोगों के हाथ में केन्द्रित रहती है वहाँ सदैव यह खतरा बना रहता है कि जनता की आक्रोश की आंधी उसे बहा सकती है। इस जोखिम से बचने के लिये प्रत्येक राजनीतिक दल अत्याधिक सदस्य संख्या का विस्तार करता है। इससे दल का आधार व्यापक एवं जटिल हो जाता है।

मिशेल्स आगे स्पष्ट करता है कि किसी भी दल में सारे निर्णण लेने की शक्ति अंततः एक छोटे से समूह या गुट में आ जाती है। लेकिन राजनीतिक दल इस गुटीय व्यवस्था को छिपाकर उसे लोकतान्त्रिक दिखाने का प्रयास करते है। इसे मिचेल्स ने ' गुटतनत्र का लौह नियम' (Iron law of Oligarchy) कहा। वह स्पष्ट करता है कि किसी भी शासन व्यवस्था को चलाने के लिये संगठन अनिवार्य होता है। इसी के द्वारा निर्बल पक्ष संबल पक्ष के विरूद्ध संघर्ष करता है। वह कहता है जिनके हित समान होते है वे एकता के साथ अपने लक्ष्य प्राप्त कर लेते है। वह स्पष्ट करता है कि चाहे समाजवादी व्यवस्था हो, पूँजीवादी व्यवस्था हो, सभी अपने-अपने संगठनों से अपने-अपने हितों को साधने का प्रयास करते है। वह इस तथ्य को भी स्पष्ट करता है कि मजदूर पूंजीपति के समक्ष नहीं टिक सकते परन्तु संगठित हो वे इसका मुकाबला कर सकते है। एक दल के रूप् में संगठित हो वे पूंजीवादी शोषणकारी व्यवस्था को नष्ट कर सकते है। धीरे-धीरे दल मजदूर दल में शासन कर नियन्त्रण नौकरशाही के पास आ जाता है।

वह अपने विचारों में आगे स्पष्ट करता है कि सर्वहारा एवं कमजोर वर्गों के लिये बना दल सत्ता में आने के बाद अपने उद्देश्यों को भूल जाता है। वह धीरे-धीरे अपने लक्ष्यों से दूर चला जाता है।

मिचेल्स के शब्दों में - "संगठन का विचार ऐसे तर्कों पर आधारित है जिसमें निर्वाचित लोग निर्वाचकों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते है, जो आशा लेकर आये थे, वे आज्ञा देने लगते है। जो सेवा करने आये थे वे सेवक के स्थान पर स्वामी बन जाते है।"

वह अपने सिद्धान्त के अंत में स्थापित करता है कि कोई भी शासन व्यवस्था , कोई भी दलीय व्यवस्था जनता के हित के स्थान पर दलीय हित और अंततः शासकों के हितों का पोषण करती है। जनता का शासन एक काल्पनिक वस्तु बन जाती है।

**4.1.8.7. डूवर्जर का सिद्धान्त(Duverger's View):-** फ्रांसीसी विद्वान डूवर्जर ने अपनी पुस्तक श्च्वसपजपबंस चंतजपमेश् में स्पष्ट किया है कि राजनीतिक दलों का उदय एक विशेष प्रक्रिया का परिणाम है। समाम में कुद बिन्दुओं पर सहमति के आधार पर समूह उभरते है। फिर निर्वाचक समितियाँ उभरती है। इन दोनों के मध्य स्थायी संबंध स्थापित हो जाता है। इन स्थायी संबंधों का ही परिणाम ' राजनीतिक दल' का उदय है। राजनीतिक सिद्धान्तों पर एकजुटता के अतिरिक्त भौगोलिग निकटता, व्यवसायिक हितों में समानता भी ऐसे समूहों को जन्म देने में सहायक होती है।

डूवर्जर आगे स्पष्ट करता है कि राजनीतिक दलों का उदय संसद के बाहर भी संभव है। जिस राजनीतिक दल का उदय संसद के अंदर होता है। उसकी कार्यप्रणाली में कुछ वाहय संस्थायें जैसे दार्शनिक समूह, मजदूर समाज, पत्रकार समूह, आदि हस्तक्षेप करने लगते ऐसी संस्थायें संसद के अंदर एवं बाहर दोनों ही स्थान पर दलों को जन्म देने में सक्षम रहती है। इंग्लैण्ड में मजदूर दल को फेवियन सोसाइटी ने जन्म देने में सहयोग प्रदान किया। डूवर्जर का मत था कि जो दल संसद के बाहर उदित होते है उनमें कठोर अनुशासन पाया जाता है। इनमें केन्द्रीकरण की प्रवृति भी बहुत पायी जाती है। संसद के अन्दर पैदा होने वाले दलों में अपने लक्ष्यों की पूर्ति की भावना अधिकाधिक पायी जाती है। डूवर्जर ने दलों का वर्गीकरण इस प्रकार किया हैः-

**(1) कॉकस अथवा समूह (समिति)** :- यह दलों के छोटा स्वरूप होता है। ये सदस्यों की गुणवत्ता पर बल देते है। इनका प्रयास कुशलता पूर्वक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। ये सदस्य संख्या पर बल नहीं देते है। ये सामान्यतः विशिष्ट या गणमान्य व्यक्ति होते है। ये प्रायः चुनाव के समय क्रियाशील होते है। बाकी समय में यह सुसुप्ता अवस्था मेंं रहते है। इसका उदाहरण फ्रांस के तीसरे एवं चतुर्थ गणराज्य में रेडीकल पार्टी के रूप् में मिलता है।

**(2) शाखा दलः-** यह ऐसा दलीय प्रकार होता है जिसका उद्देश्य अधिकाधिक संख्या में सदस्य बनाना होता है। इनका पूरा ढ़ाचा होता है। ये निर्वाचन क्षेत्रों में अपनी इकाईयाँ भी स्थापित करते है। ये वर्ष भर सक्रिय रहने वाले दल होते है। इनके विभिन्न कार्यक्रम, गतिविधियाँ निरन्तर चलती रहती है। सामान्यतः यह समाजवादी दलों की तरह निरन्तर सक्रिय रहते है। प्रायः यह देखा जाता है कि समाजवादी दलों के नेता शाखा के सदस्यों के पास आते रहते है। ये उनसे विचारों का आदान प्रदान कर समस्याओं का समाधान खोजने की प्रयास करते है।

**(3) प्रकोष्ठः-** यह फाँसीवादी तथा साम्यवादी दल का अविष्कार है। इसमें शासक दल की अनेकों इकाईयों देश भर में फैली होती हैे। सभी प्रकोष्ठों के सदस्यों की स्थिति, भूमिका और महत्व दल के सदस्यों की तुलना मे अधिक महत्वपूर्ण होती है। प्रकोष्ठ के सम्पूर्ण कार्यक्रमों, योजनाओं एवं नीतियों के संबंध में सम्पूर्ण निर्णय वरिष्ठम लोगों की समिति लेती है।

**(4) सैनिक दस्तेः-** फाँसीवादी एवं साम्यवादी दल अपने साथ एक सैनिक विभाग भी रखते है।इसका उदाहरण इटली एवं जर्मनी में मिलता है। इटली में जहाँ 'हलचल दस्ता' वहीं जर्मनी में ' तूफान दस्ते' इसके उदाहरण है। चीन में माओ ने मी लाल रक्षक दस्ता बना रखा था। ये सम्पूर्ण सैनिक नहीं थे परन्तु

इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता था। इनकी सैनिकों से अलग वेशभूषा निर्धारित होती थी। ये संगठन के सर्वोच्च के अधीन कार्य करते थे।

इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों की सदस्यता की प्रकृति को देखते हुए डूवर्जर ने न केवल प्रजातान्त्रिक तथा सर्वाधिकारवादी दलों के बीच अंतर किया है। इस आधार पर उसने दो प्रकार बताये हैः-

**(1) संवर्ग युक्त दल**ः- यह विशिष्ट जनों का समूह होता है। यह चयन के सिद्धान्त के आधार पर ढांचे का निर्माण करते है। ये विशिष्ट लोग चुनाव के लिये कार्यक्रम बनाने, योजना बनाने, चुनाव हेतु प्रत्याशियों का चयन तथा दल के लिये धन के एकत्रीकरण का सम्पूर्ण कार्य करते है। किसी भी व्यक्ति का सम्मान चुनाव लड़ने की उसकी क्षमता तथा पार्टी कोष में अधिकाधिक चंदा देने से निर्धारित होता है। इनका महत्व दल में बहुत अधिक होता है। ये लोग ही चुनाव हेतु योजना बनाने में सहयोग प्रदान करते है।

**(2) जनदलः-** समय गुजरने के साथ मतदाता की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई है। इस वृद्धि ने राजनीतिक दलों को जनदल में परिवर्तित होने में सहायता ही है। संवर्ग दल से अलग जनदल संविधानवाद में विश्वास करते हुए चुनाव में उतरते है। यह अधिकधिक लोगों से सम्पर्क करने तथा उनके सलाह एंव परामर्श से काम करने का प्रयास करता है। इस व्यवस्था में सदस्यमा खुली रहती है। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके सिद्धान्तों में विश्वास करता है। वह इनका सदस्य बन सकता है।

इसके अतिरिक्त जन्म एवं विकास के आधार पर डूवर्जर ने राजनीतिक दलों को दो भागों में बांटा हैः-

**(1) भीतर से उपजे दलः-** यह विचार पाश्चात्य लोकतान्त्रिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसमें मताधिकार का विस्तार, संसदीय प्रजातंत्र के क्रमिक संस्थानीकरण ने अनेक जागरूक नागरिकों को छोटे-छोटे संघ बनाने पर उत्साहित किया। इसी प्रकार विधायी सदनों के भीतर अपने हितों की रक्षा तथा उनके सवर्धन के लिये समूहों का जन्म हुआ। प्रजातन्त्र के विकास के साथ इन समूहों ने अपने नियम, चंदे, नीतियों, कार्यक्रमों आदि का विवरण रखने के रूप में अपनी कार्यविधि में सुधार किया। इन दलों का जन्म विधायकों की गतिविधियों के कारण हुआ है।

**(2) बाहर से उपजे दलः-** बाहर से उपजे दल वे है जो किसी क्रान्तिकारी लक्ष्य को प्राप्त करने तथा किसी निश्चित हित की रक्षा के लिये बने है। रूस एवं चीन के साम्यवादी दल इसका उदाहरण है। जिन्नाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने भी राज्य विरोधी नीति अपनाकार नये राज्य पाकिस्तान का गठन कराने में सफलता पाई। इस प्रकार के दल का उदय विधायिका के बाहर होता है। और साम्यवादी दल के लिये गंभीर चुनौती रखता है।

### 4.1.9. दल प्रणाली के प्रकार

आज दुनिया के लगभव सभी देशों में दलों का अस्तित्व है। वह चाहे अधिनायकतन्त्र हो या उदारवादी लोकतन्त्र या समाजवादी राज्य सभी में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है। अन्तर केवल एक बात का है कुछ देशों में दल केवल दिखावा है और कुछ देशों में वास्तविक रूप से राजनीतिक व्यवस्था में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। मुख्य रूप से तीन प्रकार की दलीय व्यवस्था दिखायी पड़ती हैः-

**1. एकदलीय व्यवस्थाः-** एकदलीय व्यवस्था का अर्थ है कि शासन में केवल एक दल की उपस्थिति। यह ऐसा शासन होता है जिसमें किसी अन्य दल को स्वीकार नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक तरह का अधिनायकवाद है क्योंकि आमजनता के पास अपने मताधिकार के लिये विकल्प ही नहीं

है। ये मुख्य रूप से वामपंथी के शासन वाले राज्यों, तानाशाहों के यहाँ दिखायी पड़ता है। यह व्यवस्था लोकतन्त्र के लिये हितकर नहीं है।

**2. द्विदलीय व्यवस्था:-** जब किसी देश में दो मुख्य दल होते हैं तो उसे द्विदलीय व्यवस्था कहते है। यहाँ पर दो से अधिक दल होने पर प्रतिबन्ध नहीं होता परन्तु जनता का विश्वास न पाने के वजह से वह पनप ही नहीं पाते। उदाहरण के लिये अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी तथा डेमोक्रेटिक पार्टी, इंग्लैण्ड में अनुदार दल तथा श्रमिक दल आदि।

**3. बहुदलीय व्यवस्था:-** बहुदलीय व्यवस्था का अर्थ है दो से अधिक दलों का अस्तित्व। यूरोप में इटली, फ्रांस में बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। भारत में भी बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक अधिकार का विस्तार देते हुए सभी व्यक्तियों को यह स्वतन्त्रता दी जाती है कि वे राजनीतिक दल बना सकते हैं। यही कारण है कि उन देशों में दलों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। दुनिया के अनेक देश बहुदलीय व्यवस्था के कारण प्रभावित हो रहे हैं। अनेक दल राजनीतिक परिपक्वता के अभाव में मतविभाजन करवाते हैं और चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता। स्पष्ट बहुमत के अभाव में अस्थिर सरकारें आती हैं। बार-बार चुनाव होते हैं। फ्रांस में यही कारण था कि पाँचवा गणतन्त्र के संविधान में नयी व्यवस्था अपनायी गयी। यह नयी व्यवस्था अध्यक्षात्मक एवं संसदात्मक का मिश्रण है। भारत में भी 90 के दशक में अस्थायी सरकारों ने नयी बहस को जन्म दे दिया था कि क्यों न यहां पर अध्यक्षात्मक शासन को स्वीकार कर लिया जाये? जहाँ पर द्विदलीय व्यवस्था है वहाँ पर ऐसा संकट उत्पन्न नहीं हुआ। यही कारण है कि लास्की, लावेल, ब्राइस, फाइनर जैसे अनेक विद्वानों ने लोकतन्त्र में द्विदलीय व्यवस्था को श्रेष्ठ माना है।

### 4.1.10. सारांश

राजनीतिक दल लोकतन्त्र के लिये अनिवार्य माने जाते है। इनके अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कुछ विद्वानों इसे लोकतन्त्र के लिये प्राणवायु के समान मानते है। लोकतन्त्र का उदय सर्वप्रथम इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था में हुआ। आज दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक देशों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है।

राजनीतिक दल कुद सिद्धान्तों पर एकमत लोगों का समूह है जिनका उद्देश्य संवैधानिक तरीके से सत्ता को प्राप्त कर अपने नीतियों एवं कार्यक्रमों को लागू करना होता है। ये संवैधानिक साधनों में विश्वास करते है, निश्चित सिद्धान्तों पर एकजुट होते है।, सत्ता प्राप्ति इनका लक्ष्य होता है। राजनीतिक दल मुख्य रूप से सत्ता प्राप्ति के लिये सदैव क्रियाशील रहते है। जब वे सत्ता से दूर रहते है तब वे उसको पाने जनमत को अपने पक्ष में करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपक्रम जैसे रैली, प्रचार,भाषण आदि का सहारा लेते है। आधुनिक समय में इस कार्य हेतु सोशल मीडिया का महत्व बहुत बढ़ गया है। सत्ता प्राप्त होने के बाद वे अपनी नीतियों, कार्यक्रमों को लागू करते है तथा सत्ता को अपने पास रखने के लिये अपने प्रचार अभियान को निरन्तर चलाते रहते है। वे जनता को राजनीतिक रूप् से जागरूक बनाते है। वह उनके मतदान व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयास करते है। वह जनता के समक्ष विकल्प बनकर प्रस्तुत होते है। दूसरे शब्दों से कहे तो राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विभिन्न विद्वानों जैसे एलन वाल, सारटोरी, डूर्वजर, मिचेल्स, आदि ने राजनीतिक दलों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया है। आधुनिक समय में राजनीतिक दलों का स्वरूप् कार्यविधि , ढांचा में भी

बदलाव दिखायी पड़ रहा है। इन सबके बावजूद राजनीतिक दलों के अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी सम्भव नहीं है।

**4.1.11. शब्दावली**

1. अल्पतन्त्र का लौह नियमः- मिचेल्स ने यह सिद्धान्त दिया। इसका अर्थ है कि शासन सदैव योग्य लोगों के हाथ में रहता है। जो अल्पसंख्या में होता है।''
2. बहुदलीय व्यवस्थाः- किसी भी शासन व्यवस्था में दो से अधिक दलों का अस्तित्व बहुदलीय व्यवस्था कहलाता है।
3. कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्थाः- दो से अधिक दलों के अस्तित्व के बावजूद वास्तविकता में सत्ता के लिये दो दलों में संघर्ष रहता है। ऐसी व्यवस्था को कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्था कहते है।
4. सर्वसत्तावादी दलः- यह वह व्यवस्था है जिसमें एक दल ही प्रभावी रहता है। उसके पास सभी प्रकार की सत्ता समाहित रहती है।

**4.1.12. अभ्यास के प्रश्न**

(1) निर्बल एवं अस्थिर शासन व्यवस्था किस शासन प्रणाली की विशेषता है-

(अ) द्विदलीय व्यवस्था (ब) बहुदलीय (स) एकदलीय (द) कोई नहीं

(2) किसको लोकतन्त्र का प्राण कहा जाता है-

(अ) दबाव समूह (ब) हित समूह (स) राजनीतिक दल (द)सभी

(3) निम्न में से कौन दल विहीन लोकतन्त्र के समर्थक थेः-

(अ) गांधी (ब) नेहरू (स) विनोवा भावे (द) जयप्रकाश

(4) निम्न में से कौन राजनीतिक दल का कार्य है-

(अ) राजनीतिक शिक्षा (ब) शासन एवं जनता के बीच कड़ी (स) लोकमत का निर्माण

(द) सभी

(5) निम्न मे से किसने "दलों को प्रजातन्त्रीय यंत्र के संचालन में तेल के समान बताया-

(अ) वर्क (ब) सारटोरी (स) हूबर (द) कोई नहीं

(6) "कुछ लोगों के हितों के लिये बहुतों का पागलपन है।" यह कथन है-

(अ) वर्क (ब) मिचेल्स (स) मोस्का (द) एलक्जेडर पोप

**4.1.13. संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
2. गेना सी0बी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें

3. सिंघल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति
4. खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
5. जैन आर0सी0, तुलनात्मक राजनीति

**4.1.14. सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री**

1. गाबा ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
2. सोडारों माइकल, कम्परेटिव पाॅलिटिक्स
3. संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
4. राय गांँधी जी, तुलनात्मक राजनीतिक संस्थायें

**4.1.15. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर**

1. ब
2. स
3. द
4. द
5. स
6. द

**4.1.16. निबन्धात्मक प्रश्न**

1. राजनीतिक दल से क्या समझते है? इनके कार्यों का वर्णन कीजिये।
2. राजनीतिक दलों की परिभाषा दीजिये तथ इसके गुण दोषों का वर्णन कीजिये।
3. राजनीतिक दलों का अर्थ समझाइये तथा इनकी विशेषतायें बताइये।
4. राजनीतिक दल पर एक निबन्ध लिखिये।
5. राजनीतिक दल से क्या समझते है? दलीय व्यवस्था के प्रकार पर प्रकाश डालिये।

# इकाई-2 : दबाव समूह

**इकाई की रूपरेखा**

**4.2.1. उद्देश्य**
**4.2.2. प्रस्तावना**
**4.2.3. अर्थ एवं परिभाषा**
**4.2.4. दबाव समूह के तत्व**
**4.2.5. दबाव समूह के उदय के कारण**
**4.2.6. राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अंतर**
**4.2.7. दबाव समूह के साधन**
**4.2.8. दबाव समूह के दोष**
**4.2.9. दबाव समूह के प्रकार / वर्गीकरण**
**4.2.10. दबाव समूह एवं लाबींइंग में अन्तर**
**4.2.11. दबाव समूह एवं हित समूह में अन्तर**
**4.2.12. दबाव समूह राजनीति की प्रभावकारिता के निर्धारक**
**4.2.13. दबाव समूह की सक्रियता के विभिन्न स्थान**
**4.2.14. दबाव समूह एवं लोकतन्त्र**
**4.2.15. विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं (सरकारों) में दबाव समूह**
- **4.2.15.1. आँग्ल - अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह**
- **4.2.15.2. यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह**
- **4.2.15.3. इटली एवं फ्रांस में दबाव समूह**
- **4.2.15.4. सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था मे दबाव समूह**
- **4.2.15.5. विकासशील राष्ट्रों में दबाव समूह**

**4.2.16. सारांश**
**4.2.17. शब्दावली**
**4.2.18. अभ्यास के प्रश्न**
**4.2.19. संदर्भ ग्रन्थ सूची**
**4.2.20. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर**
**4.2.21. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**
**4.2.22. निबन्धात्मक प्रश्न**

### 4.2.1. उद्देश्य

1. दबाव समूह का अर्थ एवं उत्पत्ति समझाना।
2. आधुनिक समय में दबाव समूह के विभिन्न प्रकारों से अवगत कराना।
3. विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में दबाव समूह की भूमिका को समझना।
4. दबाव समूहों के साधन एवं गुणदोष को समझना।

### 4.2.2. प्रस्तावना

लोकतन्त्र में राजनीतिक दल व्यक्ति एवं सरकार के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करते हैं। समय गुजरने के साथ बड़े राज्यों में बड़ी आकांक्षाओं को पूरा करने में राजनीतिक दल असमर्थ होने लगे। इसी समय जन आकांक्षा के ज्वार, लोगों की बढ़ती आवश्यकताओं ने लोगों को अपने हितों के आधार पर संगठित किया। कतिपय यही कारण है बीसवीं शताब्दी में अनेक हित समूह अथवा दबाव समूह उभरे।

आधुनिक राजनीति शास्त्र में दबाव समूह की भूमिका महत्वपूर्ण हैं ये बहुलवाद से मान्यता प्राप्त समूह है। जिन्हें लास्की, कोल, फिंगिस, मेटलैण्ड जैसे विद्वानों ने स्वीकार किया। आधुनिक समय में इनका महत्व इतना बढ़ गया है कि फाइनर इन्हें 'अज्ञात साम्राज्य' कहता है वहीं मैंकिन इन्हें 'अदृश्य सरकार तथा सेलिन इसे 'अनौपचारिक सरकार' कहता है आमण्ड पावेल के शब्दों में - "हर समाज तथा राजनीतिक पद्धति में माँगें प्रस्तुत करने की अपनी रीतियाँ होती हैं तथा हितों के निर्णयकों के समक्ष उन्हें विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में यह कार्य हित समूह द्वारा किया जाता है। यही कारण है हित समूह का अध्ययन बेहद महत्वपूर्ण है।"

### 4.2.3. अर्थ एवं परिभाषा-

सामान्य शब्दों में कहें तो दबाव समूह विशेष हितों के साथ जुडे एसे संगठन होते हैं जो अपने समूह के हितों की रक्षा के लिए नीति निर्माताओं पर दबाव बनाते हैं।

वी0ओ0की0 के शब्दों मे - "दबाव समूह वे निजी संघ हैं जो सार्वजनिक नीतियों का प्रभावित करने के लिये बनते हैं।"

ओटी गार्ड के शब्दों में - "दबाव समूह ऐसे व्यक्तियों का औपचारिक संगठन है जिनके एक या अनेक सामान्य उद्देश्य अथवा स्वार्थ होते हैं जो घटनाओं के क्रम को विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को अपने हितों की रक्षा एवं वृद्धि के लिये प्रभावित करते हैं।"

माइनर वीनर के शब्दों में - "हित अथवा दबाव समूह से हमारा अभिप्राय किसी ऐसे ऐच्छिक रूप से संगठित समूह से होता है जो सरकार के संगठन से बाहर रहकर अधिकारियों की नियुक्ति, सरकार की नीति, इसका प्रशासन तथा इसके निर्णय को प्रभावित करने का यत्न करता हो।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि दबाव समूह एक से हित वाले लोगों का एक समूह है जो अपने समूह हित की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव बनाते हैं। ये समूह औद्योगिक, व्यापारिक, व्यावसायिक, श्रमिक समूह विधि निर्माण के कार्य को अपने हित में प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। ये समूह अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति के लिये सभी माध्यमों से दबाव बनाते है।

### 4.2.4. दबाव समूह के प्रमुख तत्वः-

**1. सीमित उद्देश्य:-** जहाँ राजनीतिक दल का उद्देश्य सार्वजनिक हित की पूर्ति करना होता है वहाँ दबाव समूह का उद्देश्य सीमित होता है। यह केवल अपने समूह के हित को पूरा करने का प्रयास करते हैं। ये अपने समूह हित को पूरा करने के बाद या तो निष्क्रिय हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं। इनका स्वार्थ केवल अपने समूह हित तक होता है। ये सार्वजनिक हित, राष्ट्रहित के विषय में सक्रिय नहीं रहते।
**2. सीमित सदस्यताः-** दबाव समूह का जन्म ही वर्ग विशेष, समूह विशेष की हित पूर्ति के लिये होता है। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित रहती है। ये एक विशेष वर्ग के लोग होते हैं। इसमें सम्पूर्ण देश के सभी समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं होता। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित होती है। उदाहरण के लिये वे छात्र संघ, किसान सभा, मजदूर संघ के रूप में दिखायी पड़ते हैं।
**3. संवैधानिक-असंवैधानिक साधनों का प्रयोगः-** दबाव समूह अपने उद्देश्य को पाना चाहते हैं। वे सरकार की विधि निर्माण की प्रक्रिया पर दबाव बना कर अपने उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं। इसके लिये कई बार वे संवैधानिक तथा असंवैधानिक माध्यमों का भी प्रयोग करते है। वे विधि निर्माताओं को धमकी देना, प्रलोभन देना, धन देना, डराना आदि सभी उपक्रम कर अपने लिये कार्य करवाना चाहते हैं। वह सभी प्रकार के हथकन्डे अपना कर अपने हितों की पूर्ति करते हैं।
**4. शासन एवं विधान मण्डल की सदस्यता नहीं:-** ये विधि निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित कर अपने हित में विधि निर्माण चाहते हैं। इस विधि निर्माण प्रक्रिया में खुद को शामिल नहीं करना चाहते अर्थात् स्वयं चुनाव लड़कर विधानमण्डल में पहुँचकर स्वयं कानून बनाने में शामिल नहीं होना चाहते। शासन के उत्तरदायित्व से बाहर रहकर केवल दबाव द्वारा अपने हित साधना चाहते हैं।
**5. अनिश्चित कार्यकालः-** दबाव समूह का जन्म ही निश्चित उद्देश्य एवं हित साधन के लिए होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ ही उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है और वो भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ दबाव समूह जिनके उद्देश्य पूरे नहीं हुए हैं वे बने रहते है। इन दबाव समूहों की सक्रियता में अन्तर आता रहता है।
**6. सभी शासन व्यवस्थाआं में उपलब्धताः-** दबाव समूह आधुनिक समय में सभी शासन व्यवस्थाओं में उपलब्ध दिखायी पड़ते हैं। लोकतन्त्र हो या तानाशाही, पूँजीवादी राज्य हो या समाजवादी राज्य सभी में दबाव समूह सक्रिय दिखायी पड़ते हैं। राबर्ट सी0 वोन के शब्दों में - "दबाव समूह सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में सर्वाधिकारवादी राज्यों में भी पाये जाते हैं।

### 4.2.5. दबाव समूह के उदय के कारण

दबाव समूह के उदय के प्रमुख कारण निम्न हैः-

1. राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से शासन के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक कार्य भी राज्य करने लगा। अपने वर्ग अथवा समूह हित के लिये कानून बनवाने लोग संगठित हुए।
2. औद्योगित क्रान्ति ने मजदूर वर्ग को जन्म दिया। वे अपने हितों के लिये संगठित प्रयास करने लगे।
3. विभिन्न वर्गों की बढ़ती आकांक्षा एवं जागरूकता उन्हें समान हित के आधार पर संगठित करता है।

4. प्रादेशिक निर्वाचन प्रणाली या प्रादेशिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त जो क्षेत्र के आधार पर प्रतिनिधित्व देता है जिसमें आर्थिक समूह, सामाजिक, सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। अतः वे अपने हितों के लिये संगठित होते हैं।
5. बढ़ती महत्वाकांक्षा भी अनेक दबाव समूहों का निर्माण करवाती है। राजनीति में सक्रिय होने की लालसा में कुछ लोग दबाव समूह का गठन करते हैं।

### 4.2.6. राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अन्तर

राजनीतिक दल एवं दबाव समूह किसी भी शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। जहाँ राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र का संचालन नहीं हो सकता वहीं दबाव समूह के बिना भी हम किसी शासन व्यवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। जहाँ राजनीतिक दल सीधे सरकार, नीति निर्माताओं को नियन्त्रित कर राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण करवाते हैं। वहीं दबाव समूह भी समाज एवं शासन के साथ जुड़कर अपने पक्ष में नीतियों का निर्माण करवाते हैं। ये सरकार के साथ समाज एवं व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इसके बावजूद दबाव समूह एवं राजनीतिक दल में कुछ अन्तर है।
मौरिस डूवर्जर ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है - "राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करके उसका उपयोग करना चाहते हैं- वे ऐसा महापौरों, सीनेट सदस्यों को निर्वाचित करवाकर तथा मन्त्रियों एवं राज्य के अध्यक्ष को चुनवाकर करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक सत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करने में हाथ नहीं बँटाते हैं। वे सत्ता से दूर रहते हुये, सत्ता को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। वे उस पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं जिसके पास सत्ता होती है। वे अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ कराने का प्रयास नहीं करते हैं। हैरल्ड ब्रूस ने दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए लिखा है- "दबाव समूह प्रायः राजनीतिक दलों से स्वतन्त्र होते हुए भी उनके सहयोगी होते हैं। परिस्थिति के अनुसार उनके सम्बन्ध बदलते रहते हैं। दबाव समूह सामान्यतः गैर राजनीतिक होते हैं। वे दलीय सीमाओं को लांघकर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।" दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों में प्रमुख अन्तर निम्न है-

**<u>राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अन्तर</u>**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | राजनीतिक दल राजनीतिक | 1. | दबाव समूह गैर-राजनीतिक |
| 2. | राजनीतिक दल का व्यापक क्षेत्र | 2. | दबाव समूह का क्षेत्र छोटा |
| 3. | राजनीतिक दल का कार्यक्रम व्यापक | 3. | दबाव समूह का कार्यक्रम संकीर्ण |
| 4. | राजनीतिक दल संगठित | 4. | दबाव समूह असंगठित भी |
| 5. | संवैधानिक साधनों में विश्वास | 5. | येन-केन प्रकारेण हित सिद्धि |
| 6. | राजनीतिक दल सदैव क्रियाशील | 6. | उद्देश्य सिद्धि तक ही क्रियाशील |
| 7. | राजनीतिक दल विधानमण्डल के भीतर और बाहर कार्य करते हैं। | 7. | दबाव समूह केवल विधानमण्डल के बाहर ही कार्य करते हैं। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 8. | राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त कर लक्ष्य सिद्धि | 8. | दबाव समूह विधि निर्माता व प्रशासक को प्रभावित करने तक सीमित। |

**1. राजनीतिक दल राजनीतिक होते हैं जबकि दबाव समूह गैर राजनीतिकः-** राजनीतिक दलों के उद्देश्य राजनीतिक होते हैं। वे चुनाव में भाग लेते हैं, चुनाव में प्रत्याशी खड़े करते हैं। वे चुनाव जीतकर शासन सत्ता को प्राप्त करना चाहते हैं। दबाव समूह सत्ता प्राप्त करना नहीं चाहते, वे विधायकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रभावित कर दबाव बना नीति को अपने हित में बनवाने का प्रयास करते हैं, जिससे उस वर्ग विशेष (हित समूह) के हितों की पूर्ति हो सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक दल औपचारिक राजनीतिक संगठन होते हैं जबकि दबाव समूह बाहर रहकर अपना हित साधना चाहते हैं।

**2. राजनीतिक दलों का क्षेत्र व्यापक होता है जबकि दबाव समूह का छोटाः-**_ राजनीतिक दलों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसमें अनेक वर्गों, समूहों के लोग शामिल होते हैं। इनकी सदस्य संख्या लाखों में होती है। इसके विपरीत दबाव समूह की सदस्य संख्या सीमित तथा क्षेत्र भी सीमित होता है। कोई भी व्यक्ति एक साथ कितने भी समूहों का सदस्य बन सकता है। परन्तु एक बार में एक ही दल का सदस्य बन सकता है। अतः क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह में अन्तर है।

**3. राजनीतिक दलों के कार्यक्रम व्यापक जबकि दबाव समूह के संकीर्णः-** राजनीतिक दल वर्ष भर संपूर्ण देश में विभिन्न कार्यक्रम चलाते हैं। वहीं दबाव समूह कार्यक्रम एवं हित की दृष्टि से संकीर्ण तो होते ही है साथ ही अत्याधिक सजातीय होते हैं। उनके मुद्दे व हित समान होते हैं। अतः विचारों की संगति ही एकता एवं सजातीयता प्रदान करती है। दूसरी तरह दलों के कार्यक्रम व्यापक क्षेत्र एवं मुद्दे भी व्यापक होते हैं। यही कारण है कि उनमें सजातीयता नहीं हो पाती है। अतः दलों एवं दबाव समूहों में कार्यक्रमों की व्यापकता के आधार पर अन्तर है।

**4. राजनीतिक दल संगठित जबकि दबाव समूह असंगठित होते हैः-** राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश या प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। अतः वे पूर्णतः संगठित होते हैं। इनकी सदस्यता लाखों में होती है। इनका संगठन पद-सोपान पर आधारित होता है। प्रत्येक पदाधिकारी की जिम्मेदारी तय होती है। दल के अंदर लोकतान्त्रिक चुनाव होते हैं। इसके ठीक विपरीत दबाव समूह असंगठित होते हैं। वे केवल त्वरित लाभ एवं हित के लिये नीति निर्माताओं एवं क्रियान्वन करने वालों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

**5. राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों में विश्वास करते हैं जबकि दबाव समूह नहीं :-** राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह में यह प्रमुख अन्तर है। जहाँ दबाव समूह 'चेन केन प्रकारेण' अथवा किसी तरह अपने हित साधना चाहता है। वह हितपूर्ति के लिये अनैतिक, अमर्यादित आचरण जैसे - घूस, शराब आदि का प्रयोग करने से भी संकोच नहीं करते। वहीं राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों के द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य (सत्ता) को प्राप्त करना चाहते हैं। वे हिंसा अथवा अन्य असंवैधानिक साधनों में विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि राजनीतिक दल लोकमत को पक्ष में कर मत के द्वारा सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

**6. राजनीतिक दल सदैव क्रियाशील जबकि दबाव समूह सदैव नहीं:-** राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में यह प्रमुख अन्तर है कि जहाँ राजनीतिक दल का क्षेत्र बड़ा होता है, लक्ष्य बड़ा होता है अतः उनके प्रयास भी बड़े होते हैं। वे वर्ष भर क्रियाशील रहते हैं। वे वर्ष भर कार्यक्रम, आन्दोलन चलाते हैं। दूसरी तरफ दबाव समूह सदैव क्रियाशील नहीं रहते। वे केवल अपने हितों के लिये सक्रिय होते हैं और हित पूरा होते ही निष्क्रिय हो जाते हैं।

**7. राजनीतिक दल विधानमण्डल के अन्दर एवं बाहर कार्य करते हैं जबकि दबाव समूह केवल बाहरः-** राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में प्रमुख अन्तर है जहाँ राजनीतिक दल जनता के समर्थन से सत्ता पाते हैं। इसलिये वह इस समर्थन को खोना नहीं चाहते। अतः वह सदैव जनता के बीच रहते हैं। तथा विधायिक में भी अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह केवल अपने समूह में सक्रिय रहते हैं। वह विधानमण्डल के सदस्य नहीं होते अतः वहाँ सक्रिय नहीं रहते।

**8. सत्ता प्राप्ति को लेकर अन्तरः-** राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त कर अपने नीतियों एवं सिद्धान्तों को लागू करना होता है जबकि दबाव समूह केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति चाहता है। वह सत्ता प्राप्ति की लालसा नहीं रखते। वे केवल विधि निर्माताओं, प्रशासकों को प्रभावित कर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं।

### 4.2.7. दबाव समूह के साधन

आज दुनिया में लाखों दबाव समूह कार्यरत हैं। इन सबके अपने उद्देश्य एवं कार्य करने के तरीके हैं। दबाव समूहों के साधन एवं उद्देश्य को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं रहा। कुछ विद्वान इनमें अनेक बुराइयाँ देखते हैं तथा लोकतन्त्र भ्रष्ट करने का माध्यम मानते हैं। वहीं कुछ विद्वान इसे उचित, राजनीतिक प्रक्रिया में उत्पन्न रिक्तता को भरने का माध्यम मानते हैं। अमेरिका एवं ब्रिटेन के दबाव समूहों के प्रति नजरिये में भी अन्तर है। जहां अमेरिका में इन्हें भ्रष्टता के गढ़ के रूप में देखा जाता है वहीं ब्रिटेन में यह लोकतन्त्र के अनिवार्य हिस्से के रूप में देखे जाते हैं। दबाव समूहों द्वारा अपनाये जाने वाले साधन इस प्रकार हैः-

**1. संगठन निर्माणः-** दुनिया में दो तरह से दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। कुछ दबाव समूह पूर्णतः संगठित होते हैं। वे पद-सोपान के क्रम में संगठित होते हैं। संगठन बनाकर वह कार्य विभाजन करते हैं। इस तरह वह उत्तरदायित्व तय कर अपने उद्देश्यों को पाने का प्रयास करते हैं।

**2. लॉबीगः-** दबाव समूह का यह महत्वपूर्ण साधन है। अमेरिका में यह तरीका बहुत लोकप्रिय है। इसमें दबाव समूह के सदस्य विधायिका के सदस्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इस उद्देश्य के लिये विभिन्न दबाव समूह विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं। दबाव समूह द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा प्रमुख साधन है।

**3. सामूहिक प्रचारः-** दबाव समूह द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा प्रमुख साधन है। वे अपने उद्देश्यों, लक्ष्यों का व्यापक प्रचार करते हैं। वे विभिन्न प्रचार एजेन्सियों के माध्यम से अपनी मांगों को सरकार तक पहुँचाते हैं तथा उन्हें वैध ठहराते हैं। वह सुनियोजित ढंग से व्यापक प्रचार अभियान द्वारा सरकार पर दबाव बनाते हैं। इस साधन के द्वारा सरकार पर दबाव बना अपना हित साधते हैं।

**4. पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशनः-** दबाव समूह का यह महत्वपूण साधन है। इसमें विभिन्न समूह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। वे अपनी मांगों का ने केवल प्रचार करते हैं। वरन् उनको सही भी ठहराते हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार दूर-दूर तक किया जाता है। इससे दबाव समूह को अनेक लाभ होते हैं। उन्हे प्रचार, वैधता तो मिलती ही साथ ही अनेक नये सदस्य भी मिलते हैं जिससे इनकी सदस्य संख्या बढ़ती है।

**5. जनता से सीधा सम्पर्कः-** दबाव समूह के पास सदस्यता होती है। वे सीधे जनता से सम्पर्क करते हैं। वे जनता के बीच जाकर अपनी मांगों का प्रचार करते हैं। साथ ही जनसमर्थन भी प्राप्त करते हैं। उनको प्राप्त जनसमर्थन ही उनकी शक्ति होती है जिसके माध्यम से भी वह अपनी मांगों को पूरा करवाते हैं।

**6. विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्धः-** दबाव समूह सीधे चुनाव में भाग नहीं लेते परन्तु वे विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्ध रखते हैं। वे उनको विधायिका में पहुँचाकर अपने हितों की पूर्ति करवाते हैं। भारत में भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ ;प्छज्न्ब्द्ध साम्यवादी दलों से, भारतीय मजदूर संघ ( भारतीय जनता पार्टी से) जुड़ा हुआ है।

**7. हड़ताल एवं धरना प्रदर्शनः-** दबाव समूह सरकार एवं विधि निर्माताओं पर दबाव बनाने के लिये हड़ताल एवं धरना प्रदर्शन करते हैं। इसके माध्यम से वह अपने साथ उपस्थित संख्या बल प्रदर्शित करते हैं। वे इसके माध्यम से सरकार का ध्यान आकृष्ट कर अपनी मांगों को मनवाने का प्रयास करते हैं।

**8. न्यायालय की मददः-** दबाव समूह अपने हितों के लिये विभिन्न उपक्रम करते हैं। परन्तु कई बार ऐसे कानून बन जाते हैं जो उनके हितों के विरूद्ध होता है तो वे न्यायालय की शरण में जाकर उन कानूनों का रद्द कराना चाहते हैं। वे कई बार किसी मामले में सार्वजनिक हित का हवाला देकर सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका (P.I.L.) भी करते है। अतः दबाव समूह न्यायालय की मदद भी लेते हैं।

**9. गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन -** वे समय - समय पर जनजागरण बढ़ाने के लिये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन करते हैं। ये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन सूचनाओं के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण माध्यम है। वे इन सभाओं, गोष्ठियों में विधि निर्माताओं एवं प्रभावशाली व्यक्तियों का आमन्त्रित करते हैं। वे इससे अपने मतों को प्रभावशाली ढंग से रखते हैं तथा अधिकारियों एवं नीतिनिर्माताओं को अपने पक्ष में करने का प्रयास करते हैं।

**10. अनैतिक माध्यमों का उपयोगः-** दबाव समूहों कई बार हित साधने के लिये अनैतिक साधनों का भी प्रयोग करते हैं। वे असंवैधानिक साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते हैं। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूह की व्यापक आलोचना भी की जाती है।

### 4.2.8. दबाव समूहों के दोष

दबाव समूहों के सम्बन्ध में विद्वानों में एकमत का अभाव है। जहाँ ब्रिटेन के विचारक इसे लोकतन्त्र के लिये स्वाभविक मानते हैं। वहीं अमेरिका की व्यवस्था से जुडें विद्वान इसे लोकतन्त्र में अनैतिकता एवं अमर्यादित आचरण के वाहक मानते हैं। वे कहते है कि दबाव समूह लोकतन्त्र में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता को बढ़ा रहे हैं। दबाव समूहों के प्रमुख दोष निम्न हैः-

1. संकीर्ण विचारों पर आधारित
2. अप्रजातान्त्रिक एवं अनुत्तरदायी समूह
3. व्यापक सामाजिक हित, राष्ट्रहित की उपेक्षा
4. भ्रष्ट एवं अमर्यादित आचरण के प्रणेता
5. वसुधैव कुटुम्बकम अथवा सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के विरूद्ध
6. दलीय अनुशासन के विरूद्ध
7. लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना

### 4.2.9. दबाव समूहों के प्रकार अथवा वर्गीकरण

समाज में कई तरह के दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। संगठन के आधार पर यह जनवादी समूह तथा परम्परागत या विशिष्ट वर्गीय समूह के रूप में दिखते हैं अनेक विद्वानों ने दबाव समूहों के वर्गीकरण प्रस्तुत किये है। लोकतान्त्रिक देशों में यह मुख्य रूप से छोटे, बड़े, स्थाई, अस्थाई कई प्रकार के दबाव समूह पाये जाते हैं। यह वर्गीकरण लक्ष्य, संगठन की प्रकृति, अवधि, कार्य, क्षेत्र आदि के आधार पर किया जाता है।

लक्ष्य के आधार पर यह स्वार्थी एवं परोपकारी तथा संगठन के आधार पर औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा कार्य क्षेत्र के आधार पर सीमित एवं वृहद कार्य क्षेत्र वाले दबाव समूह कहा जा सकता है। राजनीति शास्त्र में अनेक विद्वानों ने जैसे आमण्ड, हिचनर, जीन ब्लोण्डेल ने अलग-अलग वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। इनमें से आमण्ड एवं ब्लोण्डल के वर्गीकरण इस प्रकार है-

**आमण्ड का वर्गीकरण:-**

आमण्ड ने दबाव समूहों को चार भागों में बाँटा। उसके वर्गीकरण को अनेक विद्वानों के साथ हिचनर एवं लेवाइन ने स्वीकार किया। आमण्ड ने हित समूह (दबाव समूह) को चार भागों में बांटा:-

1. संस्थागत हित समूहः- सेना, पुलिस, प्रशासनिक अधिकारियों के संगठन
2. प्रदर्शनात्मक या उद्दण्ड हित समूहः- हिंसक , सविंधान विरूद्ध कार्य करने वाले
3. साहचर्य हित समूह:-व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि
4. असाहचर्य हित समूहः- ब्राहमण महासभा, क्षत्रिय महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड

जीन ब्लौण्डेल का वर्गीकरणः-

1) सामुदायिक हित समूह

- रूढ़िगत (Customary Pressure Group)- क्षत्रिय महासभा जाट संघ
- संस्थागत (Institutional Pressure Group)- सैनिक कल्याण परिषद, कर्मचारी संघ

2) साहचर्य हित समूह

- संरक्षात्मक (Protective Pressure Group) - श्रमिक, व्यापारिक संघ
- उत्थानात्मक (Promotional Pressure Group) - गौ-रक्षा, नारी कल्याण

उपरोक्त दो वर्गीकरण को देखने के बाद दबाव समूह के निम्न प्रकार बनाये जा सकते हैः-

दबाव समूह के प्रकारः-

**1. संस्थानात्मक दबाव समूहः-**

संस्थानात्मक दबाव समूह वह होते हैं जिनका अपना संगठनात्मक ढांचा होता है जो किसी न किसी संस्था से जुडे होते हैं। ऐसे दबाव समूह में मुख्य रूप से सेना, पुलिस नौकरशाही जैसे विभिन्न संस्थान आते हैं। ये विभिन्न संस्थानों में कार्य कर रहे लोगों को अपने हित में बनाया समूह होता है। इनके सदस्य इनके साथ अन्य समूहों की सदस्यता भी लेते हैं। भारत में ऐसे दबाव समूह मुख्य रूप से भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक अधिकारी संघ प्रमुख हैं।

**2. समुदायात्मक दबाव समूहः-**

समुदायात्मक संघ मुख्य रूप से अपने समुदाय विशेष के हितों की पूर्ति के लिये संगठित होते हैं। ये स्वतन्त्र होते हैं। ये किसी अन्य संस्था से जुड़े हो सकते हैं। ये मुख्य रूप से एक साथ एक व्यवसाय करने से बने समूह होते हैं। इनमें मुख्य रूप से व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि आते हैं।

**3. असमुदायात्मक दबाव समूहः-**

इस समूह की मुख्य प्रेरक शक्ति जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, अथवा रक्त समूह होता है। ये स्वतः स्फूर्त समूह होते हैं। प्रायः यह संगठित नहीं होते। ये बेहद प्राचीन समय से अस्तित्व में हैं। इस समूह के पीछे अदृश्य रूप से समाज के परम्परागत मूल्य बन्धन का कार्य करते हैं। इसमें मुुख्य रूप से क्षत्रिय महासभा, कायस्थ महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड आदि है।

**4. उद्दण्ड या प्रदर्शनकारी दबाव समूहः-**

यह मुख्य रूप से वह समूह है जो अपनी मांगों को लेकर हिंसक और संविधान विरूद्ध कार्य करने लगते हैं। वे अपनी मांगों को लेकर हड़ताल, धरना प्रदर्शन, अनशन, सार्वजनिक सम्पति को नुकसान पहुँचाना, रोड ब्लाक, आगजनी आदि का सहारा लेते हैं। वे इस अमर्यादित आचरण से शासन पर दबाव बनाने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि दबाव समूहों का स्थान विभिन्न शासन प्रणालियों में बेहद मजबूत है। प्रारम्भ में इन्हें अनैतिक, आदर्शों के विरूद्ध एवं लोकतन्त्र को नष्ट करने वाला माना गया।

समय के साथ राज्य के क्षेत्र, जनसंख्या एवं कार्य बढ़ने से राजनीतिक दलों की लोगों तक पहुँचने में असमर्थता तथा लोगों की बढ़ती महत्वाकांक्षा एवं जागरूकता ने राजनीतिक रूप से दबाव समूह को जन्म दिया। आज लोकतन्त्र की कल्पना भी उनके बिना नहीं हो सकती। वे सूचनायें एकत्रित एवं प्रसारित करते हैं, सरकारों पर नियन्यत्र रखते हैं, व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की कमी को पूरा करते हैं, सरकार एवं जनता के बीच कड़ी का काम करते हैं। वे विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल के समान है। कतिपय यही कारण है कि फाइनर ने उन्हें 'अज्ञात साम्राज्य' कहा।

### 4.2.10. दबाव समूह एवं लॉबीइंग में अंतर

दबाव समूह एवं लॉबी को सामान्यतः एक ही समझा जाता हैं वास्तव में दोनों में बड़ा अंतर है। दबाव समूह का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है तथा अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य को प्राप्त करने के उनके माध्यम भी व्यापक होते है। दबाव समूह अपने व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रचार, पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन राजनीतिक दलों पर दबाव , हड़ताल, प्रदर्शन , न्यायालय की शरण तथा गोष्ठियों आदि का सहारा लेते है। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अनैतिक माध्यमों का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करते है। वे अपने उद्देश्य के लिये सरकारी आकड़ों का विश्लेषण कर वह उनका प्रदर्शन कर अपने पक्ष को मजबूत करते है।

इसके विपरीत लाबीइंग का क्षेत्र एवं कार्यविधि दोनों ही दबाव समूह से संकुचित होती है। लांविग के अन्तगत केवल विधि निर्माताओं के ऊपर दबाव एवं प्रभाव बनाया जाता है। विधि निर्माताओं को किसी भी प्रकार से प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। वे उन्हें प्रलोभन देने वं अनैतिक माध्यमों का प्रयोग कर अपने पक्ष में विधि निर्माण अपने पक्ष में कराने में विश्वास करते है। वे विधेयकों को अपने पक्ष में पास कराने का प्रयास करते है। वे जनमत को बिल्कुल ही महत्व नहीं देते । वे सामान्यतः विधानसभा के लॉबी में सक्रिय रहते है और निजी सम्पर्कों के द्वारा विधायकों को अपने पक्ष में कर कानून अपने लिये बनवाने में सफल हो जाते है।

### 4.2.11. दबाव समूह एवं हित समूह में अंतर

सामान्यतः दबाव समूह एवं हित समूह को एक ही समझ लिया जाता है। वास्तव में दबाव समूह एवं हित समूह में एक बारीक रेखा है। यहाँ पर लाथम का कथन उल्लेखनीय है-" सभी हित समूह दबाव समूह नहीं होते है, किन्तु परीस्थितिवश वे दबाव समूह की श्रेणी में आ जाते है। "ऐसा माना जाता है कि जब तक हित समूह सक्रिय नहीं रहते वे हित समूह रहते है। परन्तु जैसे ही वे हित पूर्ति के लिये सक्रिय हो जाते है वो दबाव समूह में परिवर्तित हो जाते है। इस संबंध में पी0 एन0 मसालदान का विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है-" समाज में व्यक्तियों के केवल सामान्य हित ही नहीं होते है , अपितु कुछ विशेष हित भी होते है।" साधारणतया व्यक्ति अपन विशेष व्यवसायिक एवं आर्थिक हित को ज्यादा महत्व देता है। जिन व्यक्तियों के आर्थिक एवं व्यससायिक हित एक से होते है। वे एक हित गुट बन जाते है। कुछ हित गुट मजबूती से संगठित होते है। जब वह संगठित हो अपने विशेष हितों की पूर्ति के लिये सक्रिय हो शासन पर दबाव डालते है। तब वह दबाव समूह मे परिवर्तित हो जाते है।"

कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह के अन्तर को बरीकी से स्पष्ट किया। उनके अनुसार -" विभिन्न आर्थिक , व्यवसायिक ,धार्मिक नैतिक और अन्य समूहों से भरे आधुनिक बहुलवादी समाज के सम्मुख अनिवार्य रूप् से एक बड़ी समस्या यही है कि विभिन्न हितों तथा शासन के बीच सामजस्य कैस रहे। एक स्वतन्त्र समाज के लिए हित समूह को स्वतन्त्र रूप से संगठित होने की आवश्यकता रहती है और जब वे समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया को प्रभावित करने का यत्न करते है और इस प्रकार कानूनों, नियमों, लाइसेन्स, तथा अन्य विधायी और प्रशासकीय कार्यो को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते है तो वे हित समूह दबाव समूह में बदल जाते है और हित समूह की गतिविधियों सरकार पर दबाव डालने की हो जाती है।"

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक समय में जागरूक समाज विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य आवश्यकताओं के लिये एकजुट हो हित समूह बनाते है। जब वे इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वे सक्रिय होते है। और सरकार पर दबाव बनाने, प्रभावित करने का प्रयास करते है तब वह दबाव समूह में परिवर्तित हो जाते है। दबाव समूह एवं हित समूह में प्रमुख अन्तर निम्न हैः-

1. हित समूह अपने हितों की वृद्धि के लिये आग्रह , निवेदन आदि साधनों का प्रयोग करते है जबकि दबाव समूह सदैव दबाव की नीति अपनाते है।

2. हित समूह अपने हितों की रक्षा के लिये शासन को प्रभावित या उन्हें पीछे ढकलने का प्रयास नहीं करते है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिये विशेष रूप से प्रयासरत रहते है।

3. हित समूह जागृत नागरिक समाज का हिस्सा होता है। ये हमेशा अपने हितों के लिये सजग रहते है। इनका राजनीति से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं रहता है। दबाव समूह सरकार पर दबाव बनाने के लिये हर माध्यम का प्रयोग करते हैं। वे राजनीति के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखते है।

### 4.2.12. दबाव समूह राजनीति की प्रभावकारिता के निर्धारक

दबाव समूह का अस्तित्व आज के सभी लोकतन्त्रों में पाया जाता है। आज के लोकतन्त्रों की कल्पना भी दबाव समूहों के अभाव में नहीं की जा सकती है। यह अलग बात है कि कुछ लोकतन्त्रों में ये अत्याधिक प्रभावशाली होते है तथा कुछ स्थानों पर वह सक्रिय नहीं रहते है। एक्सटीन की मान्यता है कि ये तीन तत्व ही दबाव समूह के प्रभावशीलता को तय करते हैः-

1. दबाव समूह के स्वयं के लक्षण का प्रभाव
2. सरकार की गतिविधियों का प्रभाव
3. सरकार की संरचनाओं के निर्णय लेने के का प्रभाव

(1) दबाव समूह के लक्षणः- एक्सटीन के मतानुसार दबाव समूह की स्थिति भी कई बार उसकी प्रभावशीलता के लिये जिम्मेदार होते है। दबाव समूह की आर्थिक स्थिति, उनका आकार, संगठन का ढ़ाचा, कार्यकर्ताओं की निष्ठा, आदि दबाव समूह के प्रभाव को निर्धारित करते है। यह भी देखा गया है कोई दबाव समूह अपने सदस्यों की कर्मठता, निष्ठा तथा नेताओं की योग्यता से हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावी रहते है वहीं कुछ दबाव समूह आर्थिक मजबूत स्थिति तथा बड़ी सदस्य संख्या होने के बावजूद प्रभावी नहीं हो पाते है।

(2) सरकार की गतिविधियों का प्रभावः- सरकार की गतिविधियें तथा उनके निर्णय लेने की क्षमता भी दबाव समूह के प्रभाव को को निश्चित करती है। सरकार का ढ़ाचा अनिवार्य रूप् से दबाव समूह के प्रभाव को स्पष्ट करता है। जहाँ निरकुंश शासन व्यवस्था में दबाव समूह का प्रभाव नगण्य हो जाता है। वहीं लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में दबाव समूहो के समक्ष पर्याप्त अवसर रहता है। वे लोकतन्त्र में बेहद प्रभावशाली हो जाते है।

(3) सरकार के निणर्य लेने की क्षमता का प्रभावः- दबाव समूह की प्रभावशीलता भी अनेक कारणों से प्रभावित होती है। उनमें सरकार की निर्णय लेने की क्षमता भी एक है। यदि सरकार सक्षम है , त्वरित निर्णय लेने में समर्थ है तब कई बार नागरिक समाज से बने दबाव समूह के पास कार्यों को करने का

अवसर ही नहीं रह जाता है। उन शासन व्यवस्था में दबाव समूह ज्यादा सक्रिय एवं कारगर रहते है। जहाँ पर सरकारें अनिर्णय की स्थिति में तथा असंवेदनशील होती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दबाव समूह की प्रभावशीलता कई कारणों से प्रभावित होती है। सरकार की नीति निर्माण की क्षमता दबाव समूह के प्रभव को तय करते है। कतिपय यही कारण है पश्चिम के उदार लोकतन्त्रों में भी दबावसमूहों के प्रभाव शक्ति में अंतर पाया जाता हैं। विकासशील देशों में भी सरकार की नीति निर्णय प्रक्रिया की संरचना, दल पद्धति का स्वरूप् तथा राजनीतिक व्यवस्था का संचालन भी दबाव समूहों के प्रभाव को घटाते एवं बढ़ाते दिखते है।

### 4.2.13. दबाव समूह की सक्रियता के विभिन्न स्थान

यह स्वीकार तथ्य है कि लोकतन्त्र में दबाव समूह अपरिहार्य है। उनका लोकतन्त्रों में व्यापक प्रभाव रहता है। इस संबंध में एलनबाल का कथन उल्लेखनीय है-" उदारवादी लोकतन्त्रों में दबावसमूहों की कार्यविधियाँ मुख्यतः कार्यपालिका तथा संसदीय स्तरों पर निर्णयकारी प्रक्रियाओं को प्रभावित करेन से संबध रखती है। इसमें से किसी भी स्तर पर बल देने का प्रयास आंशिक रूप से इन तीन भिन्नताओं पर निर्भर करेगा।" राजनीतिक संस्थायें, दल पद्धति, राजनीतिक संस्कृति।" दबाव समूह हर लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में सक्रिय रहते है। इनकी सक्रियता का प्रमुख जोर उन संस्थाओं पर रहता है जिनसे इनके हितों की रक्षा और पूर्ति संबंधी निर्णय लिये जाते है। दूसरे शब्दों में कहे तो सरकार के सभी अंगों के साथ दबाव समूह सक्रिय रहता है। वे हर निर्णय निर्माण, क्रियान्वयन के स्तर पर सक्रिय रहते है। वे कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के साथ निकट संबंध रखते हुए , अपने हितों की पूर्ति कराने का प्रयास करते है। वे नौकरशाही के साथ भी घनिष्ठ संबंध रखते है। उनकी सक्रियता के विभिन्न स्थान निम्न हैः-

**1. कार्यपालिका पर प्रभावः-** समय गुजरने के साथ विधायिका की शक्तियों का क्षय हुआ और कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि हुई। कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र में वृद्धि हुई। कतिपय यही कारण है कि आधुनिक समय में दबाव समूह का लक्ष्य क्षेत्र (Traget Area) कार्यपालिका होती है। संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक शासन दोनों ही व्यवस्थाओं में कार्यपालिका की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विधि निर्माण के कार्य संलग्न रहती है। बजट निर्माण करना, कर प्रस्ताव, महत्वपूर्ण पदों के लिये नियुक्तियाँ आदि कार्यों में कार्यपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः दबाव समूह कार्यपालिका के स्तर पर सक्रिय हो अपने हितों की पूर्ति का प्रयास करते है। इस कार्य हेतु वे मंत्रियां, विभिन्न मत्रांलयों की परामर्शदायी समितियों को , विरोधी खेमों के सदस्यों को प्रभावित करने का प्रसास करते है। वे व्यवस्थापिका में भी प्रश्नों को उठाकर कार्यपालिका को प्रभावित करने में सफल हो जाते है। आज के समय में कार्यपालिका के शक्तिशाली स्वरूप को देखते हुए दबाव समूह अपनी पूरी शक्ति कार्यपालिका के ऊपर लगाकर उनको प्रभावित करने का प्रयास करती है। संसदीय शासन व्यवस्था में आज व्यवस्थापिका अनुचर बन कर रह गई है। कतिपय यही कारण है कि आज कार्यपालिका दबाव समूहों के द्वारा सर्वाधिक प्रभावित किया जाता है।

**2. व्यवस्थापिका पर प्रभावः-** व्यवस्थापिका सरकार का वह अंग है जो कानून बनाने का कार्य करती है। यही कारण दबाव समूह विधायिका को प्रभावित कर कानूनों को अपने हितों के अनुरूप बनवाने का प्रयास करते है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे चुनाव प्रचार, आर्थिक सहायता, द्वारा पहले

विधायकों को अपने ऊपर आश्रित बना लेते है। उसके बाद वे उन्हीं के द्वारा अपने लिये विधि निर्माण करवाते है। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण अमेरिका में मिलता है जहाँ चुनाव में दबाव समूह प्रत्याशियों के चयन से लेकर निर्वाचन तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कई बार यही कारण है कि अमेरिका में काँग्रेस के सदस्य दलों की अपेक्षा दबाव समूह से अधिक घनिष्ठता दर्शाते है। इस संबंध में डी0 एम0 बर्मन ने लिखा है-" काँग्रेस (विशेषकर प्रतिनिधि सभा) के सदस्य अपने को दबाव समूह के पंजों में दबा हुआ महसूस करते है। अपने दल के आदेशों की तुलना में वे दबाव समूहों के आदेशों को ज्यादा महत्व देते है।"

इस संबंध में एलन वाल का विचार महत्वपूर्ण है। वे मानते है कि संसदीय शासन में दबाव समूह की सक्रियता बहुत महत्वपूर्ण है। आज व्यवस्थापिका कानून निर्माण की औपचारिकता ही निभाती है। यही कारण है दबाव समूह दल के बड़ें नेताओं, अधिकारियों पर ध्यान केन्द्रित करते है। दबाव समूह राजनीतिक दलों का अधिक प्रभावित करते है। अमेरिका में जहाँ अध्यक्षात्मक शासन है वहाँ पर विधायकों के ऊपर दलीय अनुशासन कठोर नहीं होता है। वहां दबाव समूह विधायिका के सदस्यों को प्रभावित करने का प्रयास किया। वे कई बार उनसे दल के विरूद्ध दबाव समूह के हित में मतदान करते हुए भी दिखायी पड़ते है।

**3. न्यायपालिका पर प्रभावः-** लोकतन्त्रों में न्यायपालिका को स्वतन्त्र रखने का प्रयास किया गया है। संविधान के द्वारा न्यायपालिका को ही संविधान की रक्षा तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी दी गई है। कुछ देशों मे न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति होती है जिसकेू द्वारा वे विधायिका एवं कार्यपालिका के ऊपर प्रभाव स्थापित करने में सफल हो जाते है। न्यायिक पुनरावलोकन के द्वारा न्यायपालिका की सर्वोच्चता अन्य दो अंगों पर स्थापित हो जाती है। इन व्यवस्थाओं में आम धारणा के विरूद्ध दबाव समूह न्यायपालिका मे सक्रिय हो अपने हितों को साधने का प्रयास करती है। एलेन बाल के शब्दों में -" अमेरिका में दबाव समूह ऐसे न्यायधीशों के चुने जाने के लिये प्रयत्नशील रहते है जो बहुधा राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे होते है। वे ' टेस्ट केसेज' का इस्तेमाल करके और न्यायधीशों के कुछ निर्णयों का प्रभावित करने के लिये जन अभियान चलाकर, न्यायधीशों पर दबाव डालने की कोशिश करते है।"

भारत में भी न्यायधीशों को प्रभावित करने के प्रयास पूर्व में भी हुए है। और आज भी इसके उदाहरण मिल जाते है। भारत में प्रीवियर्स, तथा बैकों के राष्ट्रीयकरण के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई के समय दबाव समूह काफी सक्रिय दिखायी पड़े थे। कुछ विद्वान इन संकेतों को लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत नहीं मानते है। इसके बावजूद आधुनिक समय में दबाव समूह की कार्यप्रणाली, प्रभाव ऐसा है जिससे सरकार का कोई अंग बच नहीं सकता है।

**4. प्रशासनिक स्तर पर प्रभावः-** दबाव समूह प्रशासनिक अधिकारियों को भी प्रभावित करने का प्रयास करते है। सभी नीतियों, कानूनों का क्रियान्वयन प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा होता है। प्रदत्त विधायन में कानून बनाने में अधिकारियों एवं विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है। ऐसी स्थिति में दबाव समूह सक्रिय हो इनसे अपने हितों की पूर्ति करवाने का प्रयास करते है। एलन वाल का मत है कि विधि निर्माण तथा क्रियान्वयन के समय अपनी तकनीकी ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण अधिकारियों की स्थिति कई बार मंत्रियों से भी श्रेष्ठकर हो जाती है। ऐसे मे दबाव समूह को अपने हित साधने का अवसर इन

अधिकारियों को प्रभावित कर प्राप्त हो जाता है। विकासशील देशों में दबाव समूह की सक्रियता प्रशासनिक स्तर पर ज्यादा दिखायी पड़ता है।

**5. निर्वाचन के स्तर पर प्रभाव:-** दबाव समूह निर्वाचन के स्तर पर भी प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करते है। इकबाल नारायण के शब्दों में-" कई बार दबाव समूह जब अपने हितों की पूर्ति करने में असफल हो जाते है तो वे चुनाव के अवसर पर आर्थिक शक्ति अथवा अन्य आधार पर राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने का प्रयास करते है। जाति, प्रजाति, सम्प्रदाय , क्षेत्र तथा शक्ति के द्वारा वे सबसे पहले सभी राजनीतिक दलों क संभावित प्रत्याशियों की सूची में अधिकाधिक संख्या में अपने सदस्यों को शामिल करवाने का प्रयास करते है। इसके लिये दलों का आर्थिक समर्थन करते है। यदि वे ऐसा कराने मे असफल होते है तो वे संबंधित दल के विरूद्ध प्रचार अभियान शुरू कर देते है। चुनाव जैसे-जैसे महंगा होता जा रहा है वैसे-वैसे दबाव समूहों का महत्व बढ़ता जा रहा है। आज दबाव समूह का प्रभाव निर्वाचन में ज्यादा है क्यांेकि मँहगे चुनाव में प्रत्याशियों की निर्भरता धन के लिये इन दबाव समूहों पर ज्यादा हो गई है। अतः विजयी होने के बाद उन्हें अपने आर्थिक सहयोगी की इच्छानुसार चलना पड़ता है।

दबाव समूह की सक्रियता के ये स्तर लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित है। सर्वाधिकारवादी तथा निरंकुश शासन व्यवस्था में इनकी सक्रियता नहीं चल पाती है। सर्वाधिकारवादी व्यवस्था में दबाव समूह का अस्तित्व तो ऐसा है परन्तु उनका प्रभाव बेहद कम होता है। वे राज्य नियन्त्रित उद्योगों के प्रबन्धक की भूमिका में रहते है।

### 4.2.14. दबाव समूह और लोकतन्त्र

दबाव समूह को लोकतन्त्र की आवश्यकता बताया जाता है। लोकतन्त्र में सरकारें जनता के पास पांच वर्षों के बाद आती है। पांच वर्ष से पहले राजनीतिक दल तथा दबाव समूह ही राजनीतिक व्यवस्था का संचालन करते है। वे आमजनता को जागरूक करते है, सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा उनकी खामियों का प्रचार करते है। वे सरकार के ऊपर समूह बनाकर दबाव बनाते है। तथा अपने हितों की पूर्ति करवाते है। वे कई बार सरकार के ऊपर अंकुश लगाने के लिये आंदोलन, प्रदर्शन, करना आदि का मार्ग भी अपनाते है। टूमैन ने अपनी पुस्तक गर्वनमेटंल प्रासेस में दबाव समूहों को लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सुरक्षा एवं उसके सरल संचालन के लिये आवश्यक माना है। उनका मानना था कि -" प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है अतः पारस्परिक प्रतियोगितारत समूहों के द्वारा खेल के नियमों के पालन में मर्यादा उल्लंघन किये जाने पर वह अपनी ओर से तीव्र प्रतिक्रिया ही व्यक्त नहीं करता वरन अपने स्वयँ के समूह की भी मर्यादा का उल्लघंन नहीं करने देता। इस प्रकार सभी समूहों में आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया की ऐसी मर्यादा बन जाती है जिसका पालन सभी करते है। ऐसी स्थिति में किसी समूह या शासन के द्वारा सत्ता के दुरूपयोग की संभावना न्यूनतम रहती है। कोई भी समूह शक्तिशाली नहीं बन पाता तथा विविध समूहों तथा शासन के बीच एक शक्ति का एक सक्रिय संतुलन बना रहता है। यह लोकतन्त्र को आदर्श अवस्था है।" वह आगे और स्पष्ट करते हुए कहते है कि यदि प्रतियोगिता अमर्यादित होगी तो जनतांत्रिक परम्परायें अक्षुण्ण नहीं रहेगी वरन लोकतन्त्र तभी सफल होगा जब समूह प्रतियोंगितारत रहते हुए भी नियमों एवं सीमाओं का पालन को।

लोकतन्त्र में समूह बनाने की स्वतन्त्रता रहती है। कतिपय यही कारण है कि लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में व्यक्ति एक साथ ही जातीय , धार्मिक, क्षेत्रीय , व्यवसायिक, भाषायी, वर्गीय, उपभोक्ता, उत्पादक आदि

अनेक समूहों संगठनों का सदस्य होता है। इन संगठनों की सदस्यता औपचारिक नहीं होती परन्तु इसके बावजूद संकट के समय या सरकार के द्वारा अत्याचार के समय इन संगठनों के द्वारा न केवल विरोध किया जाता है वरन बड़ी संख्या में सहानुभूति एवं समर्थन जुटाया जाता है। यह लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत है। इसका द्वारा सरकारों के ऊपर नियन्त्रण स्थापित होता है। वे दूसरे संगठनों के साथ प्रतिस्पर्धा में रहते हुए भी वे सरकार को संतुलित एवं नियन्त्रित करने का कार्य करते है। कतिपय यही कारण है लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिये दबाव समूहों की उपस्थिति अनिवार्य है।

दबाव समूह समाज में अतिवादी (उग्र) विचार के विरोधी होते है। विभिन्न समाजों में हित समूहों के अलग-अलग हित होते है। इन समूहों में शासन को अपनी ओर खींचने की प्रतियोगिता होती है। इस प्रतियोगिता से समूहों के बीच कुछ नियमों पर सहमति भी हो जाती है। सभी समूह उनका पालन करते है। ऐसे में कोई समूह बनना चाह कर भी नहीं बन पाता है। किसी भी समूह की उग्र एवं असंवैधानिक कार्यो एवं नीतियों को अन्य समूहों के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। यही कारण है कि दबाव समूहों को शक्ति संतुलक भी कहा जाता है। वे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक शक्तियों के बीच संतुलन स्थापित करते है। वे किसी एक संगठन एवं समूह को अत्याधिक प्रभावशाली नहीं होने देते है। कतिपय यही कारण है कि उन्हें समाज में शक्ति संतुलन को बनाये रखने तथा लोकतन्त्र को मजबूत करने वाला समूह माना जाता है। दूसरे शब्दों में कहे तो वे लोकतन्त्र के आधार स्तम्भ है। यह दो चुनाव के अंतराल में राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करते है। ये सरकारों को नियन्त्रित करते है। यह सरकारों को उत्तरदायी बनाते है। यह जनता के हितों के लिये सरकार को उनकी माँगों से अवगत कराते है। सरकार को जनहित के प्रति सचेत करते है। ये समाज में विभिन्न समूहों एवं संगठन के उग्र प्रयासों को नियन्त्रित करते है। यह संगठनों को न केवल नियन्त्रित करते है वरन उनके बीच एक संतुलन बनाने का प्रयास करते है। उनके बिना लोकतन्त्र को सुदृढ़ एवं स्थिर रखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूहों को लोकतन्त्र की 'जीवन डोर' कहा जाता है।

### 4.2.15. विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं (सरकारों) में दबाव समूह

रावर्ट सी बोन ने दबाव समूह के ऊपर व्यापक विश्लेषण किया। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक दबाव समूह राजनीतिक व्यवस्था में ही कार्य करते है। हर राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों की स्थिति, उनकी प्रभावशीलता अलग-अलग होती है। बोन ने अध्ययन की सरलता के लिये दुनिया की राजनीतिक व्यवस्थाओं को पाँच भागों में बांटा। विभिन्न शासन व्यवस्था में दबाव समूह की भूमिका इस प्रकार हैः-

**4.2.15.1. आँग्ल अमेरिका राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह (Pressure groups in Angle –American Political system)** - प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था दबाव समूहों की गतिविधियों को निर्धारित करती है। इन दोनों देशों की राजनीतिक व्यवस्था में ऐसी विशिष्टतायें है जिनके कारण दबाव समूह भी विशेष स्थिति में ढल गये है। इन देशों में दबाव समूह की प्रकृति विशिष्ट प्रकार की बन गई है। इन देशों में दबाव समूह के प्रमुख लक्षण निम्न हैः-

**(1) परीस्थितिजन्य दबाव समूहः-** इन देशों में बहुसंख्यक दबाव समूह परीस्थिति जन्य (situational) होते है। आंग्ल-अमेरिकी व्यवस्था में 'खेल के सिद्धान्तों' पर सहमति के कारण सभी दबाव समूह अपने सदस्यों की अवस्था की सुरक्षा तथा सुधार का लक्ष्य रखते है।

**(2) विधि सम्मत प्रक्रियाओं में विश्वास:-** आँग्ल-अमेरिकी दबाव समूह विधि सम्मत प्रक्रियाओं में विश्वास करते है। वे असवैधानिक साधनों, हिंसा में विश्वास नहीं रखते है। वे क्रान्ति को भी महत्व नहीं देते है। वे प्रचलित ढ़ाचे में विश्वास रखते है तथा उसी में आवश्यक फेरबदल कर व्यवस्था में हित साधने का प्रयास करते है।

**(3) स्वहित पर आधारित एवं परीस्थिति जन्यः-** इन देशों में अधिकांश दबाव समूह परीस्थितिजन्य होते है। तथा स्वहित में कार्यरत होते है। वे विशिष्ट हित वादी होते है। वे कभी सामान्यहित अथवा समाज हित की भावना से न तो प्रेरित होते है और न ही उस दिशा में कार्य करते है।

**(4) संस्थागत एवं समुदायात्मक दबाव समूहः-** इंग्लैण्ड तथा अमेरिका का समाज एक विकसित समाज है अतः वहां पर अधिकांश दबाव समूह संस्थागत तथा समुदायात्मक होते है। यहाँ पर असमुदायात्मक दबाव समूह न के बराबर पाये जाते है।

**(5) विशिष्टीकरण पर आधारित विशेषज्ञों का समूहः-** अमेरिका एवं इंग्लैण्ड का समाज एक उन्नत एवं विकसित समाज है अतः यहाँ पर कार्य जटिल एवं तकनीकी तरह के होते है। उनको करने के लिये विशिष्ट एवं विशेषज्ञ प्रवृत्ति के लोगों की आवश्यकता होती है। ये पेशेवर एवं विशेषज्ञ लोग पूरे समय अपनेहितों के लिये प्रयासरत रहते है। ऐसे दबावसमूह अन्यत्र नहीं दिखायी पड़ते है।

**(6) एक दूसरे पर निर्भरता तथा नियन्त्रण एवं संतुलनः-** ब्रिटेन एवं अमेरिका का समाज एक विकसित समाज है। यहाँ के दबाव समूह कानूनों, परम्पराओं, रीतियों में विश्वास करने वाले होते है। ये सामान्य नियमों एवं सिद्धान्तों से निर्देशित होते है। ये आत्म संयम में विश्वास करते है। यह परस्पर विरोधी दृष्टिकोण के साथ समायोजन करने का प्रयास करते है। यह दबाव समूह 'संतुलन चक्र' के रूप में विभिन्न संस्थाओं व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं को संकुलित करते है।
अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में पाये जाने वाले दबाव समूहों में उपरोक्त विशेषतायें दिखायी पड़ती है। इसके बावजूद इन दोनों देशों में दबाव समूहों में कुछ भेद भी दिखायी पड़ते है। इन दोनों देशों में सरकार की संरचनाओं व दलीय पद्धति में बड़ा अंतर है जिसका प्रभाव दबाव समूह पर दिखायी देता है। यही कारण है कि दबाव समूह की प्रकृति, संगठन एवं लक्ष्यों में अंतर दिखायी पड़ता है।
इनके बीच पाये जाने वाला प्रमुख अंतर इस प्रकार हैः-

**(1) नैतिकता एवं आदर्श के आधार पर अंतरः-** अमेरिका में दबाव समूहों को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है। वहां पर उनका इतिहास दागदार रहा है। इंग्लैण्ड में दबाव समूहों को संदेह की नजर से नहीं देखा जाता है। राबर्ट सी बोन ने लिखा है-" अमेरिकी दबाव समूह ऐसी राजनीतिक संस्कृति में परिचालित होते है कि अजीब विरोधाभासी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक तरफ सभी दबाव समूह को अनुचित समझा जाता है दूसरी तरफ उन्हें प्रभाव डालने के विचित्र अवसर उपलब्ध कराये जाते है।" अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था की यह विचित्र स्थिति है कि वहाँ पर सरकार एवं दलों से अपेक्षा नहीं

की जाती की वह किसी प्रकार का कोई पहल करेंगें। वहाँ पर जनता से आशा की जाती है कि वे सरकार से तथा दलों से समस्याओं तथा समाधान की माँग करेगें। इस व्यवस्था में दबाव समूह महत्वपूर्ण हो जाते है। दूसरी तरफ ब्रिटेन में दबाव समूह को राजनीतिक प्रक्रिया का आवश्यक अंग माना जाता है। संसदीय शासन व्यवस्था , एकात्मक शासन के कारण ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति दबाव समूहों को अपने में लपेटे रहती है। यहाँ पर दबाव समूहों को सकरात्मक रूप् से सरकार का सहयोगी माना जाता है।

**(2) शासन व्यवस्था के कारण अन्तर:-** अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के कारण दबाव समूह को शासन में प्रवेश करने तथा विशेष भूमिका अदा करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का अवसर ब्रिटेन की संसदात्मक शासन व्यवस्था में वे नहीं प्राप्त कर पाते है। अमेरिका में शासन प्राप्त रिक्तता के कारण वे ज्यादा प्रभावी एवं शक्तिशाली हो जाते है।

**(3) अमेरिका में दबाव समूह द्वारा मांगों को प्रस्तुत करना जबकि ब्रिटेन में राजनीतिक दलालों के द्वारा:-** अमेरिका में दबाव समूह की मांगों को प्रस्तुत कर सरकार के ऊपर दबाव बनाने का प्रयास करते है। इसके ठीक विपरीत ब्रिटेन में दबाव समूह के स्थान पर राजनीतिक दल अधिक प्रभावी रहते है। और वे ही इन कार्या को करते है। संसदीय शासन व्यवस्था में दलों की सरकार के उत्थान एवं पतन में विशेष भूमिका रहती है। अंतः यहाँ पर दबाव समूह मांगों के लिये दबाव बनाने का कार्य नहीं करते है।

**(4) जनता की राजनीतिक उदासीनता के कारण अमेरिका में दबाव समूह की सक्रियता:-** अमेरिका की शासन व्यवस्था में देखा गया है कि वहाँ के नागरिक राष्ट्रपति के निर्वाचन में तो बढ़चढ़ कर हिस्सेदारी करती है। परन्तु अन्य राजनीतिक कार्यों में उसकी हिस्सेदारी कम ही रहती है। इसके विपरीत ब्रिटेन में जनता अधिक सजग, सक्रिय एवं राजनीतिक रूप् से जागरूक है। यही कारण है कि वह राजनीतिक दलों के साथ मिलकर शासन में अधिक प्रभावी भूमिका अदा करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका तथा ब्रिटेन में अलग-अलग शासन व्यवस्था के अस्तित्व के कारण दबाव समूहों की भूमिका एवं प्रभाव में व्यापक अंतर दिखायी पड़ता है। ब्रिटेन में राजनीतिक दल एवं जागृत समाज के कारण दबाव समूहों का प्रभाव क्षेत्र कम हो जाता है। वहां पर दलों एवं दबाव समूहों के संबंधों को बढ़ावा दिया जाता है। वहांँ पर दबाव समूहों एवं प्रशासकीय अधिकारिकयों के साथ संबंधों को शंका की नजर से नहीं देखा जाता है। इसके ठीक विपरीत अमेरिका में इन संबंधों को शंका एवं अनैतिक दृष्टि से देखा जाता है। ब्रटेन में संसद सदस्य अनेक श्रम संघों से न केवल जुड़े हुए है वरन उनसे आर्थिक मदद भी प्राप्त करते है। इसके विपरीत अमेरिका में दबाव समूहों का संबंध राजनेताओं एवं प्रशासनिक अधिकारियों से गुपचुप एवं रहस्यमयी संबंध रखते है। उनसे मिलने वाली सहायता भी गोपनीय रखी जाती है। वहाँ उक्सर इन आर्थिक मदद से पदा उठते ही राजनेताओं के राजनीतिक जीवन पर खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि अमेरिका में दबाव समूहों का प्रभाव एवं महत्व नहीं है। अमेरिका में दबाव समूहों की गोपनीय एवं रहस्यमयी भूमिका में उत्तरोतर वृद्धि होती जा रही है। यहाँ पर यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इन दोनों देशों में दबाव समूह का अस्तित्व है उनका प्रभाव है परन्तु वे किसी भी राजनीतिक दल को नियन्त्रित करने की स्थिति में नहीं है। इसके विपरीत फ्रांस सहित अन्य यूरोपीय देशों मे दबाव समूहों का नियन्त्रण राजनीतिक दलों के ऊपर

देखा जा रहा है। अमेरिका में संघात्मक शासन, शकित पृथक्करण, कांग्रेस की समितियों के असीमित अधिकार, ठोस अनुशासन वाले दलों का अभाव दबाव समूह को शासन में घुसपैठ करने का पर्याप्त अवसर प्रदान कर देता ह। उनकी राजनीति उग्र, व्यापक एवं महत्वपूर्ण हो जाती है।

**4.2.15.2. यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था मे दबाव समूह**:- इटली एवं फ्रांस को छोड़कर सभी यूरोपीय राजय इस समूह में माने जाते है। इन देशों की राजनीति का एक विशेष पैटर्न है। यूरोपीय देशों में प0 जर्मनी में आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप् दबाव समूह अत्याधिक बड़ें एवं प्रभावशाली है। यहाँ के प्रमुख दो दल दबाव समूहों का मिलन का स्थान बन गये है। ये राजनीतिक दलों को धन देते है। इनके 40 प्रतिशत सदस्य दबाव समूह के होते है जो विधायिका में चुन कर आते है। जर्मनी में दबाव समूहों को शंका की नजर से नहीं देखा जाता है। वे शासन संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

फिनलैण्ड, स्वीडन, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, आस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड आदि राज्यों में राजनीतिक संस्कृतियो की समानता के कारण दबाव समूह की भूमिका भी एक ही प्रकार पायी जाती है। यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था मे दबाव समूह की भूमिका को स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर प्रत्येक कर्मचारी किसी न किसी दबाव समूह से सम्बन्धित रहते है। ये अधिकाशतः श्रमिक संघों के सदस्य होते है। जर्मनी की तरह इन देशों में राजनीतिक दल, दबाव समूहों तथा उनके सदस्यों को प्रत्याशी के रूप् में स्वीकार करते है। सरकार प्रायः नीति निर्माण करते समय सम्बन्धित दबाव समूहों से परामर्श भी करती है। इन देशों में दबाव समूह अपनी शक्ति, प्रभाव के द्वारा सतुंलनकारी यंत्र बन राजनीतिक व्यवस्था के संचालन में सहायक होते है।

**4.2.15.3. इटली एवं फ्रांस में दबाव समूह की भूमिका:-**

इटली एंव फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप् शेष यूरोपीय देशों से भिन्न है। राजनीतिक व्यवस्था की विलक्षणता के कारण इन देशों में दबाव समूहों की भूमिका अलग एवं विलक्षण तरह की बन गयी है। फ्रांस में पांचवें गणतन्त्र से पहले राजनीतिक अस्थिरता का युग था। पांचवें गणतन्त्र के संविधान के बाद स्थितियों में बदलाव आया। वहाँ पर कार्यपालिका के शक्तिशाली होने के कारण दबाव समूहों को नौकरशाही एवं कार्यपालिका से अपने कार्य कराने पड़ते है। वहाँ पर दबाव समूह विशेषीकृत पेशेवर कार्यकर्ताओं के द्वारा संचालित होने लगे है। वहाँ की राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों की विशेष भूमिका नहीं है।

इटली के दबाव समूह भी विशेष समूह भी विशेष राजनीतिक संस्कृति के कारण विचित्र बन गये है। जोसेफ लॉ पालोम्बरा ने अपनी पुस्तक " इस्टेस्ट ग्रूप इन इटालियन पॉलिटिक्स" में दबाव समूहों की अनोखी प्रकृति का विश्लेषण किया। इटली की विखडिंत एवं अलगाववादी राजनीतिक संस्कृति के कारण दबाव समूहों की अत्याधिक संख्या है। पालोम्बरा ने रोम में ही तीन हजार से अधिक समूहों की संख्या बतायी है। ये निरन्तर राजनीतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करते है। यहाँ के दबाव समूह फ्रांस की तरह राजनीतिक दलों पर " नियन्त्रण स्थापित करते हुए दिखायी पड़ते है। यहाँ पर दबाव समूहों की प्रकृति, संगठन, गतिविधियाँ एवं कार्यशैली विलक्षण है। ये किसी एक संरचना में नहीं बांधे जा सकते है। ये मिश्रित प्रकृति रखते है। इन व्यवस्थाओं में दबाव समूह कट्टरता से भरे हुए केवल अपने को सही मानने वाले होते है। यह दलों का प्रभावित ही नहीं करते वरन उनपर नियन्त्रण भी स्थापित करते है। कई दबाव

समूह दलों के पिछलग्गू बन हितों को साधने का प्रयास करते है। इनके अविश्वसनीय रवैये के कारण जनता कई बार इनके प्रति संदेह का रवैया अपनाने लगती हैं।

**4.2.15.4. सर्वाधिकारी राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहः-**

सर्वाधिकारवादी व्यवस्था में निर्णय लेने का अधिकार एक स्थान पर केन्द्रित रहता है। ऐसे में बाहर से निर्णय निर्माण को प्रभावित करना सरल नहीं रहता है। यहाँ पर दबाव समूहों का अस्तित्व ही विरोधीभासी प्रतीत होता है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि यहाँ पर ऐसे समूहों को कुचल दिया जाता है। इन सर्वाधिकारी राजयों में बल प्रयोग पर जोर दिया जाता है। यहाँ पर इनका अस्तित्व होना ही महत्व की चीज है। इनकी पश्चिमी देशों की तरह सक्रियता संभव ही नहीं है।

नाजी जर्मनी में दल के विभिन्न गुट, पुलिस, सैनिक निकाय, नौकरशाही, बड़े व्यापारी हितों तथा हिटलर के सलाहकारों के बीच प्रतिस्पर्धा रहती थी जो इस बात का प्रमाण था कि निरकुंश शासन व्यवस्था में संस्थात्मक एवं समुदायात्मक दबाव समूह किसी न किसी रूप् में विद्यमान रहे है। यहाँ कठोर नियन्त्रण के पीछे दबाव समूह क्रियाशील रहते है तथा कभी-कभी प्रभावी ढ़ग से प्रकट भी होते हैं साम्यवादी व्यवस्था में भी अधिक सख्ती एवं हिंसा के बावजूद दबाव समूहों का अस्तित्व मिलता हैं। वहां पर साम्यवादी दल के अंदर ही समूहों में प्रतिस्पर्धा दिखायी पड़ती है। यहां पर दल के अधिकारी तथा बुद्धिजीवियों के समूहों को दबाव समूह के रूप् में लिया जाता है। रूस एवं चीन में सेना भी दबाव समूह के रूप् में कार्य करती दिखायी पड़ती है। रूस में युद्ध नायक मार्शल जुकोव को तथा चीन में मार्शल जिन पियाओ को रक्षामंत्री पद से हटाया जाना इसका संकेत है। यहां पर प्रदर्शनात्मक दबाव समूह का अस्तित्व सदैव रहता है।

**4.2.15.5. विकासशील राष्ट्रों में दबाव समूह**:- विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं सरंचनायें संक्रमण के दौर से गुजर रही है। वहाँ पर राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक संस्कृति अभी स्थापित नहीं हो पाई है। अतः इन व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की प्रकृति, कार्यशैली एवं प्रभाव में अंतर पाया जाता है। यहाँ का समाज परम्परावादी है जिसके कारण असमुदायत्मक दबाव समूह राजनीतिक दलों के रूप् में कुलीन, जातीय, नृजातीय, वर्गीय, गुटीय, हितों के आगे बढ़ाने का प्रयास करते है। इनमें कुछ आधुनिक तत्वों की उपस्थिति संस्थात्मक दबाव समूहों को भी जन्म देते है। सभी विकासशील देशों में स्वतन्त्रता संघर्ष के समय से ही ट्रेड यूनियन का गठन तथा महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित हो गई थी। यही कारण है कि यहाँ पर स्वतन्त्रता बाद ट्रेड यूनियनों ने संस्थात्मक दबाव समूह का रूप् धारण किया।

इन राज्यों में कुछ प्रदर्शनात्मक दबाव समूह भी पाये जाते है। इनका प्रभाव अन्य देशों से ज्यादा रहता है। विकासशील राज्यों में सेनाओं से संबन्धित संस्थात्मक दबाव समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सैनिक नेतृत्व भावनात्मक एकता के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालता है। यहाँ पर सेना एक प्रमुख दबाव समूह है।

यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन विकासशील देशों में विकासशील देशों में विकास के साथ संस्थागत एवं समुदायात्मक दबाव समूहों की संख्या एवं महत्व में वृद्धि होगी। राजनीतिक व्यवस्थाओं में सुविकसित राजनीतिक दलों के अभाव के कारण प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों का स्थान एवं महत्व बढ़ रहा है। विद्यार्थियों का आंदोलन विकसित राज्यों में अधिक होने की संभावना रहती है। ये विद्यार्थी आंदोलन विकसित राज्यों में अधिक प्रभावशाली दबाव समूह के रूप में दिखायी देते हैं। विकासशील देशों में विद्यार्थियों की मूलभूत सुविधाओं के अभाव के कारण प्रदर्शनात्मक दबाव समूह के रूप् में विकसित होने की प्रबल संभावना है। इस प्रकार यहाँ पर समुदायात्मक तथा संस्थागत दबाव समूहों के प्रभावशाली

होने की परीस्थितियाँ बनती जा रही है। दूसरी तरफ सेना एवं विद्यार्थियों के प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों के उदय के भी लक्षण दिख रहे है। यह भी सत्य है कि समय गुजरने के साथ ही विकासशील देशों में इनकी संख्या में वृद्धि होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। कही पर यह सृजन की भूमिका में तो कही विध्वंस की भूमिका में है। राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन के दबाव समूहों की प्रकृति में परिवर्तन आता जा रहा है। मानव सामाजिक प्राणी है। अतः चेतना एवं जागृति के साथ वह समूह में संगठित होगा और आने वाले समय में दबाव समूह का प्रभाव एवं महत्व बढ़ता जायेगा। अमेरिका में प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों भरमार तथा सेनाओं का शासन व्यवस्थाओं में दखल इस बात का संकेत है कि भविष्य में दबाव समूहों का अस्तित्व एंव भूमिका अलग होगी। भविष्य में राजनीतिक दलों के सहयोगी के रूप् में दबाव समूह का महत्व बढ़ेगा।

### 4.2.16. सारांश

दबाव समूह का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की लोकतन्त्र का पश्चिम के देशों में दबाव समूह का उदय हुआ। आज दुनिया के सभी देशों में इनका अस्तित्व पाया जाता है। यह सत्य है कि लोकतन्त्र जितना अधिक परिपक्व एवं मजबूत होगा उतना ही वहाँ पर दबाव समूहों का अस्तित्व होगा।

समय गुजरने के साथ जन आंकाक्षाओं में आये उभार एवं बढ़ती जरूरतों ने सरकार के ऊपर दबाव बनाने एवं उनसे त्वरित रूप से लाभ पाने के लिये दबाव समूह का उदय हुआ। आज अमेरिका से शुरू हुई दबाव समूहों की यात्रा लगभग दुनिया के सभी देशों में पहुँची है। वह चाहे संसदीय शासन हो या अध्यक्षात्मक एक चीज सामान्य रूप् से पायी जाती है, वो दबाव समूह। यहाँ आश्चर्य है कि दबाव समूह केवल लोकतन्त्र में ही नहीं दिखायी पड़ते वरन वे सर्वाधिकारवादी शासन व्यवस्थाओं में सैनिक तन्त्र, अधिकारी तन्त्र के रूप् में तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं में दलीय समूह, अधिकारी समूह के रूप् में दृष्टिगत होती है।

दबाव समूह का स्वरूप् विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में बदल जाता है। विकसित शासन व्यवस्थाओं में इनका स्वरूप अलग एवं प्रगतिशील अथवा विकासशील शासन व्यवस्थाओं में इनका स्वरूप् बदल जाता है। ये आज बेहद , प्रभावशाली, एवं शक्तिशाली हो गये है। ये दुनिया की सभी शासन व्यवस्थाओं में पाये जाते है। कतिपय यही कारण था कि फाइनर इन्हें ‘ अज्ञात साम्राज्य’ कहता था।

### 4.2.17. शब्दावली

**1. समुदायात्मक दबाव समूह Associational Pressure Group)-** समुदाय के हितों के लिये सगंठित समूह इसमें आते है। जैसे व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ।

**2. प्रदर्शनकारी दबाव समूह (Anomic Pressure Group)-** ये वे दबाव समूह है जो माँगों को लेकर हिंसक, संविधान विरूद्ध कार्य करने से परहेज नहीं रखते। जैसे छात्र संगठन, नक्सल संगठन आदि।

**3. संस्थागत दबाव समूहः-** वे दबाव समूह जिनका संसगठित ढा़चा होता है तथा जो किसी संस्था से जुड़े होते है। जैसे - भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक सेवा संघ।

**4. जनहित याचिकाः-** व्यापक जन कल्याण के निहितार्थ सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय में डाली गई याचिका को जनहित याचिका कहते है। यह किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्रेषित होती है।

**5. लॉबींग :-** अपने हितों की पूर्ति के लिये कानून बनाने वालों से विधानमण्डल के सभाकक्ष में या अन्य स्थान पर मिलना हित साधना, कानून बनवाना लॉबींग कहलाता है।

### 4.2.18. अभ्यास के प्रश्न

(1) मजदूर संघों को कहा जाता है-

(1) लेगर आर्गनाइजेशन (2) लेबर असेम्बली (3) ट्रेड यूनियन (4) कोई नहीं

(2) वर्तमन में दबाव समूह है-

(अ) लोकतन्त्र विरोधी (ब) लोकतत्र समर्थक एवं सहयोगी

(स) अलोकतान्त्रिक (द) सभी

(3) निम्न में से कौन अज्ञात साम्राज्य है-

(अ) राजनीतिक दल (ब) राजनेता (स) राजनीतिक संस्थायें (द) दबाव समूह

(4) दबाव समूह होते है-

(अ) राजनीतिक (ब) अराजनीतिक (स) दोनों (द) कोई नहीं

(5) निम्न में से कौन सा राजनीतिक दल का लक्षण नहीं है-

(अ) ऐच्छिक संगठन (ब) जनहित संगठन (स) औपचारिक संगठन

(द) निश्चत शक्ति

### 4.2.19. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मल्ल वी0पी0, सिंह अजय, राजनीति विज्ञान
2. गेना आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3. जैन आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति
4. राय गाँधी जी, तुलनात्मक राजनीति
5. जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

### 4.2.20. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स
2. ब
3. द
4. ब
5. स

### 4.2.19. सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्रीः-

1. सोडारो माइकल, कम्पेरटिव पालिटिक्स
2. गाबा, ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
3. संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
4. खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

**4.2.20. निबन्धात्मक प्रश्न**

1. दबाव समूह से क्या समझते है? इनकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।
2. दबाव समूह को परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक शासन व्यवस्था में महत्व स्पष्ट कीजिये।
3. दबाव समूह के विभिन्न वर्गीकरणों स्पष्ट करते हुए वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये।
4. दबाव समूह पर एक निबन्ध लिखिये।

# इकाई-3 : प्रतिनिधित्व के सिद्धांत

**इकाई की रूपरेखा**


**4.3.1. उद्देश्य**

**4.3.2. प्रस्तावना**

**4.3.3. बहुल मतदान**

**4.3.4. निर्वाचन की विभिन्न प्रणालियाँ**

**4.3.5. प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण**

**4.3.6. प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष**

**4.3.7. अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण**

**4.3.8. अप्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष**

**4.3.9. मतदान की प्रणालियाँ**

- **4.3.9.1. बहुमत के आधार पर निर्वाचन**
- **4.3.9.2. द्वितीय मतदान व्यवस्था**
- **4.3.9.3. वैकल्पिक मतदान व्यवस्था**

**4.3.10. अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व**

- **4.3.10.1. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली**
  - **4.3.10.1.1. एकल हस्तान्तरणीय व्यवस्था**
  - **4.3.10.1.2. सूची प्रणाली**

**4.3.11. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के गुण**

**4.3.12. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के दोष**

**4.3.13. संचित मतदान प्रणाली**

**4.3.14. सीमित मतदान प्रणाली**

**4.3.15. सांम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली**

**4.3.16. व्यवसायिक प्रतिनिधित्व**

- **4.3.16.1. व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के दोष**

**4.3.17. आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक शर्तें**

**4.3.18. सारांश**

**4.3.19. शब्दावली**

**4.3.20. अभ्यास के प्रश्न**

**4.3.21. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

**4.3.22. सहायक उपयोगी सामग्री**

**4.3.23. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

**4.3.24. निबन्धात्मक प्रश्न**

**4.3.1. उद्देश्य**

1. प्रतिनिधित्व का अर्थ एवं प्रकार को समझना।
2. प्रतिनिधित्व के विभिन्न सिद्धान्तों को समझना।
3. अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के सिद्धान्तों को समझना।
4. आधुनिक समय में दुनिया में प्रयोग में लाये जा रहे प्रतिनिधित्व के सिद्धान्तों को समझना।
5. प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का उदय तथा आधुनिक समय में उसके चलन को समझना।

**4.3.2. प्रस्तावना**

लोकतन्त्र के सफल होने के लिये आदर्श प्रतिनिधित्व बहुत आवश्यक है। यदि प्रतिनिधित्व सही, निष्पक्ष, न्यायपूर्ण नहीं है तो लोकतन्त्र ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर सकता। प्राचीन समय में छोटे-छोटे नगर-राज्य थे जिसके कारण प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सम्भव था। जिसमें प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं थी। आधुनिक समय में बड़े राष्ट्रों के कारण प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र अव्यावहारिक हो गया। कतिपय यही कारण है कि प्रतिनिधित्यात्मक लोकतन्त्र की आवश्यकता पड़ी।

प्रतिनिधित्यात्मक लोकतन्त्र में प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है। सामान्य गुप्त मतदान से प्रतिनिधियों का निर्वाचन बहुमत के आधार पर होता है। ऐसे में कई बार अल्पंख्यक वर्ग बहुमत पाने में असफल हो उचित प्रतिधित्व पाने से वंचित हो जाता है। इसीलिये राजनीति विज्ञानियों ने प्रतिनिधित्व के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व हो सके।

अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधित्व के लिये अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली, द्वितीय मतपत्र प्रणाली, संचित मत प्रणाली, सूची प्रणाली, वैकल्पिक मत प्रणाली आदि प्रमुख हैं। फ्रांस जैसे देश में राष्ट्रपति के चुनाव में द्वितीय मतपत्र प्रणाली चलन में है। भारत में राष्ट्रपति के चुनाव में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल संक्रमणीय मत पद्धति प्रचलित है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली कुछ खामियों के बावजूद अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने वाली सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली है।

आधुनिक युग लोकतंत्र का युग है। लोकतन्त्र के दो रूप हैं - प्रत्यक्ष लोकतन्त्र तथा प्रतिनिधि लोकतन्त्र कुछ प्राचीन यूनानी नगर राज्यों तथा भारत के कुछ गणतन्त्रों में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के कुछ प्रमाण मिलते हैं। आधुनिक समय में बड़ें राज्यों के उदय के साथ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र संभव नहीं है। आज स्विट्जरलैण्ड के पाँच कैंटनों को छोड़कर प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र कहीं दिखायी नहीं पड़ता। अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र निर्वाचन पर आधारित है। जनता स्वयं शासन का संचालन नहीं करती वरन् अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से संचालन का कार्य करती है। प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिये एक निश्चित अवधि के बाद आम निर्वाचन की आवश्यकता पड़ती है। निर्वाचन में भाग लेने तथा मतदान में भाग लेने के अधिकार को मताधिकार कहते हैं। आधुनिक समय में 'व्यस्क मताधिकार' के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत एक निश्चित उम्र के पुरूष एवं स्त्रियों को शिक्षा, संपत्ति, लिंग जाति के आधार पर बिना किसी भेदभाव के मताधिकार दिया जाता है। तब यह व्यस्क मताधिकार कहलाता है। वयस्क मताधिकार सभी स्त्री पुरूष को प्रदान किया जाता है इसलिये इसे सार्वजनिक मताधिकार भी कहा जाता है। ब्रिटेन, अमेरिका तथा भारत में यह आयु 18 वर्ष, स्विट्जरलैण्ड में 20 वर्ष तय की गई है। महिला मताधिकार को लेकर प्रारम्भ से भेद

रहा है। अमेरिका में 1917 में, इंग्लैण्ड में 1928 तथा स्विट्जरलैण्ड में 1971 को स्त्री मताधिकार प्रदान किया गया। राज्य अनिवार्य मतदान की भी व्यवस्था कर सकता है। वैध कारणों से मतदान न करने पर आस्ट्रेलिया सहित कुछ देशों में दंड का प्रावधान है।

### 4.3.3. बहुल मतदान

बहुल मतदान अथवा भारपूर्ण मतदान को भेदपूर्ण मतदान कहते हैं। इसमें मतदान में भेदभाव के सिद्दांत को स्वीकार किया जाता है। इसमें कुछ नागरिकों को अन्य की तुलना में विभिन्न आधारों पर अधिक मत दिये जाते हैं। जैसे बेल्जियम में 1893 के सविंधान ने 25 वर्ष की आयु से दिया जाता था, परन्तु उसके उपरांत उस व्यक्ति को एक और मत प्रदान किया गया जिसकी एक वैध संतान हो 35 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो तथा राज्य को 5 फ्रैंक कर देता हो। यही अतिरिक्त मत उस भू-स्वामी को दिया गया जो कम से कम 2000 फ्रैंक मूल्य की संपत्ति रखता हो तथा 25 वर्ष से अधिक आयु के ऊपर उस व्यक्ति को दो अतिरिक्त मत प्रदान किये जिसके पास उच्चतर माध्यमिक डिग्री अथवा किसी संस्था से डिप्लोमा हो। 1921 के संशोधन द्वारा इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत भारत के मुसलमानों को बहुल मत प्राप्त थे। इसमें सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से एक मत तथा अपने धार्मिक सम्प्रदाय के लिये सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र में एक अन्य मत प्रदान किया गया। 1919 के अधिनियम में साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था ईसाइयों, एंग्लोइंडियन तथा सिक्खों को तथा 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय के द्वारा दलित जातियों को भी प्रदान की गई। जे0 एस0 मिल0 ने बहुल मतदान का समर्थन किया। उनका मानना था कि बुद्धिमान लोगों को अधिक मत प्राप्त होने चाहिए। उसका मानना था कि-''उस व्यक्ति को दो या अधिक मतों की उचित अनुमति दी जा सकती हे। जो उच्चतर कार्यों में से कोई कार्य करते हैं। यह न्यूनतम शिक्षित जनसंख्या के भार के प्रतिकारक के रूप में कार्य करता है।

### 4.3.4. निर्वाचन की विभिन्न प्रणलियाँ

निर्वाचन का सामान्य अर्थ होता है अपनी पसन्द की प्रतिनिधि का चुनाव। निर्वाचन की दो प्रणलियाँ प्रचलित हैं- 1. प्रत्यक्ष निर्वाचन 2. अप्रत्यक्ष निर्वाचन

**1. प्रत्यक्ष निर्वाचन**:- प्रत्यक्ष निर्वाचन वह है जिसमें मतदाता प्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करे तो उसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जाता है। यह आज के समय में लोकप्रिय निर्वाचन व्यवस्था है। इसमें प्रत्येक मतदाता निर्वाचन स्थान पर विभिन्न उम्मीदवारों में से किसी एक के पक्ष में मतदान करता है। सर्वाधिक मत पाने वाला व्यक्ति विजेता घोषित कर दिया जाता है। आधुनिक समय में दुनिया के अधिकांश देशों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, भारत, कनाडा तथा स्विट्जरलैण्ड के प्रथम सदन के निर्वाचन में इसी पद्धति को स्वीकार किया जाता है।

**2. अप्रत्यक्ष निर्वाचन:-** प्रत्यक्ष निर्वाचन के विपरीत जब मतदाता कुछ प्रतिनिधियों का चुनाव करे तथा वे किसी अन्य व्यक्ति का चुनाव करें तो यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जाता है। जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि 'निर्वाचक मण्डल' कहे जाते हैं। उदाहरण के लिये अमेरिका के मतदाता उन निर्वाचकों को चुनते हैं जो राष्ट्रपति का चुनाव करते है।

**4.3.5. प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुणः-** विद्वानों ने प्रत्यक्ष निर्वाचन के कुछ गुण बताये हैं। इनमें से प्रमुख गुण निम्न हैं-

**1. राजनीतिक जागृतिः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन मतदाताओं में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करता है। इसमें मतदाता चुनाव प्रक्रिया के दौरान अनेक रैलियों, सभाओं में भाग लेता है। जिसके द्वारा उसको सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के विषय में जानकारी होती है। इसके साथ मतदान के तरीके के विषय में भी वह अवगत होता है।

**2. मतदाता एवं प्रतिनिधियों के मध्य संबंधः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन में मतदाता तथा प्रतिनिधियों के बीच घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। इसमें चुनाव लड़ रहे लोगों का भविष्य मतदाता तय करते हैं। अतः प्रत्येक चुनाव लड़ने वाला व्यक्ति अधिकाधिक व्यक्तियों से मिलता है। वह जनसंपर्क अभियान चलाता है। यह चुनाव दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध विकसित करने में सहायक होता है।

**3. उत्तरदायित्व की भावनाः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था में जनता स्वयं निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेती है। वह दल विशेष, प्रत्याशी विशेष के लिये सक्रिय होती है। अतः प्रतिनिधि चुनाव के बाद अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। उन्हें पता होता है कि मतदाता ने ही उन्हें 'फर्श से अर्श' तक का सफर कराया है। अतः वे मतदाताओं अथवा जनमत को सदैव अपने पक्ष में रखने का प्रयास करते हैं।

**4. प्रजातान्त्रिक भावना के अनुकूलः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है। यह प्रजातन्त्र की भावना के पूर्णतः अनुकूल है। जनता सीधे तौर पर निर्वाचन में भाग लेती है। जिससे उसकी भावना तुष्ट होती है।

### 4.3.6. प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष

प्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख दोष इस प्रकार हैः-

**1. खर्चीला शासनः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन का यह प्रमुख दोष है। इसमें निर्वाचन प्रक्रिया के दौरान चुनाव लड़ रहे लोग चुनाव जीतने के लिये अधिकाधिक धन व्यय करते हैं। यह प्रक्रिया चुनाव को अधिक खर्चीला बना देती है। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य परन्तु धन-बल में कमजोर व्यक्ति चुनाव नहीं लड़ पाता है। आज के भारत, अमेरिका जैसे देशों में यह दोष प्रमुखता से देखा जा रहा है।

**2. अयोग्य व्यक्तियों की भूमिकाः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन का यह महत्वपूर्ण दोष है। इसमें चुनाव बहुमत से होता है और सार्वभौम वयस्क मताधिकार के दौर में सभी अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। ऐसे में अशिक्षित, अक्षम लोग भी भावनाओं में बहकर जाति, धर्म, भाषा तथा संकीर्ण स्वार्थों के लिये मतदान करते हैं। कई बार इसके परिणामस्वरूप अयोग्य व्यक्ति चुनाव जीतने में सफल हो जाते हैं। जोकि लोकतन्त्र के लिये बड़ा खतरा है।

**3. कुशल एवं योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं :-** प्रत्यक्ष निर्वाचन में धनबल एवं बाहुबल का प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि सामान्य व्यक्ति चुनाव में भाग लेने, जनप्रतिनिधि बनने से दूर भागता है। यदि कोई प्रयास करता है तो धनबल एवं बाहुबल के सामने ठहर नहीं पाता है। यही कारण है कि इसमें योग्य एवं कुशल व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं हो पाता है।

**4. सार्वजनिक शिक्षा नहीं** :- चुनाव प्रक्रिया का विश्लेषण करने का यह तथ्य भी सामने आता है कि व्यक्ति को भ्रामक प्रचार से भ्रमित कर दिया जाता है। सामान्यजनों के सामने गलत तथ्य एंव भ्रामक विश्लेषण प्रस्तुत किये जाते हैं। जिससे जनमत ही गलत बन जाता है।

### 4.3.7. अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण

अप्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख गुण इस प्रकार है-

**1. योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन**:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में जनता प्रतिनिधियों का निर्वाचन नहीं करती बल्कि एक निर्वाचक मण्डल चुनाव करता है। यह ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो तर्कपूर्ण, विवेकपूर्ण निर्णय करते हैं। उनके निर्णय के परिणामस्वरूप सही एवं योग्य व्यक्तियों का चुनाव होता है। यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन का एक प्रमुख गुण है।

**2. कम खर्चीला निर्वाचन**:- कुछ विद्वानों का मत है कि इसमें मतदान का अधिकार सभी के पास नहीं होता जिसके कारण चुनाव का क्षेत्र व्यापक नहीं हो पाता। कतिपय यही कारण है कि चुनाव में खर्च भी कम होता है। कम खर्चीला होना इसका प्रमुख गुण है। इसके कारण सामान्य व्यक्ति भी चुनाव में सहभागिता कर सकता है।

**3. अशिक्षित जनता वाले निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगी**:- विद्वानों का यह मत है कि उन लोकतन्त्रों में जहाँ शिक्षा का स्तर नीचे है, जनता को स्वशासन का अनुभव नहीं है। वहाँ जनता गलत चुनाव भी कर सकती है अतः यह अशिक्षित निर्वाचन क्षेत्रों वाले राज्यों के लिये उपयुक्त है।

**4. बड़े निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगी**:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली को बड़े राज्यों के लिये बहुत अनुकूल माना जाता है। इसमें आम निर्वाचन में होने वाली समय एवं धन के व्यय से मुक्ति मिलती है। अप्रत्यक्ष निर्वाचन से बड़े से बड़ा निर्वाचन सहजता से सम्पन्न हो जाता है।

**5. दलगत बुराइयों से दूर**:- इस चुनाव में जनता एक बार निर्वाचक मंडल का चुनाव कर लेते है और बाद में निर्वाचक मंडल अपने प्रतिनिधियों का। इस पूरी प्रक्रिया में प्रत्यक्ष निर्वाचन की तरह दलगत स्वार्थ नहीं दिखायी पड़ता है।

**6. नवजात लोकतन्त्र के लिये अनुकूल**:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन को नवोदित लोकतन्त्र के लिये उपयुक्त माना जाता है। इनकी मान्यता है कि जिन समाजों में राजनीतिक शिक्षा, चेतना, स्वशासन का अभाव एवं आर्थिक विषमता है वहाँ के लिये यह उपयुक्त है इससे वहाँ पर भावना प्रधान निर्णय नहीं होते।

### 4.3.8. अप्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष:-

अप्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख दोष निम्न है:-

**1. यह व्यवस्था अप्रजातान्त्रिक है**:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आलोचक इस पर प्रहार करते हुए कहते है कि यह प्रजातान्त्रिक भावना के अनुकूल नहीं है, जनता सीधे अपने प्रतिनिधियों से नहीं जुड़ती है। वह उनको चुनने के लिये राजनीतिक अधिकार से वंचित रहती है। यह इसका प्रमुख दोष है।

**2. सामान्य जन की उदासीनता**:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में सामान्य नागरिक सीधे निर्वाचन से नहीं जुड़ा रहता है। यही कारण है कि वह पूरी राजनीतिक प्रक्रिया के प्रति उदासीन रहता है। यह उदासीनता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिये शुभ संकेत नहीं है। लोकतन्त्र जन सक्रियता से चलता है। यदि जनता उदासीन हो गई तो लोकतन्त्र ही मर जायेगा।

**3. भ्रष्ट एवं अनैतिक माध्यमों का उपयोग**:- प्रारम्भ में यह माना गया कि अप्रत्यक्ष निर्वाचन में धन-बल का प्रयोग कम होगा। बाद के वर्षों में पाया गया कि वास्तव में इस व्यवस्था में निर्वाचक मंडल को प्रभावित करने के लिये धन-बल का सर्वाधिक प्रयोग हुआ। अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनाव में ऐसा देखा

गया। अरस्तू के शब्दों में -''थोड़े से व्यक्ति को भ्रष्ट करना अधिक लोगों के भ्रष्ट करने की तुलना में सरल है।''

**4. राजनैतिक शिक्षा का अभावः-** अप्रत्यक्ष निर्वाचन में जनता न तो सीधे सम्पर्क में आती है और न ही मुख्य निर्वाचन में भाग लेती है। जिसके कारण वह राजनीतिक शिक्षा को प्राप्त नहीं कर पाती है। यह इसका प्रमुख दोष है।

**5 जनता एवं प्रतिनिधियों के बीच संपर्क का अभावः-** यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रमुख दोष है। इस व्यवस्था में जनता तथा उनके प्रतिनिधियों के बीच सीधा संवाद नहीं होता। प्रतिनिधि जनता की समस्या, जरूरत से अवगत नहीं होते। जिसके कारण वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन ठीक प्रकार से नहीं कर पाते हैं। यह लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत नहीं है।

**6. उत्तरदायित्व का अभावः**- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में प्रतिनिधि सीधे जनता से जुड़े नहीं होते जिसके कारण वे जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। यह लोकतन्त्र की बड़ी कमजोरी सिद्ध होगी।

**7. व्यवहार में यह प्रत्यक्ष निर्वाचन**:- अमेरिका के राष्ट्रपति पद के निर्वाचन का अनुभव यह बताता है कि व्यवहार में अप्रत्यक्ष निर्वाचन भी प्रत्यक्ष बन जाता है। यह प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की बुराइयों को समेट लेता है।

### 4.3.9. मतदान की प्रणालियाँ

व्यवहार में लोकतन्त्र की दो प्रणालियाँ दिखायी पड़ती है- (1) प्रकट मतदान (2) गुप्त मतदान

**1. प्रकट मतदानः-** जब मतदान खुले में सबके सामने हाथ उठाकर या खुले संकेत से किया जाता है तो वह खुला मतदान कहलाता है। यह मतदान का अत्यन्त प्राचीन तरीका है। प्राचीन काल में यूनान एवं कुछ अन्य स्थानों पर खुला मतदान की व्यवस्था थी। आज भी स्विट्जरलैण्ड के कुछ कैंटनों में यह परंपरा चल रहीं हैं।

जे0 एक0 मिल, ट्राटस्की, मांटेस्क्यू ने खुले मतदान का समर्थन किया। मांटेस्क्यू के शब्दों में - "यह ऐसा माध्यम है जिसमें अधिक प्रबुद्ध लोग साधारण लोगों की सहायता करते हैं और उन्हें शिक्षित कर सकते हैं।" मिल के शब्दों में- ''किसी अन्य सर्वाजनिक कर्तव्य की भाँति मतदान के कर्त्तव्य का निष्पादन भी लोगों की आँखों तथा आलोचना के सामने होना चाहिए।" यह प्रणाली 1901 तक डेनमार्क में, 1920 तक जर्मनी में प्रचलित थी।

**2. गुप्त मतदानः-** गुप्त मतदान की व्यवस्था खुले मतदान की एकदम उलट है। इसमें मतदान गुप्त रूप से किया जाता है। उसका मतदान कोई अन्य व्यक्ति नहीं समझ पाता है। आज विश्व में गुप्त मतदान तेजी से बढ़ रहा है। खुले में लोगों की घटती संख्या ने भी गुप्त मतदान को लोकप्रिय बनाया। गुप्त मतदान में हिंसा या भय का वातावरण नहीं रहता। कमजोर व्यक्ति भी बिना भय के मताधिकार का प्रयोग कर पाता है। हैरिगंटन ने गुप्त मतदान व्यवस्था को मुक्त एवं स्वतन्त्र मतदान की अनिवार्य शर्त माना। ट्राटस्की ने गुप्त मतदान की आलोचना करते हुए कहा था - "गुप्त मतदान व्यवस्था ऐसी सबसे गंदी चालबाजी है जिसे सदैव उदारवाद के नाम पर प्रस्वावित किया गया है।"

मतदान की कुछ अन्य विधियाँ इस प्रकार हैः-

### 4.3.9.1. बहुमत के आधार पर निर्वाचन

इसका अर्थ है कि चुनाव में अधिकतम मत पाने वाले व्यक्ति को विजयी घोषित कर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत विजयी होने के लिये स्पष्ट बहुमत या मतों का कोई कोटा प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता है। आधुनिक समय में अधिकांश देशों में यह तरीका ही प्रचलित है। भारत में भी यही विधि प्रचलित है। इस निर्वाचन व्यवस्था में गंभीर दोष है कि कई बार बहुत कम मतों को प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी विजेता हो जाता है। आलोचक इसे अल्पमत का बहुमत का शासन कहते है। उदाहरण के लिये किसी चुनाव में तीन प्रत्याशियों ने क्रमशः 2000, 1800, 1500 मत प्राप्त किये तो इसमें सर्वाधिक मत 2000 मत पाने वाला प्रत्याशी विजयी घोषित कर दिया जायेगा। इसमें यह देखा गया है कि मतों में बहुत मत प्रतिशत पाने वाला व्यक्ति भी विजयी हो जाता है।

### 4.3.9.2. द्वितीय मतदान व्यवस्था

इसमें यह व्यवस्था की गई कि विजेता को डाले गये मतों का 50 प्रतिशत से अधिक पाना आवश्यक है। यदि कोई प्रत्याशी डाले गये मतों का 50 प्रतिशत से कम (स्पष्ट बहुमत) प्राप्त करता है तो चुनाव रद्द कर दिया जाता है। पुनः चुनाव में सर्वाधिक मत पाने वाले प्रथम दो प्रत्याशियों में चुनाव होता है। यदि प्रथम दो में से कोई चुनाव नहीं लड़ना चाहता तो अगला व्यक्ति यह अवसर पाता है। द्वितीय मतदान व्यवस्था में बहुमत के अभाव में द्वितीय मतदान से विजेता का फैसला होता है। फ्रांस में राष्ट्रपति का चुनाव इसी विधि से होता है। इसमें स्पष्ट बहुमत से निर्वाचन होता है। इस विधि की आलोचना का प्रमुख आधार इसमें दोबारा निर्वाचन कराना पड़ता है। इससे समय एवं धन का अपव्यय होता है। कतिपय इसी दोष को दूर करने के लिये वैकल्पिक मतदान व्यवस्था का निर्माण हुआ।

### 4.3.9.3. वैकल्पिक मतदान व्यवस्था

इसे वरीयता या सापेक्षतापूर्ण मतदान की व्यवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें विजयी होने के लिये प्रत्याशी को कुल डाले गये मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके लिये दोबारा चुनाव नहीं होता है।

वैकल्पिक मतदान व्यवस्था में मतदाता को ऐसा मतपत्र दिया जाता है जिसमें प्रत्याशियों का नाम तथा चुनाव चिन्ह बायें और दिये जाते हैं। और दाहिने तरफ खाली खाने होते हैं। जिसमे मतदाता को 1,2,3,4 आदि लिखकर अपनी पंसद का क्रम दिखाना होता है। मतदान के बाद वैध मतों संख्या में 1+1 = 2 से भाग देकर भागफल में 2 जोड़कर चुनाव ''कोटा'' निकाल लिया जाता है। उदाहरण के लिये किसी मतदान में वैध मत 200 हैं तो कोटा 200/1+1 = 2 = 100] 100 + 1=101 होगा।

इस व्यवस्था में गिनती की विशेष प्रक्रिया अपनायी जाती है। सबसे पहले प्रथम वरीयता के मतों की गिनती होती है। यदि प्रथम वरीयता के मतों से कोई प्रत्याशी ''कोटा'' प्राप्त कर लेता है तो उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। यदि कोई भी प्रत्याशी निर्धारित ''कोटा'' नहीं प्राप्त कर पाता है तो सबसे कम मत पाने वाले प्रत्याशी को हटा दिया जाता है और उसके मतपत्रों में अंकित द्वितीय पसंद के मतों को अन्य प्रत्याशियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। द्वितीय वरीयता के मतों को जोड़ने से यदि किसी प्रत्याशी को ''कोटा'' प्राप्त हो जाता है तो उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय मत से भी ''कोटा'' प्राप्त नहीं होता तो तृतीय वरीयता के मतों को हस्तान्तरित किया जाता है। यह क्रम तब तक

चलता रहता है जब तक ''कोटा'' प्राप्त न हो जाये। भारत में राष्ट्रपति के चुनाव में यही प्रक्रिया अपनायी जाती है।

**4.3.10. अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व**

सामान्यतः प्रतिनिधित्व से बहुमत के प्रतिनिधित्व का बोध होता है क्योंकि निर्वाचन में उम्मीदवारों का चुनाव बहुमत के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक समाज में अल्पसंख्य समुदाय भी होता है। सामान्य निर्वाचन प्रक्रिया में अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। कतिपय यह कारण है कि सभी देशों में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। जे0एस0मिल एवं लेवी ने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व को मजबूती से उठाया। मिल ने अपने पुस्तक "रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट" में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की। मिल के शब्दों में - "सच्चे प्रजातंत्र के अन्तर्गत प्रत्येक समुदाय को आनुपातिक ढंग से प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये।"

आधुनिक समय में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न एक गंभीर प्रश्न है। इसकी किसी भी स्थिति में अवहेलना करना अन्यायपूर्ण होगा। अल्पसंख्यकों को साथ में जोड़े बिना वास्तविक लोकतन्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

मिल के शब्दों में - "प्रजातंत्र का विशुद्ध अर्थ उस शासन से है, जो सारी जनता का शासन हो, एक समान प्रतिनिधित्व के आधार पर सारी जनता द्वारा हो।"

विभिन्न विद्वानों और विचारकों ने भी अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार किया है। इस संबंध में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है। इसमें से प्रमुख सिद्धान्त निम्न है-

1. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली
2. सूची प्रणाली
3. सीमित मतदान प्रणाली
4. संचित मतदान प्रणाली
5. वैकल्पिक मत प्रणाली
6. सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली
7. द्वितीय मतदान प्रणाली

**4.3.10.1. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली**

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इंग्लैण्ड के विद्वान थामस हेयर ने अठारहवीं शताब्दी में किया। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे हेयर प्रणाली भी कहते है। इस पद्धति को अपनाने के लिये आवश्यक है कि बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिये। ऐसे निर्वाचन क्षेत्र में प्रत्येक मतदाता को उतने संख्या में मत देने का अधिकर होता है। जितने उम्मीदवार चुने जाते है। इस व्यवस्था में विजय का आधार बहुमत नहीं वरन् निश्चित कोटा होता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को व्यवहारिक बनाने के लिये दो विधियाँ विकसित की गई। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के तीन तत्व है-

- बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिए।

- प्रत्याशी का निर्वाचन बहुमत से नहीं वरन् मतों का निश्चित कोटा के आधार पर होना चाहिए। यह कोटा कुल वैध मतों को भरे जाने वाले स्थान से भाग देने पर भागफल में एक जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है।
- जहाँ तक संभव हो विधायिका में निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व गणितीय दृष्टि से ठीक हो।

डायसी के शब्दों में - "आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली वह है जिसमें बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र हो, प्रत्याशी का निर्वाचन बहुमत से नहीं वरन् कोटा प्राप्त करने से होना चाहिये। साथ ही विधायिका में ऐसा प्रतिनिधित्व हो जो गणितीय दृष्टि से सटीक हो।"
यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि निर्वाचकों के विचारों को विधायिका में यथासंभव उसी अनुपात में प्रतिनिधित्व दिलाने के लिये जितने निर्वाचक है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को व्यवहारिक बनाने के लिये दो विधियाँ विकसित की गई-

- एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्था ( Single transferable vote system)
- सूची व्यवस्था ( List system)

### 4.3.10.1.1. एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्था

एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्था को सबसे पहले डेन्मार्क के एक मन्त्री कार्ल एंडरे ने प्रस्तुत किया। परन्तु इसे हेयर ने और व्यावहारिक बनाया अतः इसे ''हेयर प्रणाली'' भी कहा जाता है। इस व्यवस्था में मतदाता को ऐसा मत पत्र दिया जाता है जिसमें बायें ओर सभी प्रत्याशियों के नाम एवं चिन्ह अंकित होते हैं तथा दाहिने छोर पर खाली खाने होते हैं। उसे इन खाली में अपने पसन्द के क्रम 'वरीयता' अंकित करने होते है। वह सभी अथवा कुछ को भर सकता है। मतगणना के समय अवैध मतपत्रों को अलग कर दिया जाता है। वैध मतों में चुने जाने वाले सीटों की संख्या में एक जोड़कर भाग दे दिया जाता है यही भागफल एक जोड़कर 'कोटा' प्राप्त किया जाता है। इस सूत्र को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

$$\frac{\text{वैध मतों की कुल संख्या}}{\text{स्थानों की कुल संख्या}} + 1 = \text{निर्वाचन कोटा}$$

निर्वाचन के लिये कोटा से अधिक या बराबर मत प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि मतगणना में किसी को कोटा प्राप्त नहीं हो पाता है तो सबसे कम मत प्राप्त होने वाले व्यक्ति को बाहर कर दिया जाता है और उसके द्वितीय वरीयता के मत दूसरे प्रत्याशियों को हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं। यदि फिर भी 'कोटा' प्राप्त नहीं होता है तब सबसे कम मत पाने वाले प्रत्याशी को बाहर कर उसके मतों को अन्य प्रत्याशियों में हस्तान्तरित कर दिया जाता है। निर्वाचन कोटा प्राप्त करने वाले व्यक्ति विजयी होते है। प्रथम मतगणना में कोटा प्राप्त होने के बाद उसके कोटा से अधिक द्वितीय वरीयता के मत शेष प्रत्याशियों को हस्तांतरित कर

दिये जाते है। इस प्रकार मतों का हस्तान्तरण तब तक चलता रहता है। जब तक आवश्यक संख्या में सदस्य निश्चित मत संख्या प्राप्त नहीं कर लेते।
यह प्रणाली थोड़ी जटिल है फिर भी नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन, फिनलैण्ड में प्रचलित है। भारत में राज्य सभा, विधान परिषद के चुनाव में इसका प्रयोग होता है।

### 4.3.10.1.2. सूची प्रणाली

आनुपातिक मत पद्धति का दूसरा रूप सूची प्रणाली है। इस प्रणाली में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होते हैं। एक निर्वाचन क्षेत्र में 15 से 20 सदस्य होते हैं। इस प्रणाली में जो प्रत्याशी खड़े होते हैं, उनके दल द्वारा अपने-अपने प्रत्याशियों की सूची बना ली जाती है। प्रत्येक मतदाता कुल चुने जाने वाले लोगों के बराबर मत देता है। एक उम्मीदवार को एक मत ही प्राप्त होता है। गणना से पूर्व कोटा पहले से तय कर लिया जाता है। इस प्रणाली में उम्मीदवारों द्वारा पृथक-पृथक प्राप्तों मतों की संख्या की गणना नहीं की जाती है वरन् विभिन्न सूचियों में प्राप्त मतों की गणना की जाती है। यह देखा जाता है कि किस दल ने कितने प्रतिशत मत प्राप्त किये हैं। स्थानों का विभाजन उसी प्रतिशत के अनुसार दलों के पक्ष में किया जाता है।
यह भी हो सकता है कि कोई दल विजयी होने के लिये आवश्यक प्रतिशत न पा सका हो। यह भी हो सकता है कि अपने मतों का प्रतिशत किसी पड़ोसी अथवा अन्य बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में ले जाकर वहाँ इस शेषांश के संचय के माध्यम से एक या अधिक स्थान पाने का प्रयास करता है। वह किसी अन्य दल को बचे मत दे सकता है जिससे ''साझे प्रत्याशी'' के लिये स्थान प्राप्त किया जा सके।
सूची प्रणाली में मतदान व्यक्ति के आधार पर नहीं वरन् पार्टी के आधार पर किया जाता है। यह सरल प्रणाली है। इसमें सभी दलों, समूहों को स्थान दिया जाता है। विजयी उम्मीदवारों की संख्या उनके द्वारा प्राप्त मत संख्या के अनुपात में तय की जाती है। यह प्रणाली कम खर्चीली भी है।

### 4.3.11. आनुपातिक प्रतिनिधित्व के गुण

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के प्रमुख गुण इस प्रकार है-
**1. अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व:-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है। यह प्रणाली अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करती है। इसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। जिससे इनके अन्दर सुरक्षा की भावना का विकास एवं सन्तोष की प्राप्ति होती है।
**2. सभी वर्गों का हित साधनः-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। इस प्रणाली में संख्या बल में कमजोर अल्पसंख्यकों का भी प्रतिनिधित्व होता है। इसमें प्रत्येक मत का इस्तेमाल होता है। कुल मिलाकर यह प्रणाली सम्पूर्ण समाज के हित में है।
**3. नागरिक चेतना का विकासः-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में प्रत्येक मत का अपना महत्व होता है। सभी वर्ग के लोग मतदान प्रक्रिया में उत्साह के साथ भाग लेते है। यह प्रक्रिया लोगों में उत्साह का संचार करती है। यह उत्साह उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय करता है। जिससे राजनीतिक चेतना का विकास होता है।
**4. भ्रष्टाचार का अन्तः-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है। इसमें भ्रष्टाचार का अन्त हो जाता है। यह ऐसी प्रणाली है जिसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व होता है। इसमें किसी एक दल

का प्रचण्ड बहुमत नहीं होता। अधिकाशतः मिश्रित सरकार बनती है जो संतुलित रहती है। इसमें सरकारों की मनमानी एवं भ्रष्टाचार की संभावना कम रहती है।

**5. राजनीतिक शिक्षा का प्रसारः-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में मतदाताओं को राजनीतिक शिक्षा प्राप्त होती है। इसमें सभी मतदाताओं को अपनी पसन्द जारी करने का अवसर प्राप्त होता है। यह उन्हें राजनीतिक व्यवस्था में सक्रिय बनाती है तथा राजनीतिक शिक्षा भी प्रदान करती है।

**6. राष्ट्रीय हितों का संवर्द्धनः**- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है कि इसमें राष्ट्रीय हितों की पूर्ति होती है। कोई भी दल स्वार्थीं से प्रेरित होकर राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं कर पाता। प्रत्येक वर्ग, दल के प्रतिनिधित्व से संसद अथवा विधायिका में सत्तारूढ़ दल की पर्याप्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। अतः वे राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं कर पाते हैं।

**7. श्रेष्ठ व्यक्तियों का शासनः**- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में श्रेष्ठ व्यक्ति शासन के कार्य को करते हैं। वे विधायिका में अपनी योग्यता, प्रतिभा का परिचय देते हैं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में चुनाव की पद्धति योग्य व्यक्तियों को चुनाव में सफल करती है। मिल के शब्दों में- ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की तुलना में कोई अन्य निर्वाचन प्रणाली नहीं है जिसके द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तियों को विधायिका में लाया जा सके।''

**8. उम्मीदवार एवं मतदाताओं में घनिष्ठ सम्बन्धः**- इस प्रणाली में मतदाताओं एवं उम्मीदवारों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। मिल के शब्दों में - ''इन परिस्थितियों में निर्वाचक और प्रतिनिधि के बीच सशक्त ओर महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होता है क्योंकि प्रत्येक मतदाता उम्मीदवारों से अपनापन का अनुभव करता है और प्रत्येक प्रतिनिधि मतदाता से घनिष्ठता महसूस करता है।

9. **गैरीमेण्डरिंग जैसी बुराइयों का अन्तः**- गैरीमेण्डरिंग आधुनिक समय में दिखायी पड़ रही एक बुराई है। इसमें निर्वाचन क्षेत्रों में सत्तारूढ़ दल अपने हितों के अनुरूप निर्वाचन क्षेत्रों में बदलाव करता है। यह एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में हो पाता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में होती है अतः वहाँ पर गैरीमेण्डरिंग का भय नहीं रहता है।

**10. प्रजातन्त्रवादीः-** प्रजातन्त्र जनता का शासन है। अतः जनता का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व (सभी वर्गां,पंथों) करने के लिये आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली ही कारगर है। लार्ड एक्टन के शब्दों में- ''यह अति प्रजातन्त्रवादी है क्योंकि इससे उन सहस्त्रों व्यक्तियों का शासन में भाग लेने का अवसर मिलता है जिनकी वैसे कोई सुनवाई नहीं होगी। यह समानता के सिद्धान्त के निकट है क्योंकि किसी मत का अपव्यय नहीं किया जाता। प्रत्येक मतदाता का व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व होता है।

### 4.3.12. आनुपातिक प्रतिनिधित्व के दोष

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में अनेक गुण हैं परन्तु इसके साथ इसमें कुछ दोष भी दिखायी पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में स्ट्रांग का कथन प्रासंगिक हो जाता है- "सैद्धान्तिक दृष्टि से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली सभी प्रकार से श्रेष्ठ प्रतीत होती है, किन्तु व्यवहार में स्थिति ऐसी नहीं है।" इसके प्रमुख दोष निम्न है-

**1. जटिल शासन प्रणालीः**- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह एक प्रमुख दोष है। यह निर्वाचन प्रणाली जटिल है। सामान्य मतदाता के समझ से परे है। विशेष रूप से मतगणना की प्रक्रिया भी जटिल है।

प्रो0 जे0पी0 सूद के शब्दों में - "यह पद्धति इतनी जटिल है कि इसके अन्तर्गत मतदाता और उम्मीदवार दोनों गणना पदाधिकारियों की दया पर निर्भर करते है।"

**2. मजबूत सरकारों का अभाव**:- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख दोष है। इसमें स्थायी सरकार का निर्माण नहीं हो पाता है। इस पद्धति में किसी दल विशेष को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता है। इतिहास में ऐसे कई अवसर आये हैं जब मिश्रित सरकारें बनी हैं और अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पायी हैं। फाइनर के शब्दों में - ''विभाजन तथा पृथक्करण को प्रोत्साहित करके यह कार्यकारिणी के स्थायित्व को धक्का पहुँचाती है।''

**3. एक सदस्यीय एवं छोटे क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त:-** यह निर्वाचन पद्धति बड़े तथा बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है परन्तु एक सदस्यीय एवं छोटे निर्वाचन क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त होती है।

**4. चुनाव का आधार योग्यता न होकर दलीय गुटबन्दी:-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में चुनाव का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। मतदाता एवं प्रतिनिधियों के बीच सम्पर्क नही हो पाता है। मतदाता, चुनाव योग्यता के आधार पर न कर दलीय आधार पर करते हैं।

**5. स्वतन्त्र एवं निर्दल उम्मीदवारों के विरूद्ध**:- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह दोष है कि इसमें स्वतन्त्र एवं निर्दल उम्मीदवारों के लिये कोई स्थान नहीं होता है। इसमें केवल पार्टी टिकट पर खड़े उम्मीदवार ही चुनाव लड़ पाते हैं।

**6. मतदाता एवं निर्वाचकों के मध्य मजबूत सम्बन्ध का अभाव**:- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र आवश्यक होते हैं। इसके परिणामस्वरूप निर्वाचकों एवं उम्मीदवारें के बीच सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। प्रतिनिधि दल के प्रति उत्तरदायी होते हैं। फाइनर के शब्दों में - ''इसे अपनाने पर प्रतिनिधि द्वारा अपने क्षेत्र की देखभाल समाप्त हो जाती है।''

**7. अनेक दलों एवं गुटों का जन्म**:- इस निर्वाचन प्रणाली को अपनाने से पृथक वर्ग एवं हित समूह की आशा जगती है। इसके परिणामस्वरूप अनेक दलों एवं गुटों की संख्या बढ़ जाती है। जर्मनी के वीमर संविधान में इसे अपनाये जाने से वहाँ दलों की संख्या 30 से अधिक होती है। लास्की के शब्दों में - ''इसके अन्तर्गत अनेक दल एवं गुटों का जन्म होता है।''

**8. वर्गीय हितों की पूर्ति:-** इस पद्धति में विधायिका राष्ट्रीय हितों का संवर्धन नहीं करती वरन् क्षेत्रीय एवं वर्गीय हितों की पूर्ति करती है। विकास एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान वर्गीय हितों के आधार पर किया जाता है। सिजयिक के शब्दों में - ''वर्गीय प्रतिनिधित्व आवश्यक रूप से दूषित वर्गीय व्यवस्थापन को प्रोत्साहित करता है।''

**9. राष्ट्रीय एकता के लिये घातक**:- इस प्रणाली में संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिये प्रयास किये जाते हैं। राष्ट्रीय हितों की अनदेखी की जाती है। इसमें राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम नहीं होते हैं। प्रो0 स्ट्रांग के शब्दों में- "आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली संकीर्ण विचारधारा को जन्म देती है जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।"

**10. उपचुनाव की व्यवस्था नहीं**:- कुछ आलोचकों का मानना है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में उपचुनाव की व्यवस्था नहीं है जिसके कारण जनता का मिजाज सरकार की लोकप्रियता की परख नहीं हो पाती है। फाइनर के शब्दों में - ''उपचुनाव से यह ज्ञात होता है कि हवा किस ओर बह रही है, परन्तु ऐसा उपचुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सम्भव नहीं है।''

विभिन्न विद्वानों ने इस प्रणाली की व्यापक आलेचना की है। लास्की के शब्दों में - ''यह योजना जनजीवन के स्तर को उन्नत बनाने में असफल रही है।'' फ्रांसीसी विद्वान एसमिन के शब्दों में - ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की स्थापना करना द्विसदनीय व्यवस्था द्वारा प्रदत्त अमृत को विष में परिवर्तित करना है।

यह सत्य है कि यह प्रणाली सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त है। यह विशेष निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है।

### 4.3.13. संचित मतदान प्रणाली

इस मतदान प्रणाली के लिय बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक मतदाता को उतने मत दिये जाते हैं जितने सदस्य उस क्षेत्र से चुने जाने वाले हैं। प्रत्येक मतदाता को यह विशेष अधिकार होता है कि वह अपने समस्त मत चाहे तो एक प्रत्याशी को दे दे या अलग-अलग प्रत्याशियों को दे। यह व्यवस्था अल्पसंख्यकों को एक साथ संगठित हो अपने पूरे मत किसी विशेष प्रत्याशी को देने से, चुने जाने का अवसर प्रदान कर देती है।

इस मत प्रणाली में अनेक दोष दिखायी पड़ते है। इसमें अल्पसंख्यकों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है। इस प्रणाली का दूसरा महत्वपूर्ण दोष है कि मतदाताओं के अनेक मत व्यर्थ हो जाते है। कई बार परिस्थितिवश अल्पसंख्यकों को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। मतगणना में भी यह मतदान प्रणाली जटिल है।

### 4.3.14. सीमित मतदान प्रणाली

अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये सीमित मतदान प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसका प्रयोग बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में किया जाता है जिसमें कम से कम तीन सदस्य निर्वाचित होने की व्यवस्था हो। इस प्रणाली में प्रत्येक मतदाता को एक से अधिक मत तथा कुल निर्वाचित होने वाले लोगों से कम प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये किसी क्षेत्र विशेष से 4 सदस्यों का निर्वाचन होना है तो वहाँ मतदाताओं को अधिकतम 3 मत प्राप्त हो सकते है। इसमें मतदाता किसी प्रत्याशी को एक से अधिक मत नहीं दे सकता।

इस मतदान प्रणाली में अल्पसंख्यकों को कुछ प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त हो जाता है किन्तु जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व की संभावना नहीं रहती। केवल बड़े अल्पमत वर्गों को प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त होता है।

### 4.3.15. सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली

सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को पृथक निर्वाचन प्रणाली भी कहा जाता है। भारत में यह उपनिवेशवाद के दौरान अंग्रेजों की देन है। इस प्रणाली में धर्म अथवा सम्प्रदाय के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र बनाये जाते है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान में मुसलमानों के लिये यह सिद्धान्त अपनाया गया। 1919 के सिक्खों को पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया। इस व्यवस्था में प्रत्येक सम्प्रदाय के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये जाते है। एक सम्प्रदाय के लिये आरक्षित स्थान उस वर्ग से भरे जाते है। इस निर्वाचन प्रणाली में एक सम्प्रदाय के लिये आरक्षित स्थान पर उस वर्ग के व्यक्तियों द्वारा ही निर्वाचन किया जाता है। उदाहरण

के लिये मुस्लिम मतदाता मुस्लिम प्रतिनिधि का चुनाव करता है तथा सिक्ख मतदाता सिक्ख प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं।

यह निर्वाचन प्रणाली धार्मिक अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व अवश्य देती है परन्तु इसका उद्देश्य, प्रभाव समाज के लिये ठीक नहीं है। इससे समाज में सांप्रदायिक भावना के विकास की संभावना प्रबल हो जाती है। देश कई भागों में बंट जायेगा और सं ाप्रदायिकता की आग फैल जायेगी। इससे दंगों की संभावना प्रबल होगी और राष्ट्रविरोधी शक्तियों को बल मिलेगा। अंग्रेजों द्वारा विकसित की गई इस योजना का मकसद भारत के समाज को बाँटकर इसकी एकता एवं स्वतन्त्रता संघर्ष में लगी शक्ति को कम करना था। यह उनकी ''फूट डालो राज करो'' की नीति का क्रियान्वयन था।

**4.3.16. व्यावसायिक प्रतिनिधित्व**

प्रतिनिधित्व का यह आधुनिक सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता है कि प्रतिनिधितव का वर्तमान सिद्धान्त "क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त" न्यायपूर्ण नहीं है। उनका मानना है कि प्रतिनिधित्व क्षेत्र के आधार पर न होकर व्यवसाय के आधार पर होना चाहिए। इनका मानना है कि विशिष्ट हित रखने वाले सामाजिक, आर्थिक, व्यवसायिक समूहों को विधायिका में स्थान मिलना चाहिए। गार्नर के शब्दों में - "प्रादेशिक प्रतिनिधित्व की तथाकथित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के स्थान पर व्यवसायिक, कार्य सम्बन्धी या पेशेवर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था होनी चाहिए जो प्रादेशिक रेखाओं की उपेक्षा करें, क्योंकि वे प्रमुख रूप से बनावटी होती है तथा उन सीमाओं को नहीं दर्शाती जो विभिन्न वर्गों के वास्तविक हित को भिन्न करती है और जिनसे आधुनिक समाजों का गठन हुआ है।"

सरल शब्दों में व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के विचार की प्रमुख मान्यता यह है कि केवल जनसंख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का बाँटवारा ठीक नहीं है। इसके स्थान पर विभिन्न व्यवसायों, धन्धों की गणना होनी चाहिए और उनके आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार विधायिका में व्यापारी वर्ग द्वारा चुने गये व्यापारी, श्रमिक वर्ग द्वारा श्रमिक, कृषक वर्ग द्वारा चुने गये कृषक, अध्यापकों द्वारा चुने गये अध्यापकों आदि का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। जी0डी0एच0 कोल व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के प्रबल समर्थक थे उनका कहना था- ''पूर्णतया वास्तविक एवं प्रजातान्त्रिक प्रतिनिधित्व व्यावसायिक प्रतिनिधित्व है। इसका अभिप्राय है कि समाज में उतने पृथक रूप से चुने गये प्रतिनिधियों के समूह होने चाहिए जितने प्रचलित विशिष्ट कार्यों के समूह हो।''

कोल ने आगे और स्पष्ट करते हुए लिखा- ''संसद सभी नागरिकों का सभी तरह से प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है परन्तु वास्तव में वह उनमें से किसी का किसी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करती। उन्हें उन समस्याओं से निपटने के लिये चुना जाता है जो इसके सामने आती हैं परन्तु इस तथ्य पर कोई ध्यान नहीं देता कि विभिन्न प्रकार की समस्यायें पैदा हो सकती हैं जिनसे निपटने के लिये विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की जरूरत होती हैं। हमारे संसदीय शासन की व्यर्थता से बचने का एक तरीका हो सकता है कि प्रत्येक व्यवसाय एवं प्रत्येक संघ के कार्य के लिये प्रतिनिधियों के अलग-अलग निकाय हों। वास्तविक प्रजातन्त्र किसी अकेली सर्वशक्तिमान प्रतिनिधि सभा में नहीं बल्कि व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था में संभव हो सकता है।''

### 4.3.16.1. व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के दोष

इस सिद्धान्त में कुछ दोष दिखायी पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं-

**1. राष्ट्रीय हित की अनदेखी**:- व्यावसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त में व्यवसाय एवं वर्ग के आधार पर प्रतिनिधित्व होता है जिसके कारण वे अपने हितों की पूर्ति में लगे रहते हैं और राष्ट्रीय हित गौण हो जाते हैं।

**2. वर्ग अथवा व्यावसायिक संघर्ष**:- व्यावसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त में विभिन्न वर्गों में एक तरह से होड़ अथवा संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यह किसी भी समाज के लिये हितकर नहीं होता। यह इस सिद्धान्त का प्रमुख दोष है।

**3. सम्पूर्ण मानव हितों की अनदेखी**:- कुछ आलोचकों का मत है कि यह सिद्धान्त केवल व्यावसायिक हितों को महत्व देता है। यह सम्पूर्ण मानव हितों के ही अंग है। व्यक्ति के सभी हित नागरिक हित के अन्तर्गत ही आते हैं। मैरियट के शब्दों में-''नागरिक का महत्व, डॉक्टर, वकील, व्यापारी, सोनार से कहीं अधिक है।''

**4. सामाजिक एवं नागरिक एकता की क्षति**:- यह सिद्धान्त सामाजिकता की भावना पर गहरा कुठाराघात करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसके हितों की पूर्ति सामाजिक एवं नागरिक आधार पर हो सकती है। व्यवसाय एवं वर्ग के आधार पर प्रतिनिधित्व होने से सामाजिक एकता को क्षति होगी।

**5. अव्यावहारिक सिद्धान्त:-** इस सिद्धान्त को लागू करने में व्यावहारिक क्षति होगी। यह पता करना मुश्किल है कि किस हित को कितना महत्व प्रदान किया जाये। लास्की के शब्दों में - ''यह समझ से परे है कि चिकित्सा सम्बन्धी कार्य संसद के प्रयोजनों के लिये किस प्रकार अनिवार्य हैं।''

6. **अनुपयोगी सिद्धान्त:-** यह सिद्धान्त अनुपयोगी है। व्यावसायिक आधार पर चुने गये प्रतिनिधि सार्वजनिक हित, राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर विचार नहीं रखते हैं। अतः यह सिद्धान्त लोकतन्त्र में अनुपयोगी हो जाता है।

### 4.3.17. आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक शर्तो

लोकतन्त्र में प्रतिनिधित्व का बहुत महत्व है। यदि प्रतिनिधित्व ठीक से नहीं होता है तो लोकतन्त्र का भविष्य भी अन्धकारमय हो सकता है। यदि प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं है, निष्पक्ष नहीं है तो लोकतन्त्र प्रभावित होता है। सामान्य शब्दों में कहें तो स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष प्रतिनिधित्व के बिना आदर्श लोकतन्त्र की कल्पना नहीं कर सकते हैं। आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये कुछ आवश्यक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, आदर्श प्रतिनिधित्व की कुछ प्रमुख शर्तें इस प्रकार हैं-

**1. स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव**:- आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि निर्वाचन स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष हो। यदि निर्वाचन स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष नहीं होगा तो समाज के सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पायेगा। अतः सभी को उचित एवं न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि निर्वाचन पक्षपात पूर्ण न हो कर स्वतन्त्र हो।

**2. सार्वभौम वयस्क मताधिकार:-** समाज में विषमता पाई जाती है। सभी को लोकतन्त्र में राजनीतिक अधिकार दिये जाते हैं। जब तक समाज के हर वर्ग को मताधिकार नहीं मिलेगा तब तक वे अपने

मताधिकार का प्रयोग नहीं कर पायेंगे। यही कारण है कि आधुनिक समय में सार्वभौम वयस्क मताधिकार दिया गया जिससे सभी स्त्री-पुरूष एवं कमजोर वर्ग के लोग अपने मतों का प्रयोग कर सकें।

**3. मतदाता एवं जनप्रतिनिधियों में घनिष्ठ सम्बन्धः-** आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि मतदाता एवं प्रतिनिधियों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो। यह घनिष्ठ मतदाताओं को जागृत करता है तथा जनप्रतिनिधियों को अंकुश में रखता है। वे जनप्रतिनिधियों को उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं। इसके लिये एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों को अपना कर पूर्ति की जा सकती है।

**4. अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व:-** समाज में अनेक जाति, धर्म के लोग होते हैं। लोकतन्त्र में सभी की सहभागिता आवश्यक है। समाज में वर्ग विशेष की आबादी कम भी होती है। अतः ऐसे भी बहुमत आधारित चुनाव प्रक्रिया में यह असफल हो जाते हैं। अतः उनकों पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास आवश्यक है। इन प्रयासों में उव वर्ग का मनोनयन, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अच्छे विकल्प हो सकते हैं।

**5. जनसंख्या आधारित छोटे निर्वाचन क्षेत्रः-** आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है जनसंख्या आधारित छोटे निर्वाचन क्षेत्र होने चाहिए। इससे जन प्रतिनिधि अपने क्षेत्र विशेष के प्रति अपने कर्तव्यों को कर पायेंगे। वे क्षेत्र विशेष की समस्याओं को दूर कर क्षेत्र की जनता के हितों की रक्षा कर सकेंगे। यहीं प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र की मूल मंशा है। अतः कहा जा सकता है कि छोटे निर्वाचन क्षेत्र आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है।

**6. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष निर्वाचन का उचित संतुलनः-** प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था प्रजातन्त्र की धारणा के अनुकूल है। आधुनिक समय के विशाल राष्ट्रों के कारण प्रत्यक्ष निर्वाचन सम्भव नहीं है। कतिपय यही कारण है कि अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र को अपनाया गया है। साथ ही कुछ पदों पर जहाँ प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व हो सकता है। वहाँ पर प्रत्यक्ष निर्वाचन भी अपनाया गया है। भारत में ये दोनों गुण मिलते हैं। जहाँ लोकसभा के चुनाव में जनता सीधे (प्रत्यक्ष) रूप में भाग लेती है। वहीं राष्ट्रपति एवं राज्यसभा में अप्रत्यक्ष (परोक्ष) रूप से भाग लेती है।

### 4.3.18. सारांश

आधुनिक समय में दुनिया में प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र पाया जाता है। राज्यों का आकार एवं आबादी इतनी अधिक है कि सभी नागरिक शासन संचालन की प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते है। ऐसे में नागरिक समाज से उनके प्रतिनिधि ही विधि निर्माण एवं शासन की क्रिया में भाग लेते है। जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन संचालन का कार्य करती है। सामान्यतः आमचुनाव में विधानिक के सदस्यों अथवा जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन जनता करती है। जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन संचालन की व्यवस्था को प्रतिनिधित्व कहा जाता है। आज राज्यों के बड़े आकार एवं विशाल जनसंख्या के अतिरिक्त सामान्य जनता विधि निर्माण एवं शासन संचालन एवं विधि निर्माण में असमर्थ होती है। इसके अतिरिक्त शासन एवं विधि निर्माण कार्य की जटिलता सामान्य नागरिकों के समथर्न एवं समझ से परे होती है। कतिपय इन्हीं कारणों से प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है।

प्राचीन राजतन्त्रात्मक युग में प्रतिनिधित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मध्ययुग में इसके संकेत मिलने प्रारम्भ हो गये थे। जे0ए0कारी के शब्दों में -‘‘ चर्च के धार्मिक प्रतिनिधियों के एकत्र होने के साथ ही प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश हुआ। ब्रिटेन में नये कर लगाने के लिये प्रजा की राय जानने से

प्रतिनिधियों का राजदरबार में आमन्त्रित करने की परम्परा ने प्रतिनिधित्व का मजबूत एवं स्थायी बना दिया। ब्रिटेन में प्रतिनिधित्व समय के साथ स्थायी एवं व्यापक हो गया। आगे जाकर यह परम्परा वहाँ संसदीय शासन एवं द्वि सदनात्मक विधायिका (हाउस ऑफ कामन्स एवं हाउस आफ लार्डस) के उदय तथा प्रधानमंत्री के नेतृत्व की जनक बन गई। आगे जाकर यूरोप के फ्रांस में इस्टेटस जनरल, जर्मनी में डाइट, स्पेन में कटिस का जन्म इसी आधार पर हुआ।

### 4.3.19. शब्दावली

1. साम्प्रदायिक निर्वाचनः- यह अंग्रेजों द्वारा 1909 में मुस्लिम तुष्टिकरण हेतु भारत मं लायी गयी व्यवस्था थी जिसमें उनके लिये पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाया गया था।
2. गैरीमेंडरिंगः- एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में पायी जाने वाली बुराई है। इसमें सत्तारूढ़ दल अपने हितों के अनुरूप निर्वाचन क्षेत्र में बदलाव करता है। यह अमेरिका में बहुत प्रचालित है।
3. प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रः- नागरिकों के द्वारा सीधे तौर पर विधि निर्माण एवं शासन के कार्य में भाग लेना ही प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र है। आज भी स्विटरजरलैण्ड के कुछ कैटंन (राज्यों) में प्रचलित है।

### 4.3.20. अभ्यास के प्रश्न

1. 'मतों को गिनना नहीं तोलना चाहिए' यह कथन हैं।
   अ फाइनर ब लावेल स रेन द लास्की
2. 'सामान्य व्यक्ति को मताधिकार देने से पूर्व उसे शिक्षित, करना चाहिए' यह कथन है-
   अ ग्रीन ब मैकाइवर स बेथम द मिल
3. निम्न में से कौन व्यवसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त का समर्थक है-
   अ कोल ब मैरियट स हेयर द सभी
4. अच्छे प्रतिनिधित्व के लिये क्या आवश्यक नहीं है-
   अ सार्वभौम व्यस्क मताधिकार ब प्रादेशिक प्रतिनिधित्व स खुला मतदान
   द अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व
5. निम्न में से कौन सा अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त है-
   अ आनुपातिक प्रतिनिधित्व ब सूची प्रणाली स वैकल्पिक प्रणाली
   द सभी

### 4.3.21. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंहल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति
2. प्रसाद मणि शंकर, तुलनात्मक राजनीति
3. जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
4. मल्ल वी0पी0, राजनीति विज्ञान
5. गाबा,ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

### 4.3.22. सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. गेना सी0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
2. सोडारे माइकल, कम्परेटिव पालिटिक्स
3. खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
4. संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त


### 4.3.23. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स
2. द
3. अ
4. स
5. द

### 4.3.24. निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिनिधित्व से आप क्या समझते है? इसके प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।
2. प्रतिनिधित्व का अर्थ एवं उत्पति स्पष्ट कीजिये तथा व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
3. अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने वाली प्रणलियों की व्याख्या कीजिये।
4. आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से क्या समझते है ? इसके गुण दोष की व्याख्या कीजिये।
5. सार्वभौम व्यस्क मताधिकार पर निबन्ध लिखिये।

# इकाई-4 : राजनीतिक अभिजन

**इकाई की रूपरेखा**

**4.4.1. उद्देश्य**
**4.4.2. प्रस्तावना**
**4.4.3. राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषायें**
**4.4.4. अभिजन की विशेषतायें**
**4.4.5. अभिजन के प्रकार**
**4.4.6. पैरटो का अभिजन संचरण सिद्धान्त**
**4.4.7. मोस्का के अभिजन संबंध विचार**
**4.4.8. पैरटो एवं मोस्का के विचारों में अंतर**
**4.4.9. मिचेल्स के अभिजन संबंध विचार**
**4.4.10. सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंध विचार**
**4.4.11. जेम्स बर्नहम के अभिजन संबंध विचार**
**4.4.12. अभिजन एवं लोकतंत्र**
**4.4.13. अभिजन का परिसंचरण एवं प्रजातन्त्र**
**4.4.14. फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्त**
**4.4.15. राजनीतिक अभिजन एवं समाजवाद**
**4.4.16. विकासशील देशों में अभिजन**
**4.4.17. मूल्यांकन**
**4.4.18. सारांश**
**4.4.19. शब्दावली**
**4.4.20. अभ्यास के प्रश्न**
**4.4.21. संदर्भ ग्रन्थ सूची**
**4.4.22. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर**
**4.4.23. सहायक एवं उपयोगी सामग्री**
**4.4.24. निबन्धात्मक प्रश्न**

## 4.4.1. उद्देश्य

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

1. अभिजन सिद्धान्त का अर्थ एवं विशेषताओं को जानना।
2. पैरेटो एवं मोस्का के अभिजन सिद्धान्त को समझना।
3. भिजनों के प्रकार तथा समाज में उनके महत्व को समझना।
4. राजनीतिक अभिजनों में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना।
5. राजनीतिक अभिजन एवं लोकतन्त्र के संबंध को समझना।
6. फाईनर के अभिजन संचरण मॉडल को समझना।

### 4.4.2. प्रस्तावना

लोकतन्त्र का प्रचलित (शास्त्रीय) उदारवादी सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी तक लोकप्रिय रहा। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में लोकतन्त्र का नया उदारवादी सिद्धान्त प्रकाश में आया जिसे अभिजन सिद्धान्त कहा जाता है। यद्यपि अभिजन सिद्धान्त का बीज यूनानी चिन्तनों प्लेटों, अरस्तू के विचारों में पहले से ही दिखाई पड़ते हैं। इस संबंध मे एस0पी0 वर्मा का कथन उल्लेखनीय है- ''राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त का विकास 1950 के दशक में अमेरिका में सुम्पीटर जैसे अर्थशास्त्रियां, लासबेल जैसे राजनीतिशास्त्रीयों, सी0 राइट मिल्स जैसे समाजशास्त्रियों द्वारा विभिन्न रूपों में की गई। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में पैरेटो, मोसका, रार्बट मिचल्स और जार्ज अर्टिगा की विभिन्न कालखण्डों में महती भूमिका रही।

यह सिद्धान्त यह मानता है कि प्रत्येक समाज में एक अल्पसंख्यक वर्ग होता है जो प्रभावी ढ़ग से शासन करता है। इनकी मान्यता है कि प्रत्येक शासन शासक एवं शासित में बाँटा होता है। यह सिद्धान्त मानता है कि कूछ चुने लोग अथवा श्रेष्ठ, विशिष्ठ लोग राजनीतिक शक्ति एवं प्रभाव के स्वामी सदैव बने रहते हैं। इस संबंध में डगलस वर्ने का कथन उल्लेखनीय है- "कोई भी राजसत्ता अपने आपको प्रजातान्त्रिक बतलाने की चाहे कितनी भी चेष्ठा क्यों न करे उसके संगठन में वर्गवादी तत्व सदैव विद्यमान रहते हैं। व्यक्ति सोच सकते है कि वे राजनैतिक प्रक्रिया में भाग ले रहे है, लेकिन वास्तव में उनका प्रभाव चुनाव तक ही सीमित रहता है। सत्ता के केन्द्र में एक सामाजिक विशिष्ठ वर्ग होता है जो महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।" यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त को अस्वीकार करता है जिसमें माना जाता है कि सरकार निर्माण शासन,संचालन में आम लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वास्तव में यह कुछ संभ्रात अथवा विशिष्ट लोगों का बहुसंख्यक लोगों पर शासन है। डूवर्जर के शब्दों में - "प्रजातन्त्र केवल सिद्धान्त में लोगों का शासन है व्यवहार में यह लोगों में से उभरे संभ्रात वर्ग का शासन है।" यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है निर्णय लेने की क्षमता थोड़े लोगों के पास रहती है। यह थोड़े से लोग देश की राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सभी आमलोग युद्ध, संधि, क्रान्ति तथा संसदीय वाद-विवाद आदि संभ्रातों द्वारा प्रभावित एवं संचालित होते हैं। लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र एवं कुलीन तंत्र के शास्त्रीय सिद्धान्त का अद्भुत मिश्रण है। यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के इस तत्व को कि सत्ता का निवास लोगों में है तथा कुलीनतंत्र के इस तत्व को कि सत्ता कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है,को मिश्रित कर देता है। लोकतन्त्र का शास्त्रीय (प्राचीन) सिद्धान्त जहाँ शासन सत्ता, निर्वाचन आदि में लोगों (आमजन) की भागीदारी को स्वीकार करता है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त सत्ता के वितरण में विशिष्ट वर्ग एवं संभ्रात वर्ग, बुद्धिमान, धनी, चतुर, सक्षम लोगों को भागीदार मानता है। प्रजातन्त्र का शास्त्रीय सिद्धान्त जहाँ यह मानता है कि सार्वजनिक नीति विस्तृत एवं अनौपचारिक विचार विमर्श से उत्पन्न होती है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त मानता है कि यह न तो संभव है और न ही वांछनीय है। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त के आदर्शवादी सिद्धान्त को न केवल शंका से देखते है वरन् उस पर प्रहार करते हैं। वे मानते है कि निर्वाध निर्माण की प्रक्रिया में यथा संभव अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी उचित नहीं होगी। इसके परिणाम भयंकर हांेगे। इससे चूर्त नेतृत्व का उदय, चापलूस संस्कृति का उदय, भीड़ का दमनपूर्ण व्यवहार, आदि पनपने की प्रबल संभावना सदैव बनी रहेगी। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त यह मानता है कि लोकतन्त्र के प्राचीन सिद्धान्त

को व्यवहार में तो लागू नहीं किया जा सकता। यह इसे एक काल्पनिक एवं अव्यवहारिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते है।

### 4.4.3. राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषा

राजनीतिक अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त के बीज यूनानी चिन्तन में प्लेटो एवं अरस्तू के विचारों में ही दिखायी पड़ते हैं। ये दोनों ही विद्वान यह स्वीकार करते थे कि शासन की कला एवं क्षमता सभी के पास नहीं होती है। अतः शासन का अधिकार केवल योग्य लोगों के पास होना चाहिए। अरस्तू के शब्दों में - "समाज में कुछ लोग शासन करने के लिये पैदा हुए है तथा कुछ लोग शासित होने के लिये पैदा हुए है।" विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त विशिष्ट वर्ग (श्रेष्ठवर्ग) को महत्वपूर्ण भूमिका देने का पक्षधर है। राजनीतिक अभिजन सीमित अर्थवाली धारणा है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोग शामिल नहीं होते हैं। राजनीति अभिजन वह है जो राजनीतिक व्यवस्था के संचालन और निर्णय निर्माण में सहभागी होते हैं। कतिपय यह कारण है। कि कुछ लोगों ने राजनीतिक अभिजन को निर्णय निर्माण एवं राजनीतिक व्यवस्था के लिये निर्णयकर्ता कहा।

अभिजन शब्द अंग्रेजी में Elite कहा जाता है जिसे लैटिन भाषा के शब्द Elgcne से लिया गया है। इसका अर्थ होता है पसंद द्वारा चुनाव (Selection by choice) होता है। अंग्रेजी में म्सपहबदम अर्थ नेतृत्व से लिया जाता है। इसका प्रयोग आगे जाकर 'विशिष्ट' अर्थों में किया गया। पैरेटो ने जहाँ इसे 'शासक अभिजन'मोस्का ने 'शासक वर्ग', राबर्ट डॉल ने इसे शासक अभिजन कहा है। अभिजन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 17 वीं शताब्दी में विशेष, श्रेष्ठ संदर्भों में किया गया। बाद में इसका प्रयोग उच्च, श्रेष्ठ, कुलीन वर्गों के लिये किया जाना लगा। इस सिद्धान्त को स्थापित करने में एच0डी0लासवैल, मोस्का, पैरेटो, जेम्स बर्नहम, रार्बट डाल, मिचेल्स, सार्टोरी, सी0 राइटमिल्स, वॉटमोर, मैनहाइम तथा शुम्पीटर आदि का महत्वपूर्ण योगदार रहा। राजनीतिक अभिजन की परिभाषा अनेक विद्वानों ने इस प्रकार की है-

सी0 राइट मिल्स के शब्दों में - "हम शक्ति अभिजन की व्याख्या शक्ति के साधन के रूप में कर सकते हैं। शक्ति अभिजन वह है जो आदेश देने वाले पदों को धारण करते है।"

पैरेटो के शब्दों में - "वे व्यक्ति जो अपने कार्यक्षेत्र के अन्र्तगत सबसे अधिक उच्च श्रेणी पर हैं वे ही अभिजन हैं।"

लासवैल के शब्दों में- "एक राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति को धारण करने वाला वर्ग ही राजनीतिक अभिजन होता है। शक्ति धारण करने वाले वर्ग में नेतृत्व करने वाला वर्ग तथा वह सामाजिक समुदाय आते हैं जिसमें ये यह वर्ग आता है जिसके प्रति एक निर्दिष्ट समय में यह उत्तरदायी होता है।"

रार्बट ए डॉल के शब्दों में- "प्रत्येक राजव्यवस्था में अभिजन का एकीकृत अल्पसंख्यक समुदाय अस्तित्व में होता है जो शासकीय नीतियों, नियमों तथा उस समाज से समूह अन्य सभी राजनीतिक विषयों पर अपना प्रभाव डालता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अभिजन एक संगठित अल्पसंख्यक समूह होता है। यह अपनी क्षमता, सामर्थय से बहुसंख्यक समाज पर शासन करता है। ये ऐसा समूह होता है जो राजनीतिक रूप से बहुत प्रभावशाली होता है। शासन का संचालन हर स्थिति में इन्हीं के द्वारा किया जाता है। नीतियों

का निर्माण करना, उनका क्रियान्वयन करना इस लघु समूह के द्वारा ही किया जाता है। ये अपने प्रभाव, प्रभाव के द्वारा राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

**4.4.4. अभिजन की विशेषतायें**

अभिजन समाज में वह समूह होता है जो समाज का नेतृत्व करता है। ये संख्या में कम होते हैं परन्तु इनकी प्रभाव क्षमता बहुत व्यापक होती है। यह सुविधा एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग होता है। इनके हित समाज से अलग होते हैं। अभिजन की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

**1. अल्पसंख्यक उच्चवर्गः-** ये शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। संख्या बल में कम होने के बावजूद इस अल्पंसख्यक समूह का शासन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। सम्पूर्ण शासन व्यवस्था तथा उसका क्रियान्वयन सदैव इनके हाथ में ही रहता है। ये संख्या में कम होने के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे से सघन प्रचार अभियान चलाकर जनमत को अपने पास में करने का प्रयास करते हैं। ये किसी न किसी प्रकार से अपनी उच्च स्थिति को बनाये रखते हैं।

**2. अलग हितों की अभिवृद्धिः-** अभिजन के हित सदैव जनसामान्य के हितों से भिन्न होते हैं। ये सदैव अपने हितों की पूर्ति के लिये सजग रहते हैं। ये जनसामान्य के हितों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं परन्तु उनके हितों के विपरीत अपने हितों के संवर्धन में सक्रिय रहते हैं। संख्या बल में कमी के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे, सघन प्रचारतंत्र के बलबूते आमजन में अपनी मौजूदगी बनाये रखते हैं।

**3. बहुमत का निष्क्रिय एवं प्रभावहीन होना**:- अभिजन वर्ग जो संख्या मे बेहद कम होता है वह सदैव सक्रिय एवं प्रभावशाली रहता है। बहुमत शासन संचालन, विधि निर्माण के कार्य में न तो सक्रिय रहता है और न ही इस पर नियन्त्रण रख पाता है। वे अपनी श्रेष्ठता एवं प्रभाव को बनाये रखने के लिये इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। इस हेतु वे अनैतिक एवं नैतिक तथा विधिक इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। वे येन केन प्रकारणे बहुमत को प्रभावहीन बनाकर रखते हैं।

**4. समाज में विशिष्ट स्थान**:- अभिजन का समाज में विशिष्ट स्थान होता हैं। वे अपने स्थान,प्रभाव को लेकर बहुत सजग रहते हैं। वे निरन्तर अपने स्थान को बनाये रखने तथा प्रभाव को बढ़ाने को लेकर सक्रिय रहते हैं।

**5. जनता के द्वारा निर्वाचन**:- राजनीतिक अभिजन सदैव जनता के द्वारा निर्वाचित होता है। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में यह समय अलग-अलग होता है। ये जनता की आँखों में धूल झोंककर उनका मत प्राप्त कर ही सत्ता प्राप्त करते हैं। वहीं से यह विशिष्ट बनते हैं। ये अपनी राजनीतिक छवि को लेकर बहुत संवेदनशील रहते हैं।

**4.4.5. अभिजन के प्रकार**

आधुनिक समय में कई तरह के अभिजनों का अस्तित्व समाज में पाया जाता है। ये आर्थिक अभिजन, राजनैतिक अभिजन, धार्मिक अभिजन, जातिगत अभिजन के रूप में पाये जाते हैं। पैरेटो ने अभिजन के दो रूप बताये हैं- अभिजन एवं अभिजनेतर। उसने अभिजन को दो भागों में बाँटा हैः-

**1. शासक अभिजनः-** वह कहता है कि जो व्यक्ति शासन को नियन्त्रित सत्ता का उपभोग करता है वह शासक अभिजन कहलाता है। बाद के वर्षों में उनके अनुयायी एवं शिष्या मेरी कोलम्बिसका ने इसे चार भागों में बाँटा :-

- **कुलीन वर्गः-** प्रत्येक समाज में एक उच्च वर्ग होता है जिसके पास विशेषाधिकार होता है, उसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। यह कुलीन वर्ग कहलाता है।
- **पूँजीपति वर्गः-** यह पूँजीपति वर्ग भी शासक अभिजन का हिस्सा होता है। इसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। इसकी धन अथवा पूँजी पर विशेष पकड़ होती है।
- **सैनिक वर्गः-** सैनिक वर्ग भी शासक अभिजन होता है। यह समाज एवं राज्य में विशेष एवं शक्तिशाली भूमिका रखता है। उसके समर्थन से ही शासक सत्ता में रहता है।
- **धर्माधिकारी वर्गः-** यह धर्म पर विशेष पकड़ रखने वालों का समूह होता है। यह धर्म का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इनका सम्मान शासक भी करते हैं। ये विशेष अधिकारों एवं सम्मान के स्वामी होते हैं।

**2. अशासक अभिजन:-** ये अपने आप में अलग वर्ग होता हैं । ये शासक तो नहीं होते हैं परन्तु शासन सत्ता में इनका प्रभाव होता है। यही कारण है कि ये जन सामान्य से अलग विशेष अधिकारों एवं सुविधायों को उपयोग करते हैं। इस वर्ग में डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर, वकील आदि बुद्धिजीवी आते है। अपने अध्ययन 'मस्तिष्क और समाज' (Mind and Society) में पैरेटो अशासक अभिजन की अपेक्षा शासक अभिजन को ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। वह बताता है कि यह वर्ग बल प्रयोग एवं चालाकी दोनों का प्रयोग कर शासन करता है। राजनीतिक सक्रियता के सभी पक्ष इनके नियन्त्रण में रहते हैं। राजनीतिक अभिजन में परिवर्तन होते रहते हैं। पुराने अभिजन भ्रष्ट हो समाप्त हो जाते हैं। उनके स्थान पर नये लोग आ जाते हैं। पैरेटों मानता है कि समाज का प्रत्येक अभिजन इस प्रक्रिया से अंततः नष्ट हो जाता है। उसका स्थान दूसरे लोग लेते हैं।

### 4.4.6. पैरेटो का अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त(Circulation of elite)

पैरेटो ने अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त दिया। उसने अपने सिद्धान्त में बताया कि अभिजन स्थायी नहीं होते हैं। अपने अयोग्यता, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार के कारण अनेक लोग अविशिष्ट हो जाते है। ठीक इसी प्रकार कुछ सामान्य लोग अपने गुणों, योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि कर अभिजन (राजनीतिक) बनने की ओर अग्रसर हो जाते हैं । वह मानता है कि यह परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह परिवर्तन स्वचालित है। वह इसके साथ यह भी जोड़ता है कि यदि यह प्रक्रिया तेज गति से चलती है तो यह शासन के लिये एवं जनकल्याण के लिये हितकर रहती है। तीव्र परिवर्तन वाली व्यवस्था में कुशल एवं योग्य शासन का जन्म होता हैं यह स्वभाविक है कि पद से हटने का भय अभिजनों को पथ से विचलित नहीं होने देता और वे निरन्तर योग्यता एवं क्षमता के साथ जनकल्याण के कार्य में सक्रिय रहते हैं। पैरेटो का स्पष्ट मानना है कि यदि परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी होती है तो भ्रष्टाचार और अयोग्य शासन का जन्म होता है जो जन सामान्य के लिये हितकर नहीं है। अयोग्य एवं भ्रष्ट शासक को हटाने के लिये अंततः क्रान्ति की आवश्यकता होती है। कतिपय ऐसे समय में जनता का नया रूप (सरकार बनाने एवं बिगाड़ने वाली) सामने आता है। जनता नये रूप में अभिजन मे समान व्यवहार करती है। पैरेटो का यह

सिद्धान्त संघर्ष को स्वभाविक मानता है क्योंकि विशिष्ट वर्ग एवं सामान्य वर्ग के हित परस्पर विरोधी होते हैं अतः परस्पर संघर्ष के द्वारा संतुलन की स्थापना होती है और भ्रष्ट शासन पर अंकुश लगता है। एक नये संवेदनशील एवं योग्य सरकार का जन्म होता है।

### 4.4.7. गीटानो मोस्का के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार

मोस्का का राजनीतिक अभिजन संबंध सिद्धान्त पैरेटो के सिद्धान्त से भिन्न है। मोस्का मानता है कि समाज दो वर्गों में विभाजित होता हैः- 1- शासक वर्ग 2- शासित वर्ग।

जो वर्ग शासन करता है वे अल्पसंख्यक अथवा सीमित संख्या में होते हैं। ये वर्ग संख्या में कम होने के बावजूद अपने विशेषाधिकारों की रक्षा के लिये सदैव संगठित रहता है। दूसरी तरफ शासित वर्ग होते हैं जो बहुसंख्यक होते हैं तथा अंसगठित होते हैं। वो मानता है कि इन दोनों वर्गों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह मानता है कि शासित वर्ग अथवा साधारण वर्ग में तीव्र मतभेद रहते हैं। मोस्का अपनी पुस्तक "The Rulling Class" में कहता है- ''सभी प्रकार के समाजों में नितान्त अल्पविकसित या जिन्हें कठिनाई से सभ्य कहा जाता है, ऐसे समाज में पूर्णतया विकसित तथा अतिशक्तिशाली समाज तक में दो वर्ग प्रकट होते हैं- वह वर्ग जो शासन करता है वह वर्ग जिसपर शासन किया जाता है। शासक वर्ग संख्या में छोटा होता है, सभी राजनीतिक क्रियाकलापों को करता है तथा शासन सत्ता पर एकाधिकार कर लेता है तथा उससे प्राप्त सभी सुख सुविधाओं का उपभोग करता है। दूसरा वर्ग जो संख्या में बड़ा होता है शासक वर्ग द्वारा ऐसे ढ़ग से ऐसे निर्देशित तथा नियन्त्रित होता है जो कभी वैद्य तथा कभी स्वेच्छाचारी प्रतीत होता है। व्यवस्थित अल्पमत का संगठित बहुमत पर प्रभुत्व अपरिहार्य है।''

वह आगे स्पष्ट करता है कि प्रत्येक समाज में शासक वर्ग अपने को सत्ता में बनाये रखने के लिये नैतिक एवं कानूनी आधार खोज निकालने का प्रयत्न करता है और उन्हें इन सिद्धान्तों एवं विश्वासों के जो सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त और स्वीकृति है तर्क संगत एवं आवश्यक परिणाम के रूप में प्रस्तुत करता है। इस शासक वर्ग की नीतियाँ चाहे वह स्वार्थवश ही क्यों न बनी हो, एक नैतिक एवं कानूनी आवरण के साथ रखी जाती हैं और एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करती है। मोस्का के शब्दों में - "राजनीतिक नियन्त्रण को नेतृत्व एवं कार्यान्वित करने की की क्षमता में है।" मोस्का की मान्यता थी कि राजनीतिक अभिजन की सदस्य संख्या समय के ससाथ घटती एवं बढ़ती रहती है। शासित वर्ग के लोग भी इसमें सम्मलित होते रहते हैं।

**4.4.8. मोस्का एवं पैरैटो के विचारों में अंतरः-** दोनों ही विचारकों ने अभिजन सिद्धान्त की व्यापक व्याख्या की। दोनों ही समाज में दो वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार करते थे। इनके बावजूद दोनों के विचारों में अंतर के मुख्य बिन्दु निम्न हैः-

1. पैरटो जहां दोनों वर्गों में अंतर परिवर्तन का आधार मनोवैज्ञानिक मानता है वहीं मोस्का परिवर्तन का कारण सामाजिकता को स्वीकार करता है।
2. पैरेटो की स्पष्ट मान्यता थी कि कोई भी अभिजन वर्ग का सदस्य स्वयं हटना नहीं चाहता है, वह तो हटाया जाता है। उसके शब्दों में - "इतिहास शमशानों की भूमि है।" मोस्का मानता है कि शासक वर्ग संगठन पर निर्भर करता है। संगठन की शक्ति, योग्यता के द्वारा विशिष्ट वर्ग का शासन चलता है।

3. पैरेटो विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन के लिये क्रान्ति एवं संघर्ष पर बल देता है वही मोस्का परिवर्तन स्वभाविक एवं जरूरी मानता है। सामाजिकता के परिवेश में जब संगठन अपने आपको अनुकुल नहीं रख पाता है तब उस वातावरण में संगठन पर नेतृत्व वर्ग की पकड़ ढ़ीली हो जाती है तब परिवर्तन आता है। मोस्का की मान्यता थी कि परिवर्तन ''समझा बुझाकर'' होना चाहिए। किसी भी परिवर्तन के लिये हिंसा, क्रान्ति की आवश्यकता नहीं होती है। यह स्वभाविक रूप से शांति से संभव है।
4. पैरेटो के शब्दों में प्रत्येक समाज में शासक एवं शासित दो अलग वर्ग होते हैं। अतः प्रजातन्त्र और अन्य सरकारें सभी समान होती है। मोस्का इसके विपरीत प्रजातन्त्र एवं अन्य सरकारों में स्पष्ट अंतर करता है। वह मानता है कि शासक वर्ग तथा शासित वर्ग में क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है।

### 4.4.9. मिचेल्स के अभिजन संबंधी विचार

पैरेटो के बाद उसके शिष्य मिचेल्स ने अभिजन संबंधी विचार दिये। वह स्पष्ट रूप से मानता था कि आम जनता कभी भी अपनी अयोग्यता, अक्षमता के कारण शासन कार्यो , नीति निर्माण के योग्य नहीं होती। वह मानता था कि शासन करने वालों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह भी शासन करने वालों के लिये 'अल्पतंत्र' शब्द का प्रयोग करता है। वह मानता था कि कोई लोकतान्त्रिक व्यवस्था वास्तव में दलीय व्यवस्था होती है। दल के ऊपर कुछ नेताओं का नियन्त्रण रहता है। ये नेता किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते हैं। ये अभिजन (नेता) लोकतन्त्र में अपना अधिपत्य बनाये रखते हैं। वो आगे इसी से प्रेरित हो कर मिचेल्स ने ''अल्पतं का लौह नियम'' का सिद्धान्त दिया। वह स्पष्ट करता है कि लोकतन्त्र में बहुमत का शासन नहीं होता वरन् अल्पमत का शासन किसी न किसी रूप में बना रहता है। यह अल्पंसख्यक लोग अपनी योग्यता, क्षमता, प्रतिभा, मेधा से शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। वे सत्ता के संघर्ष में आगे निकलकर सदैव सत्ता को प्राप्त करने में सफल रहते हैं। सत्ता प्राप्ति की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती है। यह नियम लोहे के समान अटूट एवं मजबूत है। मिचेल्स के शब्दों में- "संगठन की चर्चा करना अल्पतन्त्र की प्रवृत्ति की चर्चा करना है। जनता के संदर्भ में संगठनतंत्र नेता की स्थिति अलग बना देता है। यह अल्पतंत्र का लौह नियम है।"

मिचेल्स अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखता है कि अधिकतर व्यक्ति स्वभाव से आलसी, उदासीन होते हैं। वे शासन कार्यों को समझने तथा करने में असमर्थ होते हैं। ये झूठे, आश्वासनों एवं प्रसन्नता से सतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने से योग्य लोगों के समक्ष विनम्र एवं आज्ञाकारी बने रहते हैं। ऐसे योग्य एवं क्षमतावान लोग बहुसंख्यक वर्ग की इस कमी का भरपूर फायदा उठाकर सत्ता को अपने जैसा बनाये रखने के लिये उनका समर्थन (वोट) प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। इस हेतु वे उनकी प्रशंसा करने, सपने दिखाने, अनैतिक माध्यमों के प्रयोग आदि करने से भी परहेज नहीं रखते हैं। मिचेल्स के शब्दों में- "ये नेता एक बार सत्ता में आ जाते हैं तो कोई भी उन्हें शक्ति के शिखर से हटा नहीं सकता।"

संगठन के बिना आधुनिक युग में राजनीतिक दल परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता है। यह लौह नियम ऐसा है जिससे किसी भी प्रगतिशील राजनीतिक दल का निकल पाना संभव नहीं है। सत्ता के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति आसानी से सत्ता नहीं छोड़ते हैं। उन्हें सत्ता से अलग करना एक कठिन कार्य है। मिचेल्स के शब्दों में- ''इन्हें नियन्त्रित करने के लिये बनाये कानून भी कुछ समय बाद प्रभावहीन हो जाते हैं। नेताओं

की शक्ति में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होती है। उन्हें समय-समय पर क्रान्तियों के द्वारा ही हटाया जाता है। इससे भी विशेष अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उनके स्थान पर नया शासक आ जाता है जो उतना ही निरकुंश होता है। सत्ता सदैव कुछ लोगों के हाथों में बनी रहती है। उनका प्रयोग मनमाने तरीके से होता है। इस प्रकार अभिजन (विशिष्ट) वर्ग सदैव सत्ता में बने रहते हैं। भोली-भाली जनता सदैव शासित होती रहती है।

### 4.4.10. सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंधी विचार

सी0 राइट मिल्स ने अभिजन संबंधी विचार प्रस्तुत किये। उसने 'शक्ति अभिजन' जैसी नई शब्दावली का प्रयोग किया। वह मानता था कि कुछ लोग समाज में शक्तिशाली पदों पर आसीन रहते हैं। वे उन्हें 'शक्ति अभिजन' संबोधित करता था। वह स्पष्ट करता था शक्ति अभिजन का आधार आर्थिक एवं सामाजिक होता है। आधुनिक समाज में शक्ति उन्हें संगठनों में केन्द्रित होती है जिनकी वृत्तरूपी समाज में केन्द्रीय स्थिति होती है और जो व्यक्ति इन संगठनों में शिखर पर होते हैं। ये शक्ति अभिजन (Power Elite) कहलाते हैं।

मिल्स ने मोस्का के 'शासक वर्ग' के स्थान पर 'शक्ति अभिजन' शब्द देता है। वह स्पष्ट करता है कि वर्ग शब्द से आर्थिक शक्ति का मान होता है तथा शासक से राजनीतिक शक्ति का मान होता है। अतः आर्थिक वर्ग जो राजनीतिक रूप से शासन करता है। मिल्स अपने अभिजन संबंधी सिद्धान्त में व्यक्तियों के स्थान पर संस्थाओं को जोड़ता है। वह स्पष्ट करता है कि अब राजनीतिक शक्तियों का संस्थानीकरण हो चुका है। अब शक्ति व्यक्ति के स्थान पर संस्थाओं में केन्द्रित होती है। नागरिक अब संस्थानिक सत्ता का पालन करती है। इन सत्ताधारियों के चयन में जनता को पूरी छूट होती है। वह मानता है कि नेताओं में बदलाव संस्थाओं के ढ◌ाचे में बदलाव कर ही किया जा सकता है। इनके संचालन में चुनाव महत्वपूर्ण होता है।

### 4.4.11. जेम्स बर्नहम के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार

जेम्स बर्नहम ने अपने 'प्रबन्धकीय क्रान्ति' नामक निबन्ध में अभिजन संबंधी विचार को माक्र्सवाद से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी मान्यता थी कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर आर्थिक सामाजिक व्यवस्था पर ऐसे थोडे से व्यक्तियों का अधिपत्य होगा। यह थोड़े से व्यक्ति सम्पूर्ण शक्तियों के न केवल स्वामी होगें वरन् वे समाज का नेतृत्व भी प्रदान करेंगे। बर्नहम ने इन थोड़े व्यक्तियों के लिये 'प्रबन्धकीय अभिजन' शब्दावली का प्रयोग किया।

बर्नहाइम पहला अभिजनवादी विचारक था जिसने इस सिद्धान्त के साथ आर्थिक तत्व को जोड़ा। वह अपने सिद्धान्त में आगे स्पष्ट करता है कि समाज में नेतृत्व उसी के पास रहता है जो आर्थिक रूप से सबल होते हैं। वह कहता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियाँ घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। वह कहता है कि अभिजन वर्ग का आधार 'आर्थिक शक्ति' है। वह सत्ता में आर्थिक तत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह अपने सिद्धान्त में 'नौकरशाही' को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। उसकी मान्यता है कि यह शक्तिशाली नौकरशाही के साथ राजनीतिक अभिजन को जोड़ता है। इस अभिजन को वह टिकाऊ मानता है।

विभिन्न विचारकों के द्वारा विशिष्ट वर्ग के लिये तथा राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार दिये। इन सभी विचारों से अभिजन सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। इनके विचारों में अंतर है परन्तु इस बात पर सभी सहमत है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में शासन शक्ति केवल कुछ लोगों में रहती है। इस बात पर भी सभी सहमत दिखते हैं कि एक बार सत्ता में आने के बाद अभिजन सदैव अपनी स्थिति को बचाने अथवा सत्ता में बने रहने का प्रयास करते हैं। ये सभी विचारक इस बात पर भी सहमत दिखते हैं कि निर्णय लेने की क्षमता अन्तिम रूप से अभिजन के पास ही रहती है। पैरेटो, मोस्का, मिचेल्स, बर्नहाइम तथा मिल्स सभी अभिजन को विशिष्ट शासक वर्ग के रूप में मानते हैं। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

1. अभिजन, शक्ति और प्रभाव का प्रयोग इसलिये करते हैं क्योंकि इसमें कुछ विशेष गुण होते हैं जैसे प्रशासनिक क्षमता, बौद्धिक योग्यता आदि होते हैं।
2. प्रत्येक राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों या व्यक्तियों के छोटे समूह का उदय होता है। वे महत्वपूर्ण पदों पर स्थापित होते हैं और निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय रहते है।
3. राजनीतिक अभिजन सत्ता में रहते हुए जनसमर्थन से मुक्त रहते हैं।
4. वे समाज में शक्ति प्रयोग का वैध अधिकार रखते हैं। वे बिना भय एवं संकोच से अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हैं।
5. अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिये अभिजन हर प्रकार के माध्यम जैसे झूठ, फरेब, हिंसा तथा अनैतिक माध्यमों का प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते।
6. अभिजन वर्ग सदैव साधारण वर्ग से अलग उच्च स्थिति में रहता है। वे विशेष स्थिति तथा विशेषाधिकार सम्पन्न होते हैं।
7. ये संख्या में कम होते हैं परन्तु सत्ता पर नियन्त्रण रखते हैं।
8. लोकतन्त्र में अभिजन वर्ग में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गों के बीच एक प्रतियोगिता होती है।

### 4.4.12. अभिजन तथा लोकतन्त्र

लोकतन्त्र का सामान्य अर्थ जनता का शासन होता है। लोकतन्त्र स्वतन्त्रता एवं समानता पर आधारित होता है। इस व्यवस्था में सरकार सदैव जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कोई भी उच्च पद प्राप्त कर सकता है। मैन्हाइम 'लोकतन्त्र को खुली प्रतियोगिता' मानता है। शुम्पीटर के शब्दों में - ''लोकतन्त्र को राजनीतिक विनिश्चय कर लेने का एक संस्थापक समझौता है जिसमें राजनीतिक निर्णय लेने की शक्ति जनता के मत द्वारा प्राप्त कर प्रतियोगिता एवं संघर्ष माध्यम से प्राप्त करते हैं।

लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त का तात्पर्य राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के शासन से है जो जनता के द्वारा निर्वाचित होते हैं। यहाँ जनता के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति राजनीतिक अभिजन के रूप में शासन करते हैं। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि राजनीतिक अभिजन के अभाव में लोकतन्त्र संभव हो ही नहीं सकता। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त स्वतन्त्रता एवं खुली प्रतियोगिता में विश्वास रखते हैं। यह सिद्धान्त यह मानता है कि कोई भी व्यक्ति जिसके पास क्षमता होती है। योग्यता होती है वह अभिजन बन सकता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि एक बार अभिजन बन सत्ता पर

काबिज होने के बाद भी वे निश्चित नहीं रह सकते। यदि वे प्रतियोगिता में असफल होते हैं तो नये अभिजन के उदय की संभावना बनी रहती है।

उदारवादी लोकतन्त्र में बहुमत के आधार पर कुछ लोग (अल्पतंत्र) शासन सत्ता का प्रयोग करते हैं। जनता के विश्वास पर्यन्त ही वह सत्ता के शीर्ष पर आसीन हो 'राजनीतिक अभिजन' के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उनके ऊपर बहुसंख्यक जनता के नियन्त्रण का दायित्व रहता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। अल्पमंत्र द्वारा बहुसंख्यक समाज को नियन्त्रित किया जाता है। राजनीतिक नेतृत्व (अभिजन) ही प्रायः बहुसंख्यक जनता को नियन्त्रित करते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि 'जनता का शासन' एक भ्रम है, एक कपोल कल्पना तथा भ्रामक अवधारणा है। आरोन के शब्दों में- ''किसी भी समाज में शासन सत्ता कुछ लोगों के हाथ में रहने के अतिरिक्त अन्य लोगों के हाथों में रहना असम्भव है। जनता के लिये सरकार तो होती है, जनता द्वारा शासन नहीं होता है।''

राजनीतिक अभिजनवादी सिद्धान्त शास्त्रीय उदारवादी सिद्धान्त के अनुसार लोकतन्त्र में समानता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं। ये मानते है कि पूर्ण समानता न तो प्राकृतिक है और न ही व्यवहारिक ही है। वे कहते है कि शासक एवं शासितों के बीच, सत्ताधारियों, एवं शासितों के बीच समानता कोरी कल्पना है। वे स्पष्ट रूप से मानते है कि असमानता, योग्यता, कुशलता, ज्ञान प्रतिभा के कारण होती है। वे मानते है कि जनसाधारण में जटिल राजनीतिक समस्याओं को समझने की क्षमता आम लोगों में नहीं होती है। कतिपय यही कारण है कि यह कार्य स्वभाविक रूप ये अधिक क्षमतावान, योग्य, प्रतिभाशाली लोगों (अभिजन) के पास स्वभाविक रूप से पहुँच जाता है। मैन्हाइम के शब्दों में- ''वास्तविक रूप से नीतियों को अभिजन ही निर्धारित करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज लोकतान्त्रिक नहीं है। लोकतन्त्र के लिये यह पर्याप्त है कि प्रत्येक नागरिक के पास निश्चित अवधि के बाद अपनी भावनाओं को महसूस कराने की सम्भावना तो है क्योंकि राजनीतिक अभिजन के शासनाधिकार प्राप्त करने के लिये जनता के मतों के लिये प्रतियोगिता करनी है क्योंकि विभिन्न प्रतिस्पर्धी अभिजन वर्गों में सत्ता प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता जारी रहती है। अतः वे स्वमेव अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। यह सिद्धान्त अभिजन वर्ग के बीच निरन्तर चलने वाली प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता में विश्वास करता है। ब्राइस का मत उल्लेखनीय है- ''संभवतः किसी भी प्रकार के शासन को महान नेताओं की इतनी आवश्यकता नहीं होती है जितनी लोकतन्त्र को।'' लोकतन्त्र के लिये अभिजन अपरिहार्य है। सफल एवं प्रभावी लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) बहुत आवश्यक है। डाई व जीगलर ने अपनी पुस्तक ''दि आमरनी ऑफ डेमोक्रेसी'' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि लोकतन्त्र की यह विडम्बना है कि जनता का शासन होते हुए भी इसको बनाये रखने तथा कुशलता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाने के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) पर निर्भर रहना होता हैं। प्राचीन समय से आजतक के लोकतन्त्र का बारीक अध्ययन करने ये यह स्पष्ट होता है कि प्रजातन्त्रीय मूल्य जनता के द्वारा सुरक्षित नही रखे जाते वरन् ये अभिजनों के द्वारा ही सुरक्षित रखे जाते हैं। पीटर ब्राचाश ने अपनी पुस्तक ''दी थ्योरी ऑफ डेमोक्रेटिक एलिटिज्म'' में लिखा है- ''लोकतान्त्रिक खेल के नियमों को बनाये रखने का उत्तरदायित्व जनता के कंधों पर न होकर, अभिजनों के ऊपर होता है।''

### 4.4.13. अभिजन वर्ग का परिसंचरण और प्रजातन्त्र

प्रजातन्त्र में अभिजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रजातन्त्र में अभिजनों के बीच स्वतन्त्र प्रतियोगिता निरन्तर चलती रहती है। जो व्यक्ति सत्ता प्राप्त करने में सफल होता है व निरन्तर उसे बनाये रखने तथा जनता के बीच लोकप्रियता बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहता है। मैन्हाइम इसे अवसर की समानता मानता है। इसमें समाज के विभिन्न स्तरों के व्यक्ति व्यक्तिगत गुणों के आधार पर उस वर्ग में निर्वाचन के माध्यम से सम्मिलित किये जाते हैं। इस संबंध में शुम्पीटर का कथन उल्लेखनीय है- ''वह राजनीतिक निर्णय लेने का ऐसा संघात्मक समझौता है, जिसमें व्यक्ति निर्णय करने की शक्ति को जनता का मत प्राप्त करके प्रतियोगितापूर्ण संघर्ष के माध्यम से प्राप्त करते है।'' पैरेटो ने सर्वप्रथम अभिजन वर्ग के परिसंचरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने इसमें स्पष्ट किया कि यह संघर्ष अभिजन तथा सामान्य वर्ग के बीच निरन्तर चलता रहता है। इस परिसंचरण सिद्धान्त में प्रतियोगिता (प्रतिस्पर्था) अनवरत चलती रहती है। अभिजन वर्ग में परिवर्तन इस प्रतियोगिता के कारण होता रहता है।

मोस्का ने अभिजन के परिसंचरण को वैधानिक शासन तक सीमित न रखकर परिसंचरण की गतिशीलता का भी अध्ययन किया। उसने अभिजन वर्ग के सदस्यों की बौद्धिक, नैतिक गुणों को उत्पन्न करने वाली सामाजिक परीस्थितियों एवं परम्पराओं का भी अध्ययन किया। मोस्का ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नवीन समूहों एवं उनके शासन व्यवस्थाओं पर होने वाले प्रभावों का भी अध्ययन किया। उसने आगे यह भी स्थापित किया कि केवल अभिजन ही व्यवस्था में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी नहीं होते वरन् अन्य समूहों, छोटे संगठनों की भी अपनी भूमिका होती है।

### 4.4.14. फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्त

फाइनर ने अभिजन संचरण की एक सटीक व्याख्या की। उसने अभिजन संचरण को एक स्वभाविक प्रक्रिया बताया जो निरन्तर चलती रहती है। राजनीतिक व्यवस्था में अभिजन अपनी स्थिति को बनाये रखने में प्रयत्नशील रहते हैं। वहीं दूसरी तरफ नये अभिजन उदयमान होने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इसको सिद्ध करने के लिये उन्होंने 'फ्लास्क एवं संतरे' का मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल के द्वारा फाइनर ने सिद्ध किया कि लोकतन्त्र रूपी जल में राजनीतिक व्यवस्था (संतरा) पर कब्जा पाने के लिये अभिजन संघर्षशील रहते हैं। इसमें से कुछ उदयमान अभिजन राजनीतिक व्यवस्था (संतरे) तक पहुँचने का प्रयास करते हुए सफल होते हैं तथा कुछ अभिजन विस्थापित होते हैं तथा डूब जाते हैं। उदयमान अपनी क्षमता, योग्यता, प्रतिभा से ऊपर जाते हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण जल में हलचल होती है और संतरे की स्थिति बदलने लगती है। जो पानी के ऊपर सत्ता (संतरे) पर आसीन थे वे प्रति अभिजन बनने लगते हैं। जो अपनी क्षमता खो देते हैं वे सतह (संतरे) से हटकर जल में डूबने लगते हैं। इस प्रकार लोकतन्त्र में केवल थोड़े लोग (समूह) ही सत्ता में बने रहते हैं। सत्ता में बने रहने के लिये इनमें संघर्ष चलता रहता है। सत्ता में वे ही रहते हैं जो योग्यता, प्रतिभा साबित करते हैं।

### 4.4.15. राजनीतिक अभिजन और समाजवाद

लोकतन्त्र का आधार स्वतन्त्रता है जबकि समाजवाद का आधार समानता है। वे आर्थिक समानता पर अत्याधिक जोर देते हैं। यह समाजवादी विचार शोषण के विरूद्ध मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं उनके द्वारा संगठित क्रान्ति के द्वारा व्यवस्था परिवर्तन पर बल देता है। मोस्का, पैरेटो तथा मिचल्स वर्ग विहीन समाज

के विचार से सहमत नहीं है। वे समाजवाद में स्थापित सत्तारूढ़ समूह को अभिजन नहीं मानते। वे इसमें संघर्ष (प्रतिस्पर्धा) तथा परिवर्तन का अभाव देखते हैं। साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्था पर रेमण्ड एरन का कथन प्रांसगिक है- ''यहाँ पर प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की अपेक्षा अल्पसंख्यक के पास निश्चित ही अधिक शक्ति है क्योंकि आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति उसमें समाहित है। राजनीतिक ट्रेड यूनियन, समस्त संस्थायें, समस्त व्यक्तिगत समूह (व्यवसायिक समूह) वास्तव में अभिजन के प्रतिनिधियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ''अभिजन सिद्धान्त के समर्थन मार्क्स के इस विचार को भी नकार देते हैं जिसमें मार्क्स मानता था कि समाज में केवल दो वर्ग होेते हैं। इन दो वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता है। सभी घटनाओं के पीछे आर्थिक कारण होते हैं। अभिजनवादी समाज में अनेक वगों, समूहों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इस संबंध में मैक्स बेबर कहता था- ''समस्त परिवर्तन आर्थिक कारणों से नहीं होते हैं। सामाजिक संरचनायें उत्पादन एवं तकनीक को प्रभावित करती है। वे ऐसे सिक्के के समान है जो सरलता से नहीं पिघलते हैं।''

**4.4.16. विकासशील देशों में अभिजन**

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया में साम्राज्यवादी शक्तियों का पराभाव प्रारम्भ हुआ और नये लोकतान्त्रिक देशों का उदय हुआ। नई राजनीतिक एवं शासन की व्यवस्था के साथ इन देशों में कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियाँ भी सामर्ने आइं। स्वतन्त्रता संघर्ष में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक अभिजन की महती भूमिका थी तथा आजादी के बाद भी वे अपने पुराने गौरव के अनुरूप ही नई भूमिका तलाश रहे थे। इन नवोदित राष्ट्रों के अभिजन को अनेक समस्यायों का सामना करना पड़ा। एडवर्ड मिल्स ने इन देशों की सामस्याओं का व्यापक विश्लेषण करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की तीन अवस्थायें बतायी हैं। विकासशील अथवा नवोदित राष्ट्रों के अभिजनों के विभिन्न रूप हैं। शिल्स के अनुसार जहाँ उच्च बुद्धिजीवी विचार सृजन एवं समाज को मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। मध्यम बुद्धिजीवी पत्रकारिता, अध्यापन, वकालत का कार्य करते हैं। समाज के समक्ष उत्पन्न नई चुनौतियों का समाधान भी इस अभिजन वर्ग से ही आता है। कतिपय यही कारण है कि किसी भी शासन व्यवस्था में अभिजन (विशिष्ट) वर्ग का विशेष महत्व होता है। उनके प्रभावी एवं कुशल नेतृत्व के बिना राष्ट्र निर्माण नहीं किया जा सकता है। एक सफल लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग में निम्न विशेषतायें आवश्यक हैः-

1. लोकतन्त्रीय मूल्यों तथा आदर्शों ने विशिष्ट वर्ग का विश्वास एवं आस्था।
2. विशिष्ट वर्ग का चयन समाज के विभिन्न वर्गों से होना चाहिए। इससे सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व एवं विश्वास विशिष्ट वर्ग में हो जायेगा।
3. प्रभावी शासन संचालन के लिये आवश्यक है कि जनता अनावश्यक अभिजन वर्ग के कायों एवं नीतियों में दखल न दें।
4. विशिष्ट वर्ग (अभिजन) का ज्ञान, योग्यता, तथा अनुभव उच्चकोटि का हो। जिससे वे जनसामान्य का सम्मान स्वयं अर्जित कर सकें।
5. अभिजनों में सत्ता के लिये प्रतियोगिता हो तो उसका माध्यम चुनाव हो। चुनाव द्वारा ही अभिजनों को शासन का अवसर प्राप्त होना चाहिए।
6. अभिजन (विशिष्ट) वर्ग खुला एवं व्यापक होना चाहिए। इसमें सदैव योग्य एवं क्षमतावान व्यक्ति के प्रवेश का अवसर बना रहना चाहिए।

### 4.4.17. मूल्यांकन

पिछले कई दशकों से अमेरिका के व्यवहारवादियों तथा वैज्ञानिक आधार पर राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन करने वालों ने राजनीतिक जीवन की वास्तविकता के आधार पर इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। आज व्यवहारिक आवश्यकताओं को देखते हुए लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही अनेक दोषों को समेटे हुए वर्तमान व्यवस्था को बनाये रखने का प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त बन जाता है। प्रत्येक सिद्धान्त से यह आशा रखी जाती है कि वह केवल वास्तविकता का बयान ही नहीं करे वरन् वास्तविक समस्याओं का आदर्शों, मूल्यों के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करें। इस सिद्धान्त की आलोचना डंकन तथा ल्यूक्स, डेविस, वांटमोर, वे, गोल्ड स्मिथ, वाकर वैकरैक, पेटसमैन, प्लामनाज आदि ने की। इन विद्वानों द्वारा की गयी आलोचना का मुख्य आधार निम्न हैः-

1. यह सिद्धान्त लोकतन्त्र से साधारण व्यक्ति को दूर करना चाहता है।
2. यह सिद्धान्त प्राचीन विशिष्ट वर्गीय व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है अतः यह रूढ़िवादी सिद्धान्त है।
3. विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त वर्तमान व्यवस्था के साथ संतुलन स्थापित नहीं कर सकता। समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता से वर्ग संघर्ष जन्मता है। बिना उसे समाप्त किये समंमजस्य एवं सहयोग की कल्पना नहीं की जा सकती है।
4. यह सिद्धान्त लोकतन्त्र को केवल राजनीतिक व्यवस्था ही मानता है। यह आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की अनदेखी करता है।
5. यह सिद्धान्त विचारधारा तथा मूल्यों को महत्वपूर्ण नहीं मानता है।
6. यह सिद्धान्त मानव को साधन तथा शासन को साध्य मानता है।
7. यह सिद्धान्त अभिजन (नेताओं) को विशेष महत्व देता है। यह आमलोगों को विशेष महत्व नहीं देता है।
8. यह सिद्धान्त जनमत की पूर्णतः अनदेखी करता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जनमत का निर्माण अभिजन (विशिष्ट) वर्ग करता है।
9. यह सिद्धान्त समानता को न तो आवश्यक मानता है और न ही स्वभाविक मानता है।
10. विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन का नियम देखने में ठीक दिखता है परन्तु व्यवहार में अव्यवहारिक लगता है क्योंकि कोई भी अपनी मजबूत स्थिति तथा विशेषाधिकार को आसानी से नहीं छोड़ता है।
11. विशिष्ट वर्ग की योग्यता, क्षमता का आधार अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी है जो व्यक्ति को समाज में मजबूत एँव प्रभावशाली बनाते हैं।

### 4.4.18. सारांश

राजनीतिक अभिजन का सिद्धान्त एक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त को कुछ आलोचना का सामना करना पड़ता है परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वास्तव में सत्ता में कुछ लोग ही प्रभावशाली होते हैं। एक बार सत्ता में काबिज होने के बाद वे निरन्तर अपनी मजबूत स्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयासरत रहते हैं। वे कई बार इस हेतु गलत एवं अनैतिक माध्यमों का भी प्रयोग करने से किसी प्रकार का परहेज नहीं करते। यह भी सत्य लगता है कि विशिष्ट अथवा अभिजन वर्ग

स्थायी नहीं होता है। इनकी स्थिति ने परिवर्तन समय के साथ होता रहता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त न केवल सत्ता में कुछ लोगों के प्रभाव को स्वीकार करता है। वरन् अभिजन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की भी वकालत करता है। वे जनहित में अभिजन की शक्ति को स्वस्थ प्रतियोगिता तथा जनता के नियन्त्रण के द्वारा सीमित करने की बात करता है। वे विकेन्द्रित लोकतान्त्रिक संस्थाओं का जाल बिछाकर अभिजन शक्ति का समायोजन लोकतन्त्र की आवश्यकतानुसार करने का समर्थन करते हैं।

### 4.4.19. शब्दावली

1. अभिजनः- इसका तात्पर्य है विशिष्ट। वह जो सामान्य लोगों से अलग शक्ति, पहचान एवं प्रभाव रखता हो अभिजन कहलाता है।
2. अल्पसंख्यकः- कम संख्या में पाये जाने वाले समूह को अल्पसंख्यक समूह या समुदाय कहा जाता है।
3. कुलीन वर्गः- यह प्राचीन व्यवस्था में पाया जाने वाला सम्पन्न एवं प्रभावी वर्ग होता था। इनका प्रभाव समाज, शासन, आर्थिक गतिविधियों में होता था।
4. पूँजीपति वर्गः- यह वह वर्ग था जो उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण रखता है। इनका नियन्त्रण उद्योंगों एवं व्यापार पर होता है। कार्ल मा्क्रस इनके विरूद्ध क्रान्ति कर उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व स्थापित कर समानता स्थापित करना चाहता था।

### 4.4.20. अभ्यास के प्रश्न

1. निम्न में से कौन अभिजन सिद्धान्त के समर्थक है-
(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) मिचेल्स (द) सभी
2. पैरेटो अभिजन को कितने भाग में बाँटता है-
(अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4
3. "The Power elite" पुस्तक का लेख कौन है-
(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) सी0 राइट मिल्स (द) मिचेल्स
4. "The Rulling elite" पुस्तक का लेखक हैं-
(अ) मिचेल्स (ब) बर्नहाइम (स) लासवैल (द) कोई नहीं
5. यदि समानता से प्रजातन्त्र भ्रष्ट होता है तो अति समानता से यह नष्ट होता है- यह कथन है-
(अ) टेलर (ब) माँन्टेस्क्यू (स) वोथा (द) वे
6. सी0 राइट मिल्स ने अभिजन के लिये शब्द प्रयोग किया -
(अ) शासक वर्ग (ब) शक्ति अभिजन (स) दोनों (द) कोई नहीं

### 4.4.21. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
2. खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
3. घल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति
4. गाबा , ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

5. जौहरी, जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

### 4.4.22. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1. द
2. ब
3. स
4. स
5. ब
6. ब

### 4.4.23. सहायक एवं उपयोगी सामग्री

1. सोडारो माइकल, कम्परेटिव पॉलिटिक्स
2. गेना सी0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3. गाबा , ओ0पी0, तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा
4. शुक्ला वी0 राजनीतिक सिद्धान्त
5. गाबा, ओ0पी0 समकालीन राजनीति सिद्धान्त

### 4.4.24. निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिजन की धारणा से क्या समझते है? इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. राजनीतिक अभिजन क्या है? पैरेटो एवं मोस्का के विचारों का विश्लेषण कीजिये।
3. लोकतन्त्र के विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये।
4. अभिजन वर्ग के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।